भारत की आर्थिक समस्यायें

(Economic Problems of India)

[विक्रम व सागर विश्वविद्यालयों के बी० कॉम० त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स एव अन्य भारतीय विश्वविद्यालयो के स्वीकृत पाठ्य क्रमानुसार]

प्रथम सस्करण

आगरा

साहित्य भवन

शिक्षा सम्बन्धी साहित्य के प्रकाशक

अन्य उपयोगी प्रकाशन—

१ कम्पनी अधिनियम एवं सचिविय पद्धति
(Company Law & Secretarial Practice)
लेखक—एस० एम० शुक्ल

२ भारत में उद्योग लेखक—डा० एस० सी० सक्सेना

३ भारतीय व्यापार एवं परिवहन (प्रश्नोत्तर)
प्राक्कथन लेखक—डा० एस० डी० सिंह चौहान

मूल्य सात रुपये मात्र

प्रकाशक—साहित्य भवन
२७३२ सुई कटरा,
आगरा।

मुद्रक — आगरा पापूलर प्रेस,
मोतीकटरा,
आगरा।

भूमिका

प्रारम्भिक :—

वर्तमान युग हमारे देश के लिये 'आर्थिक विकास का युग' है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत की आर्थिक समृद्धि के लिए हमने प्रथम पंच-वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसकी सफल पूर्ति सन् १९५५ मे हुई। तत्पश्चात, देश मे तीव्र औद्योगीकरण के लिए हमने द्वितीय पंच वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसके अन्तर्गत कुटीर, लघु एव विशाल उद्योगो की प्रगति के लिए समन्वित योजनायें बनाई गई है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र मे आज आर्थिक पुनरुत्थान की एक लहर सी दिखलाई पडती है। प्रत्येक नागरिक के हृदय मे उत्साह है और वह अपने राष्ट्र के निर्माण मे तन्मय सा दृष्टिगत होता है। शासकीय एव नागरिक दोनो ही क्षेत्रो मे राष्ट्र के पुर्ननिर्माण के लिये आयोजित ढग से कार्य हो रहा है। स्वच्छन्द क्रीडा करने वाली नदियो को नियन्त्रण मे रखकर विकास योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं। सस्ती जल शक्ति प्राप्त करने के लिये बडी बडी योजनायें चल रही हैं। भिलाई, रुरकेला तथा दुर्गापुर के विशालकाय लौह-इस्पात के कारखाने औद्योगिक क्षेत्र मे हमारी प्रगति के द्योतक हैं। कृषि उत्पादन के बढाने के लिये सहकारी कृषि के विकास पर बल दिया जा रहा है। यातायात के साधनो की भी वृद्धि हो रही है। परन्तु, इतना सब होते हुए भी जन साधारण सुखी नही है। कृषि, उद्योग, औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन, आर्थिक नियोजन आदि सभी क्षेत्रो मे कुछ न कुछ उलझनें हैं। उदाहरण के लिए, कृषि के विकास में भारतीय किसानो की ऋणग्रस्तता, भूमि का उप विभाजन व अपखन्डन, ग्रामीण साख आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ हैं। सहकारी कृषि का भी बडे जोरो के साथ विरोध किया जा रहा है। बिचारे भूमिरहित कृषको की भी बडी गहन समस्या है, जिसके निवारणार्थ संत बिनोवा भूदान आदोलन में सलग्न हैं। इसी प्रकार भारत के प्राय सभी सगठित उद्योग, जैसे सूती वस्त्र मिल उद्योग, लौह एव इस्पात उद्योग जूट उद्योग आदि, विवेकीकरण, आधुनिकीकरण, अर्थाभाव आदि समस्याओ से ग्रस्त हैं। जनाधिक्य की समस्या भी हमारे देश के लिए एक सिर दर्द है। 'श्रम' का क्षेत्र भी समस्याओ से खाली नही है। इन आर्थिक समस्याओ को बिना हल किए हम मनोवाछित आर्थिक विकास नही कर सकते। प्रस्तुत पुस्तक मे देश की विविध आर्थिक समस्याओ पर गम्भीरता से प्रकाश डाला गया है तथा उनको सुलझाने के लिए किए गए प्रयत्नो व सुझावो की भी विवेचना की गई है।

पुस्तक की उपयोगिता —

"भारत की आर्थिक समस्याएँ" शीर्षक विषय विक्रम व सागर विश्वविद्यालय

की त्रिवर्षीय वाणिज्य कक्षाओं के लिए अनिवार्य है। नियत पाठ्य-क्रम के अनुसार अभी तक इस विषय पर कोई भी पुस्तक नहीं थी। विद्यार्थियों को 'भारतीय अर्थशास्त्र' अथवा भारत के आर्थिक विकास से सम्बन्धित पुस्तकों मे से आवश्यक सामग्री निकालनी पड़ती थी। उनकी इस कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई है। आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि अब हमारे विद्यार्थियों को इस विषय की सामग्री के हेतु कहीं अन्यत्र भटकना नहीं पड़ेगा वरन् यह एक पुस्तक ही "कल्पवृक्ष' की भांति उनकी समस्त आवश्यकताओं की सतुष्टि कर देगी।

प्रस्तुत पुस्तक को सात लघु पुस्तिकाओं में बाटा गया है —कृषि, उद्योग, औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन भारत की जन-संख्या भारत मे आर्थिक नियोजन की आधुनिक प्रवृत्तियां और भारत की श्रम समस्याएँ। प्रथम पाच पुस्तिकाएँ सागर व विक्रम दोनों ही विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, शेष दो पुस्तिकायें केवल विक्रम विश्वविद्यालय के लिए हैं।

कतिपय विशेषतायें —

(i) पुस्तक की रचना अत्यन्त सरल व मुहावरे दार हिन्दी में की गई है।

(ii) "भारत सन् १९६०' व अन्य आर्थिक व वाणिज्यिक पत्र-पत्रिकाओं के आधार पर नवीनतम आकड़ों का समावेश किया गया है।

(iii) परीक्षा की दृष्टि से अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रत्येक अध्याय के अन्त में अभ्यास के प्रश्न दिए गए हैं तथा पुस्तक के अन्त मे सागर व विक्रम विश्वविद्यालयों की सन १९६० की परीक्षा के प्रश्न-पत्र भी दे दिए गए हैं।

(iv) पुस्तक के प्रारम्भ में विक्रम व सागर विश्वविद्यालयों का सन् १९६१ की परीक्षा के हेतु निर्धारित पाठ्यक्रम भी दिया गया है।

आभार प्रदर्शन —

प्रस्तुत पुस्तक की रचना में अनेक प्रामाणिक पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं एव विशेषज्ञों से पर्याप्त सहायता मिली है जिनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पाण्डुलिपि के लेखन में श्री एम० एम० धारीवाल ने जो सहयोग दिया है उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है।

सुझाव के हेतु मेरा सबको निमन्त्रण है।

आनन्द निवास,
जेकब परेड,
ग्वालियर।

एस० सी० सक्सेना

SYLLABUS OF THE VIKRAM UNIVERSITY

(For B Com Part II of the Three Years Degree Course)

ECONOMIC PROBLEMS OF INDIA

1 AGRICULTURE

Causes of Rural indebtedness Causes and evils of subdivision and fragmentation of holdings Consolidation of holdings with special reference to M P Co-operation Co-operative Farming, Rural Finance Community Projects

2 INDUSTRIES

A brief survey of the following industries

1 Cotton textile
2 Sugar,
3 Iron and Steel and
4 Jute

Problems of Industrial Finance

3 TRADE UNION MOVEMENT IN INDIA

Indian Labour problems

4 RECENT TRENDS IN ECONOMIC PLANNING IN INDIA

5 INDIA S POPULATION PROBLEM

SYLLABUS OF THE SAUGAR UNIVERSITY

(For B Com Preliminary)

ECONOMIC PROBLEMS OF INDIA

1 AGRICULTURE

Causes of Rural indebtedness A brief survey of important legislative measures against this evil, Sub division and fragmentation of Holdings, Consolidation of Holdings with special reference to M P Rural Finance—Short and long term Co operative Societies The problem of rural finance Problems of landless labour Community projects

2 INDUSTRIES

A brief survey of the following Indian Industries

1 Cotton ,
2 Iron and Steel ,
3 Sugar ,
4 Jute , and
5 Coal

Problems of Industrial Finance

3 GROWTH OF POPULATION IN INDIA AND ITS PROBLEMS

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ

प्रथम भाग

प्रथम पुस्तिका–परिचय

द्वितीय पुस्तिका–कृषि

द्वितीय भाग

तृतीय पुस्तिका–उद्योग

चतुर्थ पुस्तिका–औद्योगिक अर्थप्रबन्धन

पंचम पुस्तिका—भारत की जन-संख्या

षष्ठम् पुस्तिका—भारतीय श्रम समस्याएँ

सप्तम पुस्तिका—भारत में आर्थिक नियोजन की आधुनिक प्रवृत्तियां

परीक्षा प्रश्न पत्र १९६०

अध्याय १

विषय-प्रवेश

(Introduction)

प्रारम्भिक—

वर्तमान युग में 'अर्थशास्त्र' के अध्ययन का महत्व दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। अर्थशास्त्र के अध्ययन के द्वारा हम मानव के आर्थिक जीवन से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु अर्थशास्त्र का महत्व केवल मानव जीवन की आर्थिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्तों के प्रतिपादन मात्र में ही नहीं है, वरन् इसका महत्व इस कारण भी अधिक है कि इसके द्वारा हम अपने दैनिक व्यावहारिक जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को सुलझाने में समर्थ होते हैं। प्रत्येक देश में कालान्तर से ही नवीन परिस्थितियों के फलस्वरूप नवीन समस्याएँ उत्पन्न होती रही हैं। आखेट-युग के मानव की आवश्यकताएँ चाहे कितनी ही नगण्य व सरल रही हों, उसके लिए भी आर्थिक समस्याएँ अवश्य रही होंगी और उसने उन पर अपने ढंग से विचार भी किया होगा। फिर जैसे-जैसे मनुष्य का बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास होता गया, उसकी आर्थिक, समस्याओं का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी जबकि हम चन्द्रलोक की यात्रा के लिए प्रयत्नशील हैं, आर्थिक समस्याओं का अभाव नहीं है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व रूस जैसे उन्नतिशील औद्योगिक राष्ट्र भी अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं, फिर भारत जैसे अर्द्ध-विकसित राष्ट्र के लिए क्या कहा जाय। अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य इन आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त उपाय प्रस्तुत करना है, जिससे देश एवं मानव समाज का अधिकतम भौतिक कल्याण हो सके। 'भारत की आर्थिक समस्याओं' के अध्ययन का भी यही उद्देश्य है।

वर्तमान युग हमारे देश के लिए आर्थिक विकास का युग है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत की आर्थिक समृद्धि के लिए हमने प्रथम पंच-वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसकी सफल पूर्ति सन् १९५५ में हुई। तत्पश्चात् देश में तीव्र औद्योगीकरण के लिए हमने द्वितीय पंच-वर्षीय योजना का निर्माण किया, जिसके अन्तर्गत कुटीर लघु एवं विशाल उद्योगों की प्रगति के लिए समन्वित योजनाएँ बनाई गई हैं। भारत

के प्रत्येक क्षेत्र मे आज आर्थिक पुनरुत्थान की एक लहर सी दिखलाई पड़ता है। शासकीय एवं नागरिक दोनो ही क्षेत्रो मे राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए आयोजित ढग से कार्य हो रहा है। स्वच्छन्द क्रीडा करने वाली नदियो को नियन्त्रण मे रखकर विकास योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है। सस्ती जल शक्ति प्राप्त करने के लिए बड़ी बड़ी योजनायें चल रही हैं। भिलाई, रूरकेला व दुर्गापुर के विशाल उद्योगो ने लोहा उगलना शुरू कर दिया है। यातायात के साधनो की भी वृद्धि हो रही है। कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन बढाने के उद्देश्य से सहकारी कृषि पर बल दिया जा रहा है इत्यादि। परन्तु इतना सब होते हुए भी जन साधारण सुखी नही है। कृषि, उद्योग औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन आर्थिक नियोजन आदि सभी क्षेत्रो मे कुछ न कुछ उलझनें है। उदाहरण के लिए कृषि के विकास मे भारतीय किसानो की ऋण ग्रस्तता, भूमि का उप विभाजन व अपखण्डन, ग्रामीण साख आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ है। सहकारी कृषि का भी बड़े जोरो के साथ विरोध किया जा रहा है। बिचारे भूमि रहित कृषकों की भी बड़ी दयनीय दशा है। इसी प्रकार भारत के प्राय सभी सगठित उद्योग, जैसे सूती वस्त्र मिल उद्योग लोह एवं इस्पात उद्योग जूट उद्योग, आदि वैज्ञानिकरन, आधुनिकीकरण अर्थाभाव आदि समस्याओ से ग्रस्त है। जनाधिक्य की समस्या भी हमारे आर्थिक विकास मे बाधक सिद्ध हो रही है। इन समस्याओ के निवारणार्थ हम तृतीय पंच वर्षीय योजना को कार्यान्वित करने जा रहे हैं। आज हमको नव युग का निर्माण करना है एक नई आशा का सचार करना है, अथवा यो कहिए कि हमें देश मे एक प्रगतिशील आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना है **किन्तु आर्थिक समस्याओं की पूर्ण जानकारी के अभाव में देश में प्रगतिशील आर्थिक व्यवस्था का निर्माण पूर्णतया असम्भव है।**

आज से २५-३० वर्ष पूर्व जब रूस मे पंच-वर्षीय योजना का श्रीगणेश किया गया था, उस समय वहा के नागरिको में उत्साह और आनन्द की एक नई लहर व नई उमग पैदा हो गई थी। सारा देश पंच वर्षीय योजना चार वर्ष मे पूरी करो के नारे से गुन्जायमान हो उठा था। रूस का प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक महिला, यहा तक कि छोटे-छोटे बालक व वृद्ध—सभी उस योजना को पूर्ण करने मे अपना अपना योग देने लगे थे। इसी प्रकार सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे भी प्रेसीडेन्ट रुजवल्ट ने घोर आर्थिक सकट के दिनो में जब देश से अपील की थी कि 'बैंको मे राशि जमा करो' तब सारे देश मे उत्साह की नई लहर दौड गई थी। समस्त देश ने आर्थिक सकट की अवधि को हसते हसते पार कर लिया था। इन दोनो उदाहरणो मे वहा की सफलता का रहस्य छिपा है। सफलता का एक मात्र कारण था जनता का अर्थ समस्याओ के प्रति सचेत होना और सरकार को योग देने मे आगे रहना। अत स्पष्ट है कि किसी देश की आर्थिक समृद्धि केवल सरकार के बनाए गए **कानूनों अथवा आर्थिक योजनाओं पर भी निर्भर नहीं करती। वह निर्भर करती है जनता के उत्साहपूर्ण सहयोग पर। परन्तु जनसाधारण का सहयोग तब तक प्राप्त**

वाले उपायों के विश्लेषण को समष्टि रूप से हम 'भारतीय अर्थशास्त्र' से अभिहित कर सकते है। यह राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देश की आर्थिक स्थिति का अध्ययन है।

विषय का क्षेत्र—

भारत की आर्थिक समस्याओं के अध्ययन का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक है। भूतकाल मे हमारे देश का आर्थिक कलेवर कैसा था वर्तमान युग मे उसमे कहा तक सुधार हो सका है एव भविष्य मे आर्थिक विकास किस प्रकार होना है, इन सब बातो का विषद विवेचन ही भारतीय आर्थिक समस्याओं के अध्ययन का क्षेत्र है। विश्व के अन्य सभी देशो की भाँति भारत का आर्थिक कलेवर भी अनेक सीढ़ियो के पार करने के बाद वर्तमान स्थिति पर पहुँचा है। भारत की आर्थिक समस्याओं के अन्तर्गत हम देश के प्राचीन आर्थिक सगठन, उसके पश्चात् हुए परिवतन तथा उन परिवर्तन के परिणामो का विश्लेषण करते हैं। किन्तु हमारा क्षेत्र यही समाप्त नही हो जाता। प्रथम विश्व युद्ध से लगाकर सन् १९२६-३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी द्वितीय विश्व युद्ध और इसके बाद तक की आर्थिक प्रगति की प्रत्येक समस्या का अध्ययन एव विश्लेषण हमारे अध्ययन का क्षेत्र है।

१५ अगस्त सन् १९४७ के पूव लगभग डढ सौ वर्षों तक हम दासता की शृङ्खला मे जकडे रहे। यदि राज्य की आर्थिक नीति हमारे प्रतिकूल न होती तो सम्भव था कि हम उस युग मे ही कही आगे बढ गये होते। प्रथम महासमर के पूर्व तक हमारे देश मे मुख्यत वस्त्र मिल उद्योग, जूट उद्योग एव चाय उद्योग ही वृहत स्तर पर स्थापित हो सके थे। युद्ध के बाद स्वर्गीय बापू के स्वदेशी आन्दोलन एव औद्योगीकरण की माग के फलस्वरूप राजकीय नीति मे किंचित परिवर्तन हुआ और कुछ उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया गया। सरक्षण की गोद में लोह एव इस्पात उद्योग, चीनी उद्योग, सीमेन्ट उद्योग कागज उद्योग दियासलाई उद्योग आदि ने विशेष प्रगति की। तत्पश्चात् सन् १९२६–३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी मे भारतीय कृषि एव उद्योग दोनो के ही पैर लडखडाने लगे। सन् १९३६ के द्वितीय विश्व युद्ध ने औद्योगीकरण के क्रम को पुन प्रोत्साहित किया। अत्यधिक माग को पूरा करने के लिए अनेक उद्योग-धन्धे स्थापित किये गये। मुद्रा की कमी का स्थान मुद्रा-स्फीति ने ले लिया। वस्तुओं के मूल्य गगन-चुम्बी स्तर तक पहुँचने लगे। परिणाम यह हुआ कि कृषकों की आर्थिक दशा भी कुछ सुधरी एवं उनकी ऋणग्रस्तता कम हो गई। विदेशी वस्तुओं के आयात मे कठिनाई के कारण अनेक छोटी-मोटी चीजों का निर्माण देश मे ही होने लगा जैसे—सिलाई की मशीनें साइकिलें बिजली का सामान, रेडियो सेट, पखीले के पुर्जे, इत्यादि।

१५ अगस्त सन् १९४७ की अर्द्ध रात्रि के बाद भारत के आर्थिक विकास मे एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश शासन काल मे आर्थिक क्षेत्र मे हमने जो प्रगति की वह ब्रिटेन के स्वार्थ के कारण नगण्य थी—उसमे भारतीय जन समाज का

नहीं वरन् ब्रिटेन अथवा भारत के ही किंचित व्यक्तियों को लाभ हुआ। स्वतन्त्रता के समय भारत के आर्थिक संगठन में किंचित अच्छाइयों के साथ हमें अनेक बुराइयां भी उत्तराधिकार में मिली। आर्थिक समस्याओं की एक बाढ़ सी आ गई, जैसे—खाद्य समस्या, विस्थापितों की समस्या, मुद्रा-स्फीति एवं मूल्य वृद्धि की समस्या, यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों की कमी, भूमि सुधार की समस्या, इत्यादि।

उपर्युक्त समस्याओं के निवारणार्थ हमारी जन-प्रिय सरकार ने 'योजनाकरण' का आश्रय लिया। यह प्रथम अवसर था, जबकि देश की आर्थिक प्रगति के लिये, पूर्व नियोजित लक्ष्यों को लेकर हम आगे बढ़े। योजना आयोग द्वारा प्रस्तुत भारत की प्रथम पंच-वर्षीय योजना हमारी आर्थिक समस्याओं का सर्वश्रेष्ठ विश्लेषण है और देश की भावी आर्थिक विकास की एक सुन्दर रूप-रेखा है। इसका प्रधान उद्देश्य भारत के प्राकृतिक प्रसाधनों के समुचित उपयोग एवं बढ़े हुए उत्पादन द्वारा जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है। कुछ क्षेत्रों में तो हमने योजनानुसार अपने नियोजित लक्ष्यों से अधिक सफलता प्राप्त कर ली है। आजकल हमारी द्वितीय पंच-वर्षीय योजना, जिसका प्रधान उद्देश्य देश का शीघ्रतम औद्योगीकरण करना है, दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति से कार्यान्वित की जा रही है। आजकल तृतीय पंच-वर्षीय योजना की तैयारियां भी बड़े जोरों के साथ हो रही हैं। ये योजनायें हमारी भावी आर्थिक प्रगति की आधार शिलायें हैं।

इस प्रकार ये सब भूत, वर्तमान एवं भावी आर्थिक समस्याएँ ही हमारे अध्ययन का क्षेत्र है। परन्तु हमारा अध्ययन यहां पर ही समाप्त नहीं हो जाता। हमको विभिन्न समस्याओं के कारणों का विश्लेषण करके उनके हल करने के उपायों का अध्ययन करना होगा तथा उनको हल करने के लिए जो भी आर्थिक नीति अपनाई गई हो अथवा *अपनाई जा रही हो, उसकी भी उपयोगिता देखनी होगी।* इस प्रकार भारत की आर्थिक समस्याओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण है।

विषय का महत्व—

"भारत की आर्थिक समस्याओं" के अध्ययन के जितने भी गुण गाए जाएँ कम ही होंगे। भारत की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन केवल सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ही नहीं, वरन् व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। निम्न बातों से इस विषय के अध्ययन की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है—

(१) देश की धीमी आर्थिक प्रगति के कारणों का ज्ञान करने के लिए— हमारा देश प्रत्येक दृष्टिकोण से अत्यन्त धनाढ्य है। भौगोलिक दृष्टि से हमारी स्थिति सर्व श्रेष्ठ है। हमारे सिर पर हिमालय का ताज है, जो राजनैतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से हमारी रक्षा करता है। देश के वक्षस्थल पर गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र अपने विस्तृत परिवार सहित क्रीड़ा करती हैं और उनका यह क्रीड़ा स्थल अत्यन्त उर्वरा भूमि के कारण अनाज का विशाल भण्डार है। दक्षिण का प्राचीनतम

(४) देश की सही आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक मूल्यांकन—भारत की आर्थिक समस्याओं के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी है कि हम विश्व की सतत परिवर्तनशील परिस्थितियों में भारत की आर्थिक स्थिति का सही अनुमान लगा सकते हैं। वर्तमान युग में सभी राष्ट्र एक दूसरे के इतने निकट आ गए हैं कि किसी भी देश की नई आर्थिक घटना से हम अछूत नहीं रह सकते। आधुनिक युग में हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि विश्व के विभिन्न देशों की तुलना में हम भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति का सही-सही मूल्यांकन कर सकें जिससे कि देश की आर्थिक प्रगति के लिए किसी देश से कुछ सीखना हो, तो निसंकोच होकर ऐसा कर सकें।

(५) योजना-निर्माणकर्त्ताओं के लिए महत्व—जब तक हमको किसी देश की विगत एवं वर्तमान आर्थिक समस्याओं का समुचित ज्ञान न हो, तब तक हम भावी विकास के लिये योजनायें नहीं बना सकते। जब तक हम अपने देश के कृषकों उद्योगपतियों व्यापारियों, श्रमजीवियों एवं जन साधारण की आर्थिक समस्याओं का हल न करें तब तक हम उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने में सफल नहीं हो सकते। कृषकों की दशा को सुधारने के लिए उनकी वर्तमान परिस्थिति से परिचित होना आवश्यक है और इसी प्रकार श्रमजीवियों के जीवन-स्तर में वृद्धि करने के लिए उनकी वर्तमान गृह दशा, काम के घन्टे मजदूरी और महगाई की दर कारखाने में दी जाने वाली सुविधाएँ, श्रम-संघ, श्रम सम्बन्धी सन्नियम राज्य की औद्योगिक नीति का ज्ञान होना अति आवश्यक है। जिन लोगों के हाथ में राज्य की बागडोर है, जैसे हमारे मन्त्रीगण लोक सभा एवं राज्य सभा के सदस्य आदि—यदि इन्हें भारत की आर्थिक दशाओं और समस्याओं का भली प्रकार न ज्ञान होगा तो वे जन साधारण की दशा सुधारने के लिए सन्नियम कैसे बना सकेंगे। भोजन एवं वस्त्र की समस्या दरिद्रता और निरक्षरता दूर करना कृषि सुधार और जन हित की योजनायें सब कुछ भारतीय अर्थशास्त्र के अध्ययन पर निर्भर है जिसके बिना देश का आर्थिक पुनरुत्थान नहीं हो सकता।

(६) जन सहयोग एवं राष्ट्रीय कल्याण के लिए अध्ययन आवश्यक है—स्वतन्त्रता के उपरान्त अपने देश के आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व स्वयं हमारे कन्धों पर आ गया। अब हम अपनी दुर्बलता के लिए किसी अन्य व्यक्ति को दोषी नहीं ठहरा सकते। स्वयं अपनी समस्याओं का अध्ययन करके देश के आर्थिक पुन-*निर्माण में हमें सहयोग देना चाहिए। हमारी सरकार समय-समय पर कृषि, उद्योग* व्यापार, यातायात एवं कर नीति में संशोधन करती रहती है। सरकार की स्थिति आर्थिक नीति एवं तत्पश्चात् घोषित समाजवादी ढाँचा हमारे भावी आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं। इन सब परिवर्तनों का प्रायः प्रत्येक नागरिक पर प्रभाव पड़ेगा, अतः हम सबका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि देश के भावी

आर्थिक सगठन मे अपनी व्यक्तिगत स्थिति का मूल्यांकन कर जिससे कि भारत आर्थिक पुनरुत्थान मे सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकें।

Standard Questions

(1) What do you understand by the term 'Ecomonic Problems' Discuss the meaning and scope of Indian Economic Problems

(2) Carefully discuss the importance of the study of Economi Problems of India under the present circumstances

(3) 'India is a land of Plenty amidst Poverty' Comment

को उप-विभाजन एवं अपखण्डन के दोषों तथा चकबन्दी के लाभों से अवगत् कराते थे। इस हेतु विभिन्न स्थानों पर सभाओं का आयोजन किया जाता था और व्याख्यानों तथा पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा कृषकों को इस दिशा में समस्त ज्ञान प्रदान करने एवं सहकारी चकबन्दी के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने का प्रयत्न किया जाता था। जब किसी विशिष्ट स्थान पर अनुकूल वातावरण तैयार हो जाता था, तो भूमि की चकबन्दी के लिये सहकारी समिति का निर्माण कर दिया जाता था। व्यवहार में, इस दिशा में भी अनेक कठिनाइयों का अनुभव किया गया। श्री डार्लिंग के शब्दों में, विभिन्न स्वार्थों का समन्वय करके प्रत्येक व्यक्ति को सन्तुष्ट करना, अज्ञान को दूर करके अड़ियल व्यक्तियों को समझाना, धनी, शक्तिशाली एवं लाचार लोगों के साथ निर्धन अशक्ति एवं शान्त लोगों का ही उतना ध्यान रखना बड़ा ही कठिन कार्य है, विशेषकर जबकि केवल समझाना बुझाना ही हमारा साधन हो और जिह्वा ही हमारा अस्त्र हो। इसके अलावा पड़ोसियों की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति एवं कृषक का पैतृक भूसम्पत्ति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और अधिक कठिनाइयाँ पैदा कर देते हैं। अतः समस्त योजना पर विचार करने के उपरान्त यदि कुछ व्यक्ति चकबन्दी सुझावों को ठुकरा दें, तो सारे कार्य को पुनः आरम्भ से करना पड़ेगा और इस दिशा में किया हुआ समस्त परिश्रम व्यर्थ जायगा। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी क्षेत्र के किंचित जिद्दी लोगों का अल्पमत भी बहुमत में बाधा पैदा कर सकता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये सन् १९३६ में कानून बनाया गया, जिसके अनुसार यदि बहुमत चकबन्दी के पक्ष में हो जाय, तो अल्पमत उनकी प्रगति में बाधा नहीं डाल सकता। यद्यपि पंजाब ने इस दिशा में मार्ग-प्रदर्शन करके बड़ा सराहनीय कार्य किया है, किन्तु फिर भी सहकारी ढंग से चकबन्दी करने के प्रयास में अत्यन्त सीमित सफलता मिली है।

सहकारी समितियों द्वारा चकबन्दी के क्षेत्र में दूसरा उल्लेखनीय प्रयास उत्तरप्रदेश राज्य में किया गया है। सहारनपुर तथा बिजनौर के क्षेत्र में सन् १९२५ में सहकारी समितियों द्वारा चकबन्दी का कार्य किया गया है। बाद में यह योजना मेरठ व बस्ती जिला में भी शुरू की गई। सन् १९३९–४० में उत्तरप्रदेश राज्य में १८२ सहकारी समितियाँ कार्य कर रही थीं। सन् १९४७ में यह कार्य समाप्त कर दिया गया, क्योंकि कर्मचारियों में भ्रष्टाचार अधिक बढ़ रहा था। सहकारी आधार पर इतनी लम्बी अवधि में अब तक कुल १.२० लाख एकड़ भूमि की ही सहकारी विभाग द्वारा चकबन्दी की जा सकी है। सहकारी चकबन्दी की गति को तीव्र करने के उद्देश्य से सन् १९३९ व १९५३ में चकबन्दी के लिए नए कानून बनाए गए। मद्रास राज्य में भी सहकारी आधार पर ही चकबन्दी का कार्य किया गया है, परन्तु उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित रहा है।

(३) राजकीय अधिनियम द्वारा चकबन्दी—चकबन्दी की दिशा में जो

भी र जकीय आधार पर प्रयास किये गये हैं उनम मध्य प्रदेश का नाम उल्लेखनीय है मध्य प्रदेश मे सन १९२८ मे चकबन्दी अधिनियम पास हुआ जिसके अनुसार अनिवार्य चकबन्दी का सिद्धान्त सबसे पहले भारत मे लागू हुआ। यदि किसी गाव के ५० प्रतिशत कृषक जिनके पास ⅔ भूमि से कम न हो चकबन्दी के लिये राजी हो जाय तो फिर अन्य लोगो पर भी यह अनिवार्य रूप से लागू कर दी जायगी। यह अधिनियम सर्व प्रथम छत्तीसगढ़ के क्षेत्र मे लागू किया गया और वहा इसके द्वारा पर्याप्त सफलता भी मिली स्व श्री नानावती व अजारिया ने भारतीय ग्रामीण समस्याये शीर्षक पुस्तक मे एक स्थान पर लिखा है कि सन १९३७ तक १ लाख स्थायी कृषको की ११ १३ ३०० एकड़ भूमि के २८ ३३ ००० खेतों की सख्या चकबन्दी के द्वारा घटाकर ३ ६१ ००० कर दी गई।

मध्य प्रदेश के चकबन्दी अधिनियम के उपरात सन १९३६ मे पजाब ने चकबन्दी अधिनियम पास किया और इसके बाद सन १९३९ म उत्तर प्रदेश मे और सन १९४० म जम्मू व काश्मीर मे इसी प्रकार के अधिनियम पास किये गये। इन समस्त अधिनियमो मे इसी सिद्धान्त को प्राथमिकता दी गई है कि यदि किसी ग्राम के एक निश्चित प्रतिशत व्यक्ति जोकि एक निश्चित प्रतिशत भूमि के स्वामी हो चकबन्दी के लिये अपनी इच्छा प्रगट कर तो फिर राज्य अनिवार्य रूप म उस योजना को समस्त गाँव पर लागू कर सकता है यहा यह उल्लेखनीय है कि चकबन्दी सम्बन्धी इस अधिनियम का लाभ उठाना मुख्यत ग्रामीणो की इच्छा पर छोडा गया है अर्थात यदि बहुमत इसके पक्ष म अपनी इच्छा प्रगट करे तो चकबन्दी अनिवार्यत अल्प मत पर भी लागू की जा सकती है।

यह अधिनियम कृषि के शाही कमीशन की सिफारिशो के आधार पर बनाये गये थ इनमे सबसे बडा दोष यह था कि यह सीमित क्षेत्रो म ही लागू किया गया जिन क्षेत्रो म चकबन्दी के लिये उपयुक्त वातावरण नही था वहाँ इसको लागू नही किया गया यह उचित भी थ क्याकि कोई भी राज्य सरकार केवल उसी दशा म कदम उठा सकती था जबकि बहुमत चकबन्दी के लिये इच्छुक हो। अनिवार्य चकबन्दी के लिये विभिन्न राज्यो म जो अधिनियम पास किये गये वे निम्न हैं —

(१) बम्बई अपखडन निवारण एव चकबन्दी अधिनियम १९४७

(२) पूर्वी पजाब अपखन्डन निवारण एव चकबन्दी अधिनियम १९४८

(३) पूर्वी पजाब पटियाला सघ चकबन्दी अधिनियम १९५१

(४) सौराष्ट्र अपखन्डन निवारण एव चकबन्दी अधिनियम १९५१

(५) उत्तरप्रदेश भूमि चकबन्दी अधिनियम १९५३

चकबन्दी की दिशा म सबसे पहला अधिनियम बम्बई राज्य म पास हुआ अत सन १९४७ के बाद जिन जिन राज्यो न इस दिशा म प्रयास किये वे प्राय सभी

बम्बई अप-खण्डन निवारण एवं चकबन्दी अधिनियम पर ही अवलंबित हैं। चकबन्दी के क्षेत्र में भारत के विभिन्न राज्यों में जो प्रगति हुई है उसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है—

पंजाब—भारत में सर्व प्रथम १९२०-२१ में पंजाब में श्री कालवर्ट की निगरानी में सहकारी समितियाँ बनाकर प्रचार और प्रेरणा के आधार पर चकबन्दी का कार्य शुरू किया गया। इसमें भू-स्वामियों की स्वीकृति एवं इच्छा की आवश्यकता थी अतः प्रगति बहुत धीमी रही और ३० वर्ष की अवधि में केवल ७.०७ लाख एकड़ भूमि की ही चकबन्दी की जा सकी। इस कार्य को और अधिक प्रोत्साहित करने के लिये नवम्बर १९३६ में एक चकबन्दी अधिनियम (Consolidation of Holdings Act) बनाया गया जिसने चकबन्दी की गति को कुछ अधिक तीव्र किया। इस अधिनियम के अनुसार अल्प संख्यक व्यक्तियों के विरोध के होते हुए भी चकबन्दी को अनिवार्य बनाया गया। चकबन्दी से पंजाब राज्य की कृषि को बहुत अधिक लाभ पहुँचा है। जोती जाने वाली भूमि के क्षेत्रफल तथा उत्पादन में काफी वृद्धि हुई, पारस्परिक झगड़े, तथा मुकदमेबाजी काफी कम हो गई एवं जन-साधारण में सुधार के लिये एक अभिलाषा पैदा हो गई। पंजाब में चकबन्दी योजना की सफलता के लिये वहाँ की विशेष परिस्थिति—जैसे सिंचाई की सुव्यवस्था तथा भूमि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे होने की न्यूनता काफी सीमा तक उत्तरदायी है।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश राज्य में सहकारी आधार पर चकबन्दी का काम तो सन् १९२५ में ही शुरू हो गया था, परन्तु वहाँ पर प्रगति बहुत धीमी रही। सन् १९३९ के चकबन्दी अधिनियम के अन्तर्गत कुछ प्रगति हुई किन्तु सन् १९४७ तक ६४ ६४ गाँवों में केवल ४ लाख ६४ हजार एकड़ की ही चकबन्दी की जा सकी। सन् १९५० में चकबन्दी के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये राज्य द्वारा एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार उत्तर प्रदेश चकबन्दी अधिनियम १९५३ पास किया गया, जिसके अनुसार राज्य को अनिवार्य रूप से चकबन्दी की योजना लागू करने का अधिकार मिला। कम मूल्य की भूमि के लिये तथा खड़ी फसल की हानि के लिये क्षति पूर्ति की व्यवस्था रखी गई है, गाँव की भूमि को उपज व मिट्टी के प्रकार के अनुसार कुछ वर्गों में विभाजित कर दिया जायेगा और फिर यथासंभव प्रत्येक को उसी वर्ग में भूमि दी जायेगी, जिसमें उसकी सबसे अधिक भूमि है। एक ही परिवार के व्यक्तियों को पास-पास भूमि दी जायेगी। भूमि देते समय, खेत पर *यदि किसी का निवास गृह है अथवा कोई अन्य स्थायी विकास किया गया है, तो* उसका भी ध्यान रखा जायेगा। छोटे-छोटे भूमिधारियों को गाँव के निकट ही भूमि दी जायेगी। जहाँ तक सम्भव होगा ६¼ एकड़ या इससे अधिक के चक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह अधिनियम उत्तर प्रदेश राज्य में सर्वप्रथम सहारनपुर एवं मुजफ्फरनगर जिलों की एक-एक तहसील में लागू किया गया और बाद में अन्य

म त्रा म ना यह धार धारे बन्ना गया। एसा अनुमान है कि द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्त तक सारे राज्य म चकबन्दी का काय पूरा कर दिया जायगा। इस सम्पूर्ण काय म लगभग १८ लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है।

बम्बई—बम्बई राज्य म सन १९२७ म अल्प जोत बिल (Small Holdings Bill) राज्य की विधान परिषद म पेश किया गया था किन्तु तीव्र विरोध के कारण यह स्वीकार न हो सका। इसके बाद सन १९४७ म चकबन्दी अधिनियम पास किया गया। यह अधिनियम सचमुच म एक आदर्श अधिनियम था जिसका अनुकरण बाद म अनेक राज्यो ने किया। इस अधिनियम म चकबन्दी की व्यवस्था अनुज्ञात्मक कानून (Permissive Act) की अपेक्षा अनिवार्य कानून (Compulsory Act) के रूप म की गई थी। यद्यपि यह अधिनियम ८ अप्रल १९४८ से लागू हो गया परन्तु काय रूप म इस सन १९५० म ही परिणित किया गया। इसके बाद सन १९५३ म इस अधिनियम म कुछ संशोधन किये गये। चकबन्दी का समस्त व्यय राज्य सरकार का और से होता है और कृषको से कोई फीस नहीं ली जाती।

मध्य प्रदेश—अनिवार्य चकबन्दी के लिये मध्य प्रदेश राज्य म सन १९२८ म चकबन्दी अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के अनुसार गाँव के कम से कम आधे स्थायी भूस्वामी जिनके पास गाव की कम म कम दो तिहाई भाग भूमि है यदि भूमि की चकबन्दी के लिए राजी हो तो शेष सारे भूस्वामियो को ऐसा करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा।

मू अधिकार मत्रालय मध्य प्रदेश म प्राप्त सूचनाओ के अनुसार जोतो का चकबन्दी योजना मध्य प्रदेश के ६ जिलो म कार्यान्वित की जा रही है। सन् १९५९ ६० म २०६ गावो के २ २८ ३३४ एकड़ भूमि म यह काम पूरा कर दिया गया। ३५६ गावो के लगभग २ ४६ ००० एकड़ भूमि म यह काय विभिन्न स्तरो पर चल रहा है।

अन्य राज्य—इनके अतिरिक्त दिल्ली जम्मू तथा काश्मीर बिहार और उड़ीसा आदि राज्यो म भी चकबन्दी सम्बन्धी अधिनियम बनाये गये हैं। प्रथम एव द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ म भी प्रत्येक राज्य म भूमि की चकबन्दी को प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया गया है। योजना आयोग ने इस बात की सिफारिश की है कि सामुदायिक विकास एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डो म चकबन्दी को कृषि विकास कार्यक्रम के अन्तगत प्राथमिकता देनी चाहिये।

भूमि की चकबन्दी और पच-वर्षीय योजनायें—

प्रथम योजना काल म कुछ प्रमुख राज्यो म चकबन्दी की प्रगति इस प्रकार हुई—बम्बई २१ लाख एकड़, मध्य प्रदेश २६ लाख एकड़ पजाब ४८ लाख एकड़ पेप्सू १३ लाख एकड़ व उत्तर प्रदेश ४४ लाख एकड़। द्वितीय योजना का लक्ष्य ३६० लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी करना है। जून १९५६ तक कुछ प्रमुख राज्यो

मे निम्न सीमा तक चकवन्दी की जा चुकी थी —पजाब ६५ ५५ लाख एकड, उत्तर-प्रदेश ३० ७० लाख एकड, बम्बई १८ १२ लाख एकड और मध्य प्रदेश ३३ ३९ लाख एकड ।

सयुक्त ग्राम व्यवस्था
(Joint Village Management)

उप-विभाजन व अप-खण्डन की समस्या को सुलझाने के लिये श्री त्रिलोकसिंह ने एक नया प्रस्ताव रखा है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Poverty and Social Change' मे सयुक्त ग्राम प्रबन्ध का सुझाव दिया है। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे इस जनतन्त्रात्मक विचारधारा को बडा महत्त्व दिया गया है। योजना आयोग ने इस प्रणाली को देश के लिए आदर्श माना है और इसी कारण अपनी भूमि नीति को इसी पर आधारित किया है।

योजनाओ की विशेषताएं—

संयुक्त ग्राम व्यवस्था के अन्तर्गत गाँव की समस्त भूमि को एकत्रित कर लिया जायगा और इसका प्रबन्ध ग्राम-प्रबन्धक सस्था (ग्राम पचायत व ग्राम सभा) को सौप दिया जायगा। यही सस्था इस बात का निर्णय करेगी कि कौनसी फसल बोनी चाहिये अथवा फसल के हेर फेर का कौनसा तरीका अपनाना चाहिये। यह वित्त, सुन्दर बीज, उत्तम खाद और उचित कृषि-यन्त्रो आदि का प्रबन्ध करेगी। यह कुटीर व कृषि के अन्य सहायक उद्योग-धन्धो की भी व्यवस्था करेगी। कृषि उपज को बढाने के उद्देश्य से भूमि को उचित जोतो मे बाँटा जा सकता है, जिनको प्रबन्धक सस्था एक या एक से अधिक परिवारो को काश्त के लिये दे देगी। जिन शर्तों पर भूमि खेती के लिए दी जायगी, वे ऐसी होगी, जिनसे कृषको के हृदय मे उत्साह तथा कार्य की भावना जागृत हो सके। गाँव की बजर भूमि, तालाबो, वनो और सिंचाई के छोटे छोटे साधनो का प्रबन्ध भी यही सस्था करेगी। इस प्रणाली की एक अनोखी विशेषता यह है कि साधारण सहकारी कृषि समिति से उसके सदस्य जब चाहे अलग हो सकते हैं, परन्तु सहकारी ग्राम प्रबन्ध के अन्तर्गत गाँव की समस्त भूमि सदैव के लिये एकत्रित कर ली जाती है। यहाँ भू-स्वामित्व का अधिकार तो रहता है, परन्तु सयुक्त कृषि से पृथक होने का अधिकार नही रहता है। जहाँ तक सहकारी, ग्राम प्रबन्धक सस्था के आय के बँटवारे का सम्बन्ध है, वह दो तरीको से बाँटी जायगी।

(१) आय का कुछ भाग तो स्वामित्व अधिकारो के अनुसार बाँटा जायगा और (२) कुछ खेत पर लगाये गये श्रम के अनुसार। इस प्रणाली को हम रूस की सम्मिलित कृषि और साधारण सहकारी कृषि के मध्य की प्रणाली की सज्ञा दे सकते है। यह प्रणाली सम्मिलित कृषि की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है, क्योकि इसमे

उन दोनों नियमों (अर्थात स्वामित्व अधिकार तथा समानाधिकार) जिन पर कि हमारे ग्रामीण समाज का आधार है को स्वीकार कर लिया जाता है। यही कारण है कि हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत यह प्रणाली भारत के लिये अधिक उचित है। यह प्रणाली साधारण सहकारी कृषि से इसलिये श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें उसमें अधिक सगठन होता है।

इस प्रकार सयुक्त ग्राम व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक गाव में तीन प्रकार के कार्य क्षेत्र होंगे —

(१) निजी कार्य
(२) एच्छिक सहकारी क्षेत्र
(३) सम्मिलित पंचायती क्षेत्र।

शनै शनै सहकारी क्षेत्र को इस प्रकार विस्तृत किया जायगा कि अन्त में समस्त ग्रामीण जनता सम्मिलित क्षेत्र में सम्मिलित हो जाय। सहकारी आन्दोलन का भविष्य में यह उद्देश्य होगा कि वह माल तैयार करने और उसे बेचने में इसी सिद्धान्त का पालन करे। आजकल सयुक्त ग्राम प्रबन्ध को लागू करने में निम्न लिखित साधन तथा संस्थायें सहयोग दे रही हैं —

(१) राष्ट्रीय विस्तार सेवायें
(२) ग्राम-पंचायत
(३) सहकारी साख विक्रय तथा गोदाम समितियों में उन्नति
(४) लघु उद्योगों की उन्नति
(५) एच्छिक सहकारी समितियाँ और
(६) ग्राम में पंचायती क्षेत्र का विकास

इस योजना के अन्तर्गत लगान पंचायतों द्वारा एकत्रित किया जायगा और व्यक्तिगत ऋण या तो पंचायत की जमानत पर अथवा सम्मिलित कृषि में व्यक्तिगत भावों की जमानत पर दिए जाने चाहिये।

सयुक्त-ग्राम प्रबन्ध के लाभ—

(१) कृषि उत्पादन में वृद्धि—सयुक्त ग्राम प्रबन्ध की प्रणाली के अन्तर्गत कृषि की उत्पादन क्षमता अवश्य बढ़ेगी। आजकल कृषि उत्पादन में न्यूनता का सबसे बड़ा कारण जोतों के आकार का छोटा और बिखरा हुआ होना है। इस प्रणाली के अनुकरण से जोतें बड़ी हो जायेंगी एवं विभिन्न प्रकार की मितव्ययितायें प्राप्त हो सकेंगी। कृषि करने के तरीकों में उन्नति होगी वित्त का सुप्रबन्ध हो सकेगा और किसान खेती को बिना कारण खाली नहीं छोड़ सकेंगे। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि समता को लाने की योजना एक व्यावहारिक रूप धारण कर लेगी।

(२) समान अधिकार—यह प्रणाली एक ऐसी अवस्था उत्पन्न कर देगी जिसमें गाँव के सभी लोगों को समान अधिकार मिल सकेंगे। थोडे से स्वामित्व अधिकारों को छोड कर शेष समस्त आय खेत पर लगाए गए श्रम के अनुसार बाँट दी जायगी। गाँव के सभी लोगो को मिल कर काम पडेगा। उदाहरण के लिए जमीदारो को भी काश्तकारो के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करना पड़ेगा। ग्रामीण वातावरण में यह परिवर्तन लोकतन्त्रात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अत्यन्त श्रेष्ठ एव हितकारी है।

(३) एकता में वृद्धि—इस प्रणाली के द्वारा जमीदारो तथा काश्तकारो और जमीदारो एव श्रमिको के पारस्परिक सघर्ष समाप्त हो जायेंगे तथा समाज मे स्नेह व सहकारिता का वातावरण फैल जायगा।

(४) यह प्रणाली अन्य सभी प्रणालियो की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक है।

योजना के विरोध में विचार—

इतने लाभ होते हुए भी इस प्रणाली के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये हैं —

(१) कुछ लोगो के मतानुसार हमारा देश अभी इतनी बडी क्रान्ति को स्वीकार करने के लिए तैयार नही है। इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि यह वास्तव मे प्रणाली का दोष नही है। कुछ भी हो, इस लक्ष्य को सामने रख कर हम धीरे-धीरे प्रगति की ओर बढ सकते हैं।

(२) कुछ लोगो के विचारानुसार इस योजना को कार्यान्वित करने से गाव की बहुत सी जनता बेरोजगार हो जायगी, क्योकि पुनर्निमाण के पश्चात् थोडे श्रमिको की आवश्यकता पड़ेगी। यह दलील भी विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतीत नही होती, क्योकि यह तो तभी होगा जबकि परिवर्तन आकस्मिक हो।

(३) वामपक्षियो (Leftists) का मत है कि स्वामित्व अधिकार के लाभ की आशा देकर भू स्वामित्व अधिकार को कायम रखा गया है। वास्तव मे तो यह अधिकार उसी काश्तकार को मिलना चाहिये, जो स्वय कृषि करता हो, किन्तु जब तक भारत मे व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रणाली को स्वीकार किया जायगा, तब तक ऐसा करना ही पडेगा।

(४) सरकारी अथवा सहकारी दोनो प्रकार के कार्यों के विरुद्ध प्राय यह कहा जाता है कि ऐसे प्रबन्धको से कार्य करने की भावना मे कोई वृद्धि नही होती, वरन् यह केवल एक नित्य-कर्म (Routine) रह जाता है।

योजना आयोग ने भी उपर्युक्त कठिनाइयो को ध्यान में रखते हुए यह सुझाव दिया है कि इस प्रणाली को धीरे-धीरे लागू किया जाय। प्रारम्भ मे ग्राम पचायतो को बजर भूमि का प्रबन्ध सभालना चाहिये और बाद में इसके क्षेत्र को

धीरे धीरे समस्त गांव पर बढाना चाहिये । स्थिति के अनुसार खेतों को कई जोतो मे बाँट दिया जाय और प्रत्येक जोत को एक परिवार को अथवा अनेक परिवारो के समुदाय को काश्त या खेती के लिए दे दिया जाय । जैसे-जैसे आर्थिक प्रगति के साथ अन्य क्षेत्रो मे श्रमिको की आवश्यकता बढती जाय, वैसे-वैसे जोतो के आकार को भी बढा लिया जाय और सहकारी ढग से उसकी काश्त की जाय ।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि सयुक्त ग्राम-व्यवस्था मे जो बाधायें है, वे इतनी कठिन नही है कि उनको दूर न किया जा सके । अत हमे इस प्रणाली के अनुसार कार्य करना आरम्भ कर देना चाहिये ।

(५) उत्तराधिकार तथा पैतृक सम्पत्ति के अधिनियम में परिवर्तन—भूमि के उपविभाजन पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए पैतृक सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार के नियमो मे इस प्रकार सशोधन करना चाहिए, जिससे भू सम्पत्ति का अधिकार पिता के बाद सबसे बडे लडके को ही मिले । हां, वर्तमान परिस्थितियो के अन्तर्गत यह सशोधन अधिकाँश लोगो को मान्य न होगा । साथ ही, अन्य उत्तराधिकारियो की व्यवस्था भी करनी होगी । देश मे उद्योग-धन्धो के अभाव मे ऐसा सशोधन बेकारी की समस्या को प्रोत्साहित कर सकता है । इससे समाज मे भूमिहीन कृषको की सख्या भी बढेगी । अत इन कठिनाइयो के फलस्वरूप इस प्रकार की व्यवस्था देश की वर्त्तमान परिस्थितियो के लिए उपयुक्त प्रतीत नही होगी । परन्तु फिर भी यह व्यवस्था की जा सकती है कि एक न्यूनतम क्षेत्र से कम की जोतो का विभाजन नही हो सकता और इस प्रकार परिवार के सदस्यों को उस पर सयुक्त कृषि के लिये बाध्य किया जा सकता है ।

(६) भूमि की आर्थिक इकाई नियत करना—एक सुझाव यह भी है कि कानून द्वारा यह नियत कर दिया जाय कि भूमि का विभाजन केवल आर्थिक जोतो मे ही हो सकता है । कृषि व्यवस्था मे स्थाई सुधार करने के उद्देश्य से यह आवश्यक प्रतीत होता है । हमारे योजना आयोग ने भी सभी राज्यों द्वारा आर्थिक जोत निर्धारित करने का प्रस्ताव दिया है । सरकार द्वारा आर्थिक जोत की सीमा निर्धारित कर दी जाय और किसी भी व्यक्ति को आर्थिक जोत से छोटे टुकडे मे भूमि विभाजित करने का अधिकार नही दिया जाय । सौभाग्य का विषय है कि भारत के अधिकाश राज्यो मे इस दिशा मे अधिनियम बनाये जा चुके हैं । मध्य प्रदेश मे सन् १९५९ तक सीचित भूमि के लिये ५ एकड और असीचित भूमि के लिये १० एकड की न्यूनतम सीमा निश्चित की गई है जिससे परे विभाजन नहीं हो सकता ।

उप-सहार—

जोतो के उप-विभाजन एव अप-खण्डन को रोकने के लिए ऊपर जिन उपायो

की चर्चा की गई है, उनमें सहकारी कृषि ही सर्व श्रेष्ठ उपाय है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत यह सबसे अधिक उपयुक्त प्रस्ताव है। इसके द्वारा खेती, पूँजी और श्रम के सभी साधनों को एकत्रित कर उनका समुचित उपयोग किया जा सकता है। इसमें छोटे छोटे कृषक भी बड़े पैमाने की कृषि के लाभों को प्राप्त कर सकते हैं।

STANDARD QUESTIONS

1. Carefully distinguish between an Economic Holding and Optimum Holding, and briefly point out the factors which affect the economic holdings of an agriculturist.
2. What are the causes of subdivision of holding in India? How does this affect our agricultural production?
3. Discuss the causes of Subdivision and Fragmentation of holdings in India. Suggest measures for their solving these problems.
4. Discuss the lines on which attempts have been made in some parts of India to remedy the evils of excessive subdivision and fragmentation of holdings.
5. What do you mean by consolidation of holdings? What measures have been taken by the Govt. to achieve it?
6. "Small and uneconoemic holdings are at the root of many of the difficulties in the way of agricultural development." Examine this Statement.

अध्याय ५

ग्रामीण साख

(Rural Credit)

ग्रामीण साख का महत्व—

वर्तमान युग में साख का बहुत महत्त्व है। बिना साख के बड़े पैमाने पर उद्योग धन्धों का विकास हो ही नहीं सकता। किसी भी उद्योग को भलि-प्रकार सचालित करने के लिये स्थाई एव सक्रिय पूँजी की आवश्यकता होती है। उद्योगकर्त्ता यह पूँजी यथासम्भव अपने व्यक्तिगत साधनों द्वारा जुटाता है। यदि उसके निजी साधन अपर्याप्त होते हैं, तो वह बाहरी साधनों मे ऋण प्राप्त करके पूँजी का प्रबन्ध कर लेता है। कृषि भी एक उद्योग है और अन्य उद्योगों की भाँति कृषि के लिए भी साख की आवश्यकता होती है। परन्तु अन्य उद्योगों की तुलना में कृषि उद्योग अपनी कुछ अनोखी विशेषता रखता है, यही कारण है कि साधारण औद्योगिक साख सस्थाओ द्वारा कृषि साख की पूर्ति नहीं हो सकती। साख की दृष्टि से कृषि एव अन्य उद्योगों में पाँच प्रमुख अन्तर है। प्रथम, कृषि में नियोजित पूँजी का प्रतिफल दर से प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कृषक आज बीज बोता है, तो कई महीनों के बाद उसको उपज प्राप्त होती है। अत: कृषि में अपेक्षाकृत लम्बी अवधि के लिये ऋण की आवश्यकता होती है। दूसरे, कृषि व्यवसाय में जोखिम अधिक है। प्राकृतिक प्रकोपों एव वर्षा की अनिश्चितता के कारण लाभ भी अनिश्चित होता है। तीसरे, कृषि व्यवसाय में माँग और पूर्ति म सतुलन करना सम्भव नहीं होता उदाहरणार्थ, एक बार फसल बोने के बाद फिर उत्पादन को घटाया नहीं जा सकता। इसके विपरीत अन्य निर्माण उद्योगों में मूल्य स्तर के गिरने के साथ-साथ उत्पादन भी कम किया जा सकता है। चौथे, व्यापार एव अन्य उद्योगों की तुलना में कृषकों की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ नहीं होती और जब ऋण की सुरक्षा का प्रश्न आता है, तो कृषक के पास भूमि के अतिरिक्त अन्य कोई जमानत नहीं होती। पाँचवें, कृषि एक मौसमी उद्योग है, अत: ऋण की माँग भी साल भर न रह कर कुछ विशेष महीनों म ही होती है।

उपर्युक्त विवरण म स्पष्ट है कि कृषि उद्योग को भी अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए साख की आवश्यकता होती है। यदि कृषक के सीमित

साधनो को ध्यान मे रखते हुये सच पूछा जाय, तो कृषि के क्षेत्र मे साख का महत्व और भी अधिक हो जाता है। यहाँ यह लिखना अनावश्यक होगा कि भारतीय कृषि के पिछडे होने के विभिन्न कारणो मे उचित साख व्यवस्था का अभाव भी एक महत्वपूर्ण कारण है। भारतीय कृषक की दरिद्रता एक सर्व विदित तथ्य है। भारतीय कृषक के पास कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पर्याप्त पूँजी का अभाव रहता है।

ऐसी परिस्थिति मे उसे भूमि में सुधार लाने तथा नये नये यन्त्रो, उत्तम बीज उत्तम खाद, स्वस्थ पशु आदि के प्रयोग के लिये बहुधा ऋण पर निर्भर रहना पडता है। भारतीय गाँव में एक कहावत प्रचलित है कि, "वही गाँव बसने योग्य है, जहां पर आवश्यकता पडने पर ऋण देने के लिए महाजन हों, दवा दारू के लिये वैद्य हो, पूजा-पाठ आदि के लिए पण्डित हो तथा जल का एक ऐसा साधन हो, जो कभी भी सूखता न हो।" इस कथन से भारतीय कृषक के जीवन मे साख का महत्व स्पष्ट है। परन्तु हमारे देश में श्रेष्ठ साख सस्थाओं के अभाव में महाजनो का बडा बोल बाला है। ये महाजन लेन देन मे कृषको को विविध ढंगो से शोषण करते है। अत: उचित साख व्यवस्था का महत्व हमारे देश की कृषि की उन्नति के लिए नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार 'साख को कृषि का जीवन' कहना कोई अत्युक्ति नही होगी।

हमारे देश मे कृषि साख का कोई नियत रूप नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कृषक बहुधा गाँव में निवास करते है, जहाँ सगठित साख की कोई व्यवस्था नही पाई जाती। प्रोफेसर हैमलटन के शब्दो मे, 'भारतीय गाँव में अनेक बैंकर हैं, परन्तु बैंक एक भी नही है।

कृषक की साख सम्बन्धी आवश्यकतायें—

किसानो की साख सम्बन्धी आवश्यकता को काल के अनुसार तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है :—

(१) **दीर्घकालीन ऋण**—किसानो को भूमि खरीदने, कुँआ बनवाने तथा पुराने ऋण का निपटारा करने के लिये ऋण की आवश्यकता होती है, जिसे वह थोडे समय में नही चुका सकता। इस प्रकार के ऋण की अवधि प्राय तीस चालीस वर्ष होती है। यह कृषक की प्रदेय क्षमता के अनुसार अधिक और कम भी हो सकती है। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति के अनुसार इस प्रकार के ऋण की आवश्यकता कम से कम ५ अरब रुपये है।

(२) **मध्यकालीन ऋण**—कृषि यन्त्रो, मशीनो, बैलो आदि के खरीदने के लिये कृषक को मध्यकालीन ऋण की आवश्यकता पडती है, जो प्राय: १½ २ वर्ष से पाँच वर्ष तक की अवधि के लिये लिए जाते हैं, विवाह, भोज, आदि के लिये जो ऋण लिये जाते है। वे भी इसी अवधि के लिये होते है, क्योंकि राशि प्राय इतनी

अधिक होती है कि एक वर्ष में उसका भुगतान नहीं हो सकता। मध्य कालीन साख की मात्रा में भी प्रादेशिक विभिन्नता पाई जाती है।

(३) अल्पकालीन ऋण—किसान को अपनी वर्तमान आवश्यकताओं, जैसे बीज, खाद, हल, भोजन सामग्री तथा अन्य कम मूल्य के साधारण औजारों को खरीदने, मन्डी तक पैदावार को ले जाकर बेचने एवं खेती की अन्य क्रियाओं के लिये अल्पकालीन ऋण की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार की साख 'मौसमी साख' भी कही जा सकती है, जो ६ माह से लेकर १८ माह तक की अवधि के लिए दी जा सकती है। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति के अनुमानानुसार कृषकों की अल्पकालीन साख की आवश्यकता कम से कम तीन अरब से चार अरब रुपये तक है, यद्यपि डा० बल्जीतसिंह के अनुसार इसकी न्यूनतम सीमा ६ अरब रुपये है।

कृषि साख प्राप्ति के साधन—

औद्योगिक व व्यापारिक साख पूर्ति के साधनों का सगठित विकास भारत में १६वीं शताब्दी के अन्त से ही आरम्भ हो गया था, किन्तु ग्रामीण साख सम्बन्धी सुविधाओं के विकास की दिशा में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किये गये। ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (All India Rural Credit Survey Committee) के अनुसार किसानों को साख प्रदान करने के लिये निम्नलिखित संस्थायें है—

साधन	प्रतिशत
सरकार (Government)	३·३
सहकारी समितियाँ (Co operative Societies)	३·७
सम्बन्धी (Relatives)	१४ २
जमींदार (Landlord)	१ ५
कृषक साहूकार (Agriculturist money lenders)	२४·६
पेशेवर साहूकार (Professional Moneylenders)	४४ ८८
व्यापारी वर्ग (Traders and Commission Agents)	५.५
व्यापारिक बैंक (Commercial Bank)	०·६
अन्य साधन (Other Sources)	
कुल	१००·००

आजकल हमारे देश में कृषकों के लिये साख प्राप्ति के निम्न मु साधन है—

(१) गाँव के महाजन एवं देशी बैंकर,
(२) सहकारी साख समितियाँ,
(३) भूमि बन्धक बैंक,

(४) सरकार,

(५) सयुक्त पूँजी वाले बैंक,

(६) रिजर्व बैंक, और

(७) स्टेट बैंक।

(१) गाँव के महाजन एवं देशी बैंकर

प्रथा—

गाँव मे कृषि की व्यवस्था करने में गाँव के महाजन का बहुत बडा महत्व है। इन महाजना को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते है—पहले वे महाजन जो द्रव्य उधार देने का पेशा करते हैं और दूसरे वे जो उधार देन का पेशा नही करते है। पेशेवर महाजन द्रव्य उधार देने के साथ ही साथ गाँव की उत्पादित वस्तुओ का व्यापार भी करते हैं और वे गाँवो में ही अधिक पाये जाते हैं। भिन्न भिन्न राज्यो में ये भिन्न भिन्न नामो से पुकारे जाते है, जैसे—बनिया, महाजन, साहूकार, किस्त वाला, पठान इत्यादि। पेशेवर न होने वाले लोगो में जमीदार, धनिक किसान तथा विधवा स्त्रियाँ मुख्य हैं, जो प्राय उन्ही लोगो को ऋण देते है जिन्हे वे अच्छी तरह से जानते हो। अपने स्थानीय ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर वह स्पष्ट सम्पत्ति के बिना भी ऋण दे देता है और इतना होते हुए भी हानि से अपनी रक्षा करता है।

दोष—

किन्तु महाजनो के इस कार्य में कई दोष है। वह किसान को, इस बात की चिन्ता किये बिना कि वह किस काम के लिये ऋण ले रहा है, उत्पादक अथवा अनुत्पादक ऋण दे देता है। वह प्राय इस शत पर भी ऋण देता है कि गाँव की फसल उसको ही अथवा उसके द्वारा ही बेची जावेगी। इसका परिणाम यह होता है कि किसानो को दबाव में आकर सस्ते भाव में अपनी फसल बेचनी पडती है। वह सूद-दर सूद लगाता है, जिससे ऋण का भार बहुत ही जल्दी बढ जाता है। इसके अतिरिक्त और भी कई दोष हैं। जैसे—

(१) जब महाजन किसानो को ऋण देते है, तो मूलधन की रकम म से पूरे वर्ष का सूद काट कर बाकी रकम ही देते हैं और बन्ध (Bond) पूरी रकम का लिखवाते है। इसके अतिरिक्त काटे हुए सूद की रसीद भी नही देते और बडी ही सरलता से १ वर्ष की अवधि समाप्त होने पर उसी वर्ष का दूसरी बार सूद माँग लेते है। जब कर्जदार निश्चित अवधि के समाप्त होने पर ऋण नही चुका पाता, तो महाजन कोरे बन्ध पर उसके हस्ताक्षर ले लेते हैं और बाद में ऋणी की वास्तविक रकम

से अधिक रकम का बंध लिखने में संकोच नहीं करते । कभी कभी तो ऋण देते समय भी दिये जाने वाले ऋण की राशि से अधिक रुपयों का बंध लिखकर अशिक्षित किसानों के हस्ताक्षर करवा लेते हैं।

(२) समय समय पर कर्जदारों की ओर से ऋण के पेटे जो किस्तें महाजनों को दी जाती हैं उनकी रसीद किसानों (कर्जदारों) को नहीं दी जाती और बहीखाता में जमा की गई रकम का विवरण भी नहीं लिखते । इस प्रकार किसानों से दिए गये ऋण से भी अधिक वसूल किया जाता है।

(३) कहीं कहीं ऋण के अतिरिक्त 'गद्दी खर्च,' 'सलामी' 'कटौती,' 'बटावन' गिरह खुलाई इत्यादि दीपको के अन्तर्गत अन्य खर्चे भी महाजनों द्वारा वसूल किये जाते हैं । इस प्रकार किसानों पर ऋण भार दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है।

सुधार के प्रयत्न—

इन सब दोषों के रहते हुए भी हम यह तो मानना ही होगा कि गाँव में महाजन किसानों को आवश्यकता के समय ऋण देकर जितनी सहायता करते हैं उतनी कोई नहीं करता, अतः किसानों की अल्पकालीन तथा मध्यकालीन आर्थिक आवश्यकताओं के पूरी करने में भविष्य में भी उनका कार्य चलता रहेगा। वास्तव में आवश्यकता है महाजनों पर नियन्त्रण करने की, न कि उनके कार्य को बन्द करने की। इसके लिए कृषि अर्थ प्रबन्धन उप समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार नियन्त्रण होना चाहिए, जिसकी मुख्य बातें ये हैं—साहूकारों का रजिस्ट्रेशन तथा उन्हें अनुमति पत्र देना, निर्धारित ढङ्ग पर खाता का रखना, प्रत्येक ऋण का पूर्ण विवरण कर्जदारों को देना। कर्जदारों के रुपया चुकाने पर (प्रत्येक किस्त के समय) रसीद देना, सूद दर सूद की सीमा निश्चित करना, कर्जदारों की साहूकारों के प्रचलित दोषों (धोखा देने से सम्बन्धित) से रक्षा करना एवं राज्य की ओर से निरीक्षण तथा देख रेख के लिए प्रबन्ध करना इत्यादि।

हमारे देश के बम्बई, आसाम, बङ्गाल, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, पंजाब, उत्तर प्रदेश इत्यादि राज्यों ने उपर्युक्त दोषों से किसानों की रक्षा करने तथा ऋण सम्बन्धी लेन देन के ढंगों पर कानून बना कर नियन्त्रण करने का प्रयत्न किया, जिसका फल अच्छा ही हुआ है। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे के अनुसार उपर्युक्त श्रोत से भी भारतीय कृषकों की लगभग ७०% साख आवश्यकतायें पूर्ण होती हैं, अतः कुछ दुर्गुणों के होते हुए भी इस प्रथा का पूर्णतः उन्मूलन नहीं किया जा सकता। श्री एम० एल० डार्लिंग का भी यही विचार है।

(२) सहकारी साख समितियाँ

व्यवस्था एवं दोष—

ये समितियाँ अपने सदस्यों को थोड़े समय के लिए बीज, खाद, हल, औजार, आदि मोल लेने के लिए ऋण देती हैं। पहले ये सदस्यों को विश्वास पर ही ऋण दिया करती थी, परन्तु अब धरोहर के रूप में भी कुछ लेती हैं और अपने सदस्यों को लाभांश भी देती हैं। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे के अनुसार कृषक की आवश्यकताओं का ३०% भाग इसी श्रोत द्वारा पूरा होता है। अतः स्पष्ट है कि इनसे कृषकों को बहुत कम लाभ पहुँचा है। अभी तक इनकी उन्नति बहुत कम हुई है। वास्तविकता यह है कि इनके सदस्य अशिक्षित, अज्ञानी एवं रूढ़िवादी हैं। समितियों के ऊपर राजकीय नियन्त्रण बहुत अधिक है, अतः सदस्यगण कार्य में विशेष रुचि नहीं लेते हैं। समितियों के सदस्य रुपया नहीं लौटाते, इसलिए वह बट्टे खाते में जाता है। समितियाँ इस बात पर कभी भी विचार नहीं करती कि सदस्यगण ऋण व्यय किस प्रकार कर रहे हैं। अधिकांश ग्रामीण आज भी इन समितियों की अपेक्षा गाँव के महाजन को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकिः—(१) गाँव के महाजन बिना किसी धरोहर के ऋण देता है। (२) सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार एवं लाल फीता के कारण ऋण बहुत मँहगा पड़ता है। (३) किसान को यह भय रहता है कि सहकारी समिति ऋण की वसूली में कठोरता बरतेगी। (४) सहकारी व्यवस्था के अन्तर्गत निरीक्षण स्टाफ द्वारा देखभाल होने एवं ऋण लेने की बात फैलने का भी किसान को संकोच रहता है। समितियों की दशा सुधारने तथा उनको अधिक उपयोगी बनाने के लिए यह प्रस्ताव है कि इन समितियों को बहु-उद्देश्यीय समितियों में बदल दिया जाय, जहाँ कि किसान की नमक से लेकर हल, बैल तक की समस्त आवश्यकतायें पूर्ण हो सकें। हर्ष का विषय है कि उत्तर-प्रदेश, बम्बई आदि राज्यों में ऐसी समितियाँ स्थापित की जा रही हैं।

आजकल सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि कृषकों को लघुकालीन व मध्यकालीन ऋण सहकारी साख समितियों द्वारा दिये जाएँ और इस हेतु द्वितीय योजना-काल के अन्त तक इन समितियों की सदस्यता ६० लाख से बढ़ा कर १½ करोड़ करने की है। इस बीच इन समितियों द्वारा १५० करोड़ रुपया लघुकालीन ऋण के रूप में, ५० करोड़ रुपया मध्यकालीन ऋण के रूप में और २५ करोड़ रुपया दीर्घकालीन ऋण के रूप में दिया जायगा। इस प्रकार सन् १९६०-६१ तक सहकारी समितियाँ कृषि साख का २५% प्रदान कर सकेंगी।

(३) भूमि बन्धक बैंक

सहकारी साख समितियाँ अल्पकालीन व अधिक से अधिक मध्यकालीन साख

दे सकती है। दीर्घकालीन साख देना उनके वश के बाहर की बात है। इसके लिए तो भूमि प्रबन्धक बैंक ही उपयुक्त समझी गई हैं। ये निम्न कार्यों के लिए साख देती है — (१) किसानों की भूमि तथा मकानों को छुड़ाना, (२) खेती की भूमि तथा खेती बारी के धन्धे को उन्नत करना और किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण चुकाना, और (४) भूमि खरीदने के लिए रुपया देना। इन कार्यों के लिये वे ऋण पत्र जारी करती हैं एवं दीर्घकालीन डिपाजिट लेती है।

असफलता के कारण—

अनेक राज्यों में ये बैंक असफल रही है, क्योंकि (१) बन्धक जायदाद का ठीक ठीक मूल्य नहीं आंका जा सकता, (२) मन्दी के कारण भूमि के मूल्य में कमी होने से बैंकों की जमानत कम पड़ गई, (३) भूमि पृथक्करण कानून (Land Aliena tion Act) के कारण भूमि पर अधिकार नहीं किया जा सकता था, (४) बैंक के डाइरेक्टर वगैरह स्वयं बैंक से बहुत ऋण लेते थे और (५) फसल की कीमत गिर जाने पर ऋणी किसानों की ऋण चुकाने की शक्ति कम हो गई।

इन बैंकों की आवश्यकता को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता, अतः इन्हें प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक है कि राज्य सरकारें इनके द्वारा निर्गमित ऋण पत्रों के मूलधन तथा ब्याज की गारन्टी करें और रिज़र्व बैंक इनके ऋण पत्रों को ट्रस्टी सिक्योरिटी घोषित करे।

(४) सरकार से साख प्राप्ति

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें भी किसानों को ऋण देकर आर्थिक सहायता करती हैं। ऐसे ऋण को 'तकावी ऋण' कहा जाता है। प्रान्तीय सरकारें किसानों को सन् १८८३ के भूमि सुधार अधिनियम के अन्तर्गत दीर्घकालीन ऋण देते हैं, जो कृषि के स्थायी सुधार में जैसे—कुंआ खोदना, बाँध बनाने इत्यादि के लिए लगाया जाता है।

इसी प्रकार सन् १८८४ के किसान ऋण अधिनियम के अन्तर्गत भी बीज, औजार, खाद, हल, बैल इत्यादि खरीदने के लिए अल्पकालीन ऋण (जो एक या दो वर्षों के लिए दिया जाता है) देती है। इन ऋणों की अदायगी लम्बी अवधि तथा छोटी किस्तों में की जाती है। सूद की दर भी कम होती है, यही विशेषता है।

दोष—

किन्तु तकावी ऋण से हमारे देश के किसानों को विशेष सहायता नहीं मिल पाई है, जिसके कारण ये है—ऋण की स्वीकृति करने में विलम्ब, सरकारी कर्मचारियों द्वारा अवैधानिक रिश्वतें माँगना, ऋण की अदायगी के लिए कठोरता, देख रेख की कठिनता और प्रबन्ध की अस्थिरता इत्यादि मुख्य हैं। इन असुविधाओं के

अन्तर्गत जो ऋण दिया जाता है वह किसानो की आवश्यकताओं से कम होता है (वह भी केवल खेती के ही लिए)। अधिकांश किसानों को तकावी ऋण किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, इसका भी ज्ञान नही होता। यदि ये बुराइयाँ दूर हो जाएँ तो सरकार इन ऋणों को देकर कृषि सुधार के पवित्र कार्य में अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकती है। अकाल की कठिनाइयों को दूर करने म अल्पकालीन ऋण अच्छा फल दे सकते ह और विशेषकर उन अविकसित एव पिछड़े क्षेत्रो में जहाँ सहकारी साख समितियाँ सफल नहीं हो सकतीं।

ऐसा अनुमान है कि सब राज्य सरकारें किसानो की कुल ३% आवश्यकताओं को पूरा करती है। इन ऋणों को देने में सरकार बहुत दर लगाती है। इन ऋणों से कृपकों को लाभ पहुँचाने के लिए केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति न निम्न सुभाव दिये हैं—(१) ऋणों को देने में दरी नही करनी चाहिए। (२) घूसखोरी को रोकने का प्रबन्ध किया जाय। (३) यदि फसल खराब हो जाय, तो ऋण छोड़ देना चाहिए। (४) कृपकों को पता होना चाहिए कि ये ऋण किस प्रकार दिये जाते हे। और (५) ये ऋण सहकारी समितियो द्वारा दिये जाने चाहिए।

(५) संयुक्त पूँजी वाली बैंक

ये बैंकें भी कृषि साख के लिये प्रत्यक्ष रूप मे विशेप सहायता नहीं पहुँचाती। उनके साधारण व्यवसाय में कृषि अर्थ प्रबन्धन का काय नही किया जाता, क्योंकि उनका सगठन अल्पकालीन या दीर्घकालीन ग्राम्य साख आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए नहीं होता। फिर भी ये परोक्ष रूप में व्यापारियो के द्वारा कृषि अर्थ-प्रबन्धन के कार्य में सहायता अवश्य पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त किसानों के पास खेती की सुरक्षा की योग्यता नही रहती, कृषि अर्थ-प्रबन्धन की विशेप प्रकृति, उद्योग की मौसमी आवश्यकता एव अनार्थिक प्रकृति, किसानो की अज्ञानता एव अशिक्षा इत्यादि ऐसी बातें है, जो व्यापारिक बैंको को प्रोत्साहन नही देती। यदि किसानो के द्वारा उत्पादन की जाने वाली फसलो पर तथा सारे अथवा खेती के धन (पशु) पर पहिला अधिकार व्यापारिक बैंको को दिया जावे तो वे अवश्य ही कृषि की ओर अपने व्यापार का विकास कर सकती हैं।

(६) रिजर्व बैंक

रिजर्व बैंक ने कृपको की आर्थिक सहायता के हेतु एक कृषि-साख विभाग खोला है, जो निम्न ढङ्गो से साख सुविधा प्रदान करता है :—

(१) यह सहकारी प्रतिभूतियो के पीछे अधिक से अधिक ६० दिन के लिए राज्य सहकारी बैंको एव केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको को ऋण दे सकता है।

३०% मकान बनवाने या मरम्मत का २५% और अन्य मदों का १०% व्यय उधार से पूरा किया जाता है।

(६) सम्पूर्ण देश के लिये ग्रामीण परिवारों का पूंजी बनाने पर कुल व्यय ६५० करोड़ रुपया है जिसमें से ३०० करोड़ रुपये कृषि में (भूमि और ढोरों का क्रय छोड़कर) लगभग २५० करोड़ रुपया रिहायशी मकानों आदि में और १०० करोड़ रुपया गैर कृषि व्यवस्था में व्यय होने का अनुमान था।

(७) कृषि में पूंजी विनियोग की कुछ विशेष मदों के लिये खेतिहर परिवारों की साख आवश्यकताये वास्तविक व्यय की तुलना में उच्च स्थिति के परिवारों की दशा में २ से ६ गुनी अधिक और निम्न स्थिति के परिवारों की दशा में ३ से २७ गुना अधिक है।

(८) खेतिहर जो प्रतिभूति दे सकते हैं उनके सम्बन्ध में यह पता लगा कि लगभग ५०% परिवार अपनी अचल सम्पत्ति जमानत के रूप में देते हैं। बाकी में से लगभग १/४ अपनी व्यक्तिगत जमानत पर रुपया लेते हैं। बाकी में से अधिकांश ने अपनी जमानत का आधार नहीं बताया। यहीं नहीं उच्च वर्ग का ऋण आवश्यकताये प्रति परिवार १ ३००) है और नीचे के वर्ग की ८००) जबकि उनकी जमीन-जायदाद का मूल्य क्रमश ७ ०००) और २ ०००) प्रति परिवार है।

(९) मोटे तौर पर ग्रामीण क्षेत्र में दिये गये कुल धन का लगभग १/२ से २/३ तक शायद शहरी क्षेत्रों से आता है।

(१०) विचाराधीन वर्ष में प्रति खेतिहर परिवार उधार ली गई रकम औसतन २१०) थी जिसमें से लगभग ३% सरकार से ३% सहकारी संस्थाओं से १४% सम्बन्धियों से २% जमींदारों से २५% खेतिहर साहूकारों से ४५% पेशेवर महाजनों से ६% व्यापारियों से और १% से कुछ कम वाणिज्य बैंकों से प्राप्त होता है। बाकी अन्य प्रकार के ऋणदाताओं से प्राप्त हुआ है।

समिति की महत्त्वपूर्ण सिफारिशें—

(१) नवीन कृषि साख नीति के अन्तर्गत राजकीय बैंक की स्थापना का सुझाव सबसे महत्त्वपूर्ण है—केन्द्रीय सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया है और प्रथम जुलाई सन् १९५५ से इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया को भारत की राज्य बैंक में परिवर्तित कर दिया गया है। बैंक प्रधानतः उन क्षेत्रों में नई शाखायें बढ़ायेगा जहाँ अभी तक अन्य बैंकों की शाखायें नहीं है और जहां सहकारी शाखा समितियों का विकास नहीं हुआ है। बैंक के विकास के साथ साथ सहकारी ऋण संस्थानों को ऋण सुविधायें सुलभ हो सकेंगी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में मुद्रा के स्थानान्तरण में सरलता होगी।

(२) राष्ट्रीय सहकारी विकास एवं भाण्डारण बोर्ड—एक 'राष्ट्रीय सहकारी विकास एव भाण्डारण बोर्ड' (National Co-operative Development and Warehousing Board) बनाया जाय, जिसके निम्न दो उद्देश्य हो—सहकारी सगठन, विशेषकर विक्रय समितियो का विकास करना और कृषि उत्पादन के सग्रहीकरण की सुविधाओं का विकास करना । इसके अन्तर्गत दो कोष होंगे—राष्ट्रीय सहकारी विकास फण्ड एव दूसरा राष्ट्रीय भाण्डारण विकास फण्ड । राष्ट्रीय सहकारी विकास फण्ड केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गई ३ करोड रुपये की निधि से प्रारभ किया जायगा और राज्य सरकारो को दीर्घकालीन ऋण देने में प्रयोग होगा, जिससे राज्य सरकारें राज्य की सहकारी विकास समितियों की पूँजी में रुपया लगा सकें। दूसरा कोष केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की गई २ करोड रुपये की निधि से आरम्भ होगा और इसका उपयोग 'अखिल भारतीय भाण्डारण निगम' की अश पूँजी में लगाने तथा राज्य सरकारो को राज्य भाण्डारण कम्पनियों में रुपया लगाने के लिए ऋण देने में होगा।

(३) राष्ट्रीय कृषि साख फण्ड—रिजर्व बैंक द्वारा दो फण्ड स्थापित किये जायेंगे । राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) फन्ड में ५ करोड रुपया होगा और प्रति वर्ष रिजर्व बैंक इसमे ५ करोड रुपया जमा करती रहेगी । इस फण्ड में से रिजर्व बैंक राज्य सरकारो को दीर्घकालीन ऋण देगी, जिससे वे राज्य की सहकारी साखसमितियो की शेयर पूँजी में रुपया लगा सकें । राज्य सरकारो द्वारा प्रमाणित भूमि बन्धक बैंको को भी इस निधि में से रुपया दिया जायगा । 'राष्ट्रीय कृषि साख (स्थायीकरण) फण्ड' (National Agricultural Credit (Stabilisation) Fund) में रिजर्व बैंक प्रति वर्ष १ करोड रुपया जमा करेगी, जिसका उपयोग राज्य सहकारी बैंको (Apex Banks) को मध्यकालीन ऋण देने में किया जायगा । हाँ, इन बैंको के पास इस बात के सन्तोषजनक कारण होने चाहिए कि अमुक राज्य बैंक दुर्भिक्ष या बाढ अथवा अन्य किसी कारण से अल्पकालीन ऋणो का भुगतान करने में असमर्थ है। ऐसी दशा में इन अल्पकालीन ऋणो को मध्यकालीन ऋणो में परिवर्तन किया जा सकेगा और वह रुपया राष्ट्रीय कृषि साख (स्थायीकरण) कोष में से दिया माना जायगा । राज्य सहकारी बैंको को भी अपने अपने क्षेत्रो में इस प्रकार के फण्ड खोलने होंगे, ताकि वे केन्द्रीय बैंको के बकाया अल्पकालीन ऋणो को इस फन्ड के द्वारा मध्यकालीन ऋणो में परिवर्तित कर सकें ।

(४) सहकारी संस्थाओं मे राज्य द्वारा सह-स्वामित्व—यह सुझाव भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समिति का कहना है कि यह सह-स्वामित्व (State Partnership) केन्द्रीय व प्राथमिक साख समितियों में भी इस प्रकार से स्थापित किया जाना चाहिये, जिसमे शीर्ष-स्तर केन्द्रीय स्तर एव प्राथमिक स्तर पर शेयर

पूँजी का कम से कम ५१% भाग किसी न किसी रूप में राज्य के स्वामित्व में आ जाय। वस्तुतः राज्य सरकार राज्य के सहकारी शीर्ष बैंकों में पूँजी विनियोजित करेगी और शीर्ष बैंक केन्द्रीय बैंकों में तथा अन्ततः केन्द्रीय बैंक प्राथमिक सहकारी साख समितियों में। इस प्रकार राज्यों का सारा सहकारी साख संगठन एक सूत्र में बँध जायगा और उसमें राज्य द्वारा पूँजी के विनियोग से ऋण सुविधाओं का विकास होगा तथा कृषि साख सम्बन्धी नीति के प्रचलन में सुविधा रहेगी।

(५) प्रशिक्षण एवं निरीक्षण—समिति ने अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया है, जिससे नवीन संगठन का कार्य-संचालन एवं निरीक्षण कुशलतापूर्वक हो सके।

इस प्रकार समिति ने एक ऐसी नीति का सुझाव दिया है जिसमें राज्य केवल संचालक ही नहीं बल्कि साझीदार भी होगा। यद्यपि यह सहकारिता के सिद्धान्तों के विरुद्ध है कि संगठन में राज्य का इतना प्रभुत्व हो, तथापि भारतीय कृषि की वर्तमान आवश्यकताओं को देखते हुये यह मार्ग उचित है। इस नीति का लक्ष्य यह है कि राज्य द्वारा प्रतिपादित एवं संचालित सहकारी साख संगठन के विकास में कृषि के क्षेत्र में इतनी अधिक प्रतियोगिता उत्पन्न हो कि प्राइवेट साख संस्थाओं के वर्तमान दोष स्वयं दूर हो जायें और भविष्य में वे राष्ट्रीय कृषि नीति के हित को ध्यान में रखकर ही साख सुविधायें प्रदान कर सकें। केन्द्रीय सरकार ने समिति की अधिकांश सिफारिशों को सिद्धान्ततः मान लिया है। भारत की राज्य बैंक स्थापित हो चुकी है तथा अखिल भारतीय भाण्डारण निगम की स्थापना प्रगति के पथ पर है।

पंच-वर्षीय योजनाओं में कृषि साख—

भारत की प्रथम पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार तथा सहकारी संस्थाओं द्वारा सन् १९५५-५६ तक १३५ करोड़ रुपये की कृषि साख प्रदान करने का आयोजन था, किन्तु कुछ कारणों से इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकी। प्रथम योजना अवधि में केवल ४३ करोड़ रुपये की कृषि साख की ही व्यवस्था की जा सकी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार तथा सहकारी समितियों द्वारा कुल २२५ करोड़ रु० की कृषि साख व्यवस्था का आयोजन है, जिसमें अल्पकालीन साख की मात्रा १५ करोड़ रुपये, मध्यकालीन साख की मात्रा ५५ करोड़ रुपया और दीर्घकालीन साख की मात्रा केवल २५ करोड़ रुपया हो गई।

STANDARD QUESTIONS

(1) Examine the existing agencies for financing agriculture in

India What have been their limitations ? What Steps have been taken in recent years to remove them ?

(2) Give the main findings of the All India Rural Credit Survey Outline the principal recommendations made therein for the reorganisation of the system of rural credit

(3) Discuss the position of Village Moneylenders in our rural Economy

(4) What are the financial requirements of Indian agriculturist How and from what sources do they get the necessary finance

अध्याय ६

सहकारिता

(Co-operation)

प्रारम्भिक—

सहकारिता शब्द का शाब्दिक अर्थ है—'एक साथ मिल जुल कर कार्य करना।' अतः सृष्टि के आरम्भ से ही सहकारिता किसी न किसी रूप में मानव समाज में विद्यमान रही है। मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर उसे अन्य व्यक्तियों के सहयोग से ही कार्य करना पड़ता है। मानव ही क्यों, पशु-पक्षी, कीड़े मकौड़े आदि भी मिल कर कार्य करते हुए देखे जाते हैं। यह एक सामान्य अनुभव है कि सम्मिलित प्रयत्न द्वारा जो कार्य किया जाता है, वह निश्चय ही सफल होता है एवं सम्पन्न हो जाता है। सम्मिलित प्रयास के द्वारा मानव बड़ी बड़ी योजनाओं को सरलता से ही पूरा कर डालता है।

गत कुछ शताब्दियों से (विशेषकर औद्योगिक क्रान्ति के बाद) विश्व के कुछ प्रमुख राष्ट्रों में ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील रही हैं, जिनके कारण मानव द्वारा मानव का शोषण बढ़ गया है। जो शक्तिशाली हैं एवं भौतिक दृष्टि से साधन सम्पन्न हैं, वे अशक्त एवं निर्धन व्यक्तियों को प्रतियोगिता में टिकने नहीं देते। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले इस युग में पूँजीपतियों, उद्योगपति एवं बड़े बड़े व्यापारियों की ऐसी अनेक संस्थायें हैं, जिनके समक्ष असंख्य छोटे छोटे उत्पादक एवं श्रमिक अपना जीवन निर्वाह नहीं कर पाते। परिणामतः उनका निरन्तर शोषण होता रहता है और भौतिक उन्नति करने में वे अपने को विवश पाते हैं। 'सहकारिता' ऐसे ही असंख्य व्यक्तियों की भौतिक प्रगति के लिए रामबाण है जो शक्तिहीन हैं, निर्धन हैं तथा निरन्तर शोषण के कारण जिनका आत्मविश्वास खो गया है—सहकारिता उनमें नवीन शक्ति का संचार करती है और सदैव के लिए उनकी सुख समृद्धि का मार्ग खोल देती है।

सहकारिता से आशय—

सहकारिता एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसके द्वारा एकाकी तथा शक्तिहीन व्यक्ति दूसरों के सहयोग से ऐसे भौतिक लाभ प्राप्त करता है, जो केवल धनाढ्य व

शक्तिशाली लोगों को ही उपलब्ध है। सहकारिता की योजना के अन्तगत निर्बल व्यक्ति अथवा वग अपने हितो की रक्षा करन अथवा उन्नति के लिए मिल जुल कर कार्य करते है। इस प्रकार यह एक मिला जुला प्रयत्न है। जिसका उद्देश्य पारस्परिक सहायता द्वारा सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना अथवा सामूहिक कठिनाइयो को दूर करना होता है। इसका आधार यह होता है कि 'प्रत्येक सबके लिए हो, और सब प्रत्येक के लिए।' सहकारिता के द्वारा जीवन के ऐसे उच्चतम एव उन्नत स्तर की वास्तविक सिद्धि की आशा की जाती है जिससे श्रेष्ठतम व्यापार, श्रेष्ठतम कृषि तथा समृद्ध जीवन सम्भव हो सके।

कुछ परिभाषायें —

श्री फे (Fay) के अनुसार, 'एक सहकारी समिति मिलकर व्यापार करने का वह सगठन है, जो दुर्बल व्यक्तियो में बनता है और निष्काम भावना से ऐसी शर्तों पर सचालित किया जा सकता है कि सभी व्यक्ति, जो इसकी सदस्यता से सम्बन्धित कर्तव्यों को ग्रहण करते हैं, उसके लाभ में उसी अनुपात में भाग पायेंगे, जिसमे उन्होने सगठन का प्रयोग किया है।

श्री हैरिक (Harric) का कथन है—'सहकारिता स्वेच्छा से सगठित हुए उन व्यक्तियों का कार्य है जो अपनी सम्मिलित शक्ति या प्रसाधनों का सम्मिलित प्रबन्ध के अन्तगत सबके लाभार्थ उपयोग करना चाहते हैं।'

सर होरेस प्लन्केट के शब्दों में "सहकारिता वास्तव में आत्म-सहायता है, जो कि सगठन के कारण अधिक प्रभावशाली हो जाती है।"

श्री एच० कलबर्ट कहते हैं, 'सहकारिता उस प्रकार का सगठन है, जिसमें समानता के आधार पर और अपने आर्थिक हितों की उन्नति के लिए व्यक्ति स्वेच्छा से भाग लेते हैं।'

सहकारी योजना समिति १९४६ के अनुसार, 'सहकारिता एक ऐसा सगठन है जिसमें लोग समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितो की वृद्धि के लिए स्वेच्छा से सम्मिलित होते है। जो लोग शामिल होते हैं, उनका एक सामान्य हित होता है, जिसे वे व्यक्तिगत प्रयास द्वारा पूरा नही कर सकते, क्योंकि उनमें से अधिकांश व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति दुर्बल होती है। इस व्यक्तिगत दुर्बलता पर अपने अलग अलग साधनों का एकीकरण करके, पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म-सहायता को प्रभावशोल बनाकर और आपस मे ईमानदारी का व्यवहार रखते हुए विजय प्राप्त कर ली जाती है।'

सक्षेप में सहकारिता एक प्रकार का सगठन है, जिसमें विभिन्न व्यक्ति अपने

किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ निश्चित नियमो के अन्तर्गत अधिकतम लाभ के लिए मिलकर कार्य करते है।

सहकारिता के आवश्यक तत्व—

सहकारिता की उपयुक्त परिभाषा के अध्ययन से इसके निम्न तत्व स्पष्ट हैं।

(१) ऐच्छिक सगठन—सहकारी सगठन एक ऐच्छिक सगठन है अर्थात् किसी पर इसमें शामिल होने या अलग हो जाने के लिए दबाव नही डाला जाता। दूसरे शब्दो में, प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है कि वह जब चाहे इसका सदस्य बन जाए और जब चाहे अलग हो जाय। श्री एच० कलवर्ट महोदय ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जब व्यक्तियो को सम्मिलित होने की अथवा अलग होने की स्वतन्त्रता होगी, तभी वफादारी, ईमानदारी और निष्कामभाव वाली वास्तविक सहकारिता की भावना का विकास हो सकता है और सहकारिता की भावना के बिना 'सहकारिता' अधिक दिनो तक नही चल सकती।

(२) प्रजातन्त्रीय प्रशासन—एक सहकारी समिति का प्रबन्ध जनतन्त्र के सिद्धान्तो पर किया जाता है। यह एक ऐसा ऐच्छिक सगठन है, जिसमें विभिन्न व्यक्तियो को सयुक्त करने वाली कडी एक सामान्य आर्थिक आवश्यकता का होना है, अत यह नितान्त आवश्यक है कि सब व्यक्ति इसमें समान रूप से 'आवाज' रखें, जिससे किसी को भी हानि न पहुँचे। जनतन्त्रीय शासन में व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा शोषण नही होता। इसके अन्तगत शक्ति का दुरुपयोग सम्भव नही। सहकारिता के अन्तगत लोगो का उद्देश्य एक दूसरे को सहायता देकर अपनी सहायता करना होता है, लाभ कमाना नही। पूजी के आधार पर मताधिकार भी नही दिए जाते और न सगठन के लोगो का पूँजी के अनुपात में वितरण होता है। 'एक व्यक्ति एक वोट' का सिद्धान्त अपनाया जाता है, अर्थात् सभी को प्रबन्ध में बराबर अधिकार मिलता है और व्यापार के लाभो का सदस्यो में वितरण कर दिया जाता है।

(३) पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता—सदस्यगण अपने ही आर्थिक हितो की वृद्धि के लिए सगठित होते है, दूसरे के लाभार्थ नही। वे सहकारी सस्था के लिए और सहकारी सस्था उनकी सहायता के लिए होती है। 'पारस्परिक सहायता के द्वारा आत्म सहायता करना' उनका मूल मन्त्र है। सदस्यगण आवश्यकता वाले व्यक्ति की इसलिये सहायता करते है, क्योंकि वे जानते है कि जब उन्हें सहायता की आवश्यकता होगी, तो दूसरे उनकी सहायता करेगे। इस प्रकार जो सहायता चाहते है और जो सहायता करते है उनके हितो में विरोध भाव नही होता। इसीलिये उनका नारा है कि, 'प्रत्येक सबके लिए और सब प्रत्येक के लिए।' इसी कारण सहकारिता अपने सदस्यो को सयम से चलने का उपदेश करती है।

(४) सयुक्त प्रयास द्वारा सामान्य कल्याण की वृद्धि—स्वार्थ-भावना से प्रेरित प्रयत्नो को एक सहकारी सगठन में कोई स्थान नही है। एक सहकारी सगठन स्वार्थी व्यक्तियो का सगठन नही होता। व्यक्तिवाद अथवा 'प्रत्येक अपने लिए' की भावना, जोकि प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है, एक सहकारी सगठन में नही पाई जाती।

(५) सेवा की भावना—जैसा कि तालमकी (Talmaki) ने कहा है कि 'सहकारिता केवल व्यापार मात्र नही है वरन् व्यापार के साथ साथ सेवा की भावना का भी सयुक्तिकरण है, जो वफादारी, भ्रातृभावना और सामूहिक भावना जागृत करती है।' पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता करने के लिए एक निष्काम भावना और ईमानदारी का होना बहुत आवश्यक है। सहकारी सस्था का कार्य लाभ की भावना से नही वरन् सेवा भावना म चलाया जाता है। इस प्रकार सहकारी आन्दोलन वास्तव मे नैतिक आन्दोलन हैं। चूंकि इसके व्यापार के सचालन में ईमानदारी और निस्वार्थपरता का पालन होता है, इसलिये बहुतो के लिए सहकारिता एक 'विश्वास' और 'धर्म' है। यह वास्तव में एक ऐसा व्यापारिक सगठन है, जिसमें आर्थिक उन्नति की उपेक्षा चरित्र के सुधार पर अधिक बल दिया जाता है।

सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ—

यद्यपि सहकारिता का इतिहास अधिक प्राचीन नही है किन्तु फिर भी विश्व के प्रमुख देशो में इसके विकास की सीमा को देखने हुए हमें आश्चय होता है। इसका आरम्भ सर्व प्रथम उपभोग के क्षेत्र में हुआ, जबकि इङ्गलैंड में सन् १८४४ मे रोकडेल (Rochdale) के कुछ बुनकरो ने उपभोग की वस्तुयें प्राप्त करने के लिए एक सहकारी समिति स्थापित की, जिसके मुख्य सिद्धान्त थे—प्रति व्यक्ति को केवल एक ही मत देने का अधिकार, प्रचलित बाजार मूल्य पर विक्रय एवं खरीद के अनुपात में लाभ का सदस्यो में वितरण। किन्तु सहकारिता के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना जर्मनी मे १९वी शताब्दी के आरम्भ म हुई। उस समय जर्मनी के किसानो तथा शिल्पियों की आर्थिक दशा बहुत सोचनीय थी। महाजन इनका विविध ढगो म शोषण करते थे। उसी समय जर्मनी के रैफाइजन (Raiffeisel) तथा शुल्ज-डलिज (Schulze-Delitsch) नामक दो समाज सुधारको ने सहकारिता द्वारा इस समस्या के हल का प्रयत्न किया। रैफाइजन ने ग्रामीण जनता के हितार्थ और शुल्ज-डेलिज ने नगरी जनता के कल्याणार्थ सहकारी साख समितियो की स्थापना की। हमारे देश में भी इन्ही के आधार पर सहकारी साख समितियो का निर्माण किया गया है, अतः इनकी प्रमुख विशेषताओ पर प्रकाश डालना अनावश्यक न होगा।

शहरी ऋण समितियों की अपेक्षा ग्रामीण ऋण समितियों पर विशेष बल दिया गया, क्योंकि वे अपेक्षतः अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण थी। प्रत्येक प्रान्त में एक सहकारी समितियों का रजिस्ट्रार नियुक्त किया गया एवं निरीक्षण तथा अंकेक्षण की भी व्यवस्था की गई। सहकारिता आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिये कुछ छूटें भी दी गई, जैसे—आय-कर से छूट, मुद्रांक कर से छूट आदि, किन्तु कुछ दिशाओं में यह अधिनियम दोषपूर्ण था.—प्रथम, गैर साख समितियों की स्थापना के लिये इसमें कोई व्यवस्था न थी। दूसरे इसका उद्देश्य केवल प्रारम्भिक समितियों की स्थापना करने का था। इसमें निरीक्षण तथा नियन्त्रण के लिए केन्द्रीय समितियों के विकास और सगठन की व्यवस्था नहीं की गई थी। ग्रामीण तथा शहरी समितियों का भेद भी कृत्रिम था, अतएव इन दोषों को दूर करने के लिये सन् १९१२ का नया अधिनियम बनाया गया।

सन् १९०४ के अधिनियम के आधार पर देश में अनेक सहकारी साख समितियों का सगठन किया गया, जो नीचे दी हुई तालिका में स्पष्ट हो जाता है।

वर्ष	समितियों की सख्या	सदस्यों की सख्या हजार में	कार्यशील पूँजी (लाख रुपयों में)
१९०६-०८	८४३	७० ८	२३·७
१९१०-१२	८१७७	४०३·३	३३४·७

सन् १९१२ का सहकारी अधिनियम—

सन् १९०४ के अधिनियम के दोषों को दूर करने के लिए सन् १९१२ में, जो नया अधिनियम बनाया गया, उसकी प्रमुख विशेषतायें निम्न थी.—

(१) केवल साख समितियाँ ही नहीं, वरन् अन्य प्रकार की समितियाँ भी, जिनका उद्देश्य सहकारिता के सिद्धान्तों पर सदस्यों का आर्थिक विकास करना हो, इस नियम के अन्तर्गत स्थापित की जा सकती थी।

(२) प्रारम्भिक समितियों के साथ उनके कार्यों को सुविधाजनक बनाने के लिए समितियों के सघ, केन्द्रीय सघ एव प्रान्तीय सघों को भी वैधानिकता प्रदान की गई। इन सघों में सदस्यों का उत्तरदायित्व सीमित रखने का निश्चय किया गया एव ग्रामीण प्रारम्भिक समिति में उत्तरदायित्व पूर्व की भाँति असीमित रहा।

(३) कोई भी समिति रजिस्ट्रार की आज्ञा लेकर अपने लाभ का चतुर्थांश सुरक्षित कोष में जमा करने के बाद, शेष लाभ का १०% शिक्षा एव दान सम्बन्धी कामों के लिये दे सकती है।

(४) सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत जो व्यापारिक संस्थायें रजिस्टर्ड नहीं हैं, वे 'सहकारी' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकेंगे।

(५) समिति के सदस्यों के अंशों को ऋण चुकाने के लिये सम्बद्ध नहीं किया जा सकेगा।

(६) अपने ऋण की राशि को वसूल करने में भूमि कर के बाद समितियों को प्राथमिकता दी जावेगी।

इस प्रकार सन् १९१२ के अधिनियम ने देश में सहकारिता आन्दोलन को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया। इसके फलस्वरूप गैर साख समितियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। जैसा कि नीचे दिए हुए आँकड़ों से स्पष्ट है, इससे समितियों की संख्या, उनके सदस्यों तथा उनकी क्रियाशील पूँजी में बहुत विकास हुआ :—

वर्ष	समितियों की संख्या (हजार में)	सदस्यों की संख्या (लाखों में)	सक्रिय पूँजी (करोड़ों में)
१९११ १५	११·७६	५·४८	५·४८
१९१९-२०	२८·४८	११·२६	१५·१८

इसी बीच सहकारिता आन्दोलन की प्रगति से पूर्ण अवगत होने के लिए सन् १९१४ में सरकार ने श्री मैकलगन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की जिसकी रिपोर्ट सन् १९१५ में प्रकाशित हुई।

मैकलगन समिति के सुझाव

(१) समितियों के लिये उचित सदस्यों के चुनाव तथा उन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों से परिचित कराने पर विशेष जोर देना चाहिये।

(२) लेन देन केवल् सदस्यों तक ही सीमित रखा जाय।

(३) किसी भी सदस्य को ऋण देने के पूर्व उसकी आर्थिक स्थिति की पूर्ण जाँच कर लेनी चाहिये।

(४) ऋण का उपयोग केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही होना चाहिये।

(५) सदस्यों के बीच मितव्ययिता का प्रचार करना चाहिये।

(६) नई समितियों के निर्माण में शीघ्रता से काम नहीं करना चाहिये। जो सहकारी समितियाँ सहकारिता के सिद्धान्तों तथा आदर्शों के अनुकूल काय नहीं करती है, उन्हें बन्द कर देना चाहिये।

यद्यपि उपर्युक्त सुझाव सहकारी आन्दोलन की प्रगति के लिये बहुत आवश्यक थे, परन्तु प्रथम विश्व-युद्ध में व्यस्त होने के कारण सरकार ने इन सुझावों पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

सन् १९१९ से सन् १९२९ तक सहकारिता का प्रसार—

सन् १९१९ के राजनैतिक सुधारो के अनुसार सहकारिता प्रान्तीय विषय बन गया, अतएव इसके सचालन का भार प्रान्तीय सरकारो के हाथ मे आ गया। फलतः भिन्न भिन्न प्रान्तो ने अपनी आवश्यकतानुसार नये नये अधिनियम बनाये। उदाहरण के लिए बम्बई ने सन् १९२५ में, मद्रास ने सन् १९३२ मे, बिहार एव उड़ीसा ने सन् १९३५ मे और कुग ने १९३७ मे अपनी अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अलग अलग अधिनियम बनाये। इनसे सहकारी आन्दोलन को काफी बल मिला एव उसकी गति तीव्र हो गई। कुछ प्रान्तो में तो आन्दोलन की प्रगति का अध्ययन करने तथा आवश्यक सुझाव देने के हेतु समितियो की नियुक्ति की गई। कृषि के शाही आयोग ने भी सहकारिता के विकास पर अधिक जोर दिया। इस प्रकार सन् १९१९ से लेकर सन् १९२९ तक के बीच सहकारिता आन्दोलन की प्रगति काफी तीव्र रही। निम्नलिखित आँकडो से आन्दोलन की गति का आभास मिलता है:—

वर्ष	समितियों की सख्या (हजार में)	सदस्यों की सख्या (लाख में)	क्रियाशील पूँजी (करोड में)
१९२१ से १९२५	५७·७१	२१·५५	३९·३६
१९२६ से १९३०	९३ ९४	३९·८६	७४·८६

परन्तु इस अवधि मे समितियो द्वारा दिये गये ऋण का अधिकाश भाग लौटाया नही जा सका, अतः सहकारी समितियो की बहुत अधिक पूँजी मारी गई। सक्षेप में इस काल में सहकारिता का प्रसार अनियोजित ढ ग से होता रहा।

सन १९२९ से सन् १९३९ तक सहकारिता का प्रसार—

सन् १९२९ से विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के कारण सहकारी आन्दोलन को बडा धक्का पहुँचा। अनाज के भाव गिर जाने के कारण कृषको से ऋण की वसूली करना कठिन हो गया। ऐसी परिस्थिति में समितियो की सख्या में वृद्धि की अपेक्षा उनके पुनर्निर्माण पर अधिक जोर दिया जाने लगा। सन् १९३५ में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई, जिसके अन्तर्गत एक कृषि साख विभाग भी खोला गया, जिसका कार्य कृषि के विकास के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना था। इस प्रकार सन् १९२९ से सन् १९३९ तक की अवधि को 'सहकारिता आन्दोलन की अवनति तथा पुनर्निर्माण का समय' कहा जाता है।

द्वितीय महायुद्ध मे प्रगति—

द्वितीय महायुद्ध के काल मे कृषि वस्तुओं के मूल्य स्तर में वृद्धि से सहकारी समितियो की आर्थिक स्थिति मे काफी सुधार हुआ। इनकी सख्या, पूँजी तथा उनके

कार्य-क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुई। सदस्यों ने ऋण का चुकाना आरम्भ किया, निक्षेप बढ़े और नये ऋणों की मांग कम होगई। युद्ध-काल में एव उसके बाद उपभोक्ता सहकारी भण्डारो तथा सहकारी विक्रय समितियों में विशेष रूप से वृद्धि हुई।

स्वतन्त्रता के पश्चात् सहकारी आन्दोलन—

स्वतन्त्रता के पश्चात सहकारी आन्दोलन को एक नवीन मोड मिला। रिजर्व बैंक ने सहकारी आन्दोलन के विषय में एक निर्देशक समिति (Committee of Direction) नियुक्त की, जिसने यह विचार प्रगट किया कि भारत में सहकारी आन्दोलन के विकास की महान् सम्भावनायें हैं। आवश्यकता है सफलता के हेतु अनुकूल वातावरण की। इसके लिये समिति ने कई अमूल्य सुझाव दिये—(१) प्रत्येक स्तर पर सहकारी सस्थाओ से सरकार की साझेदारी हो, (२) साख को फसल की बिक्री और गोदाम में रखने के कार्य आदि से सम्बन्धित कर दिया जाय, (३) प्रारम्भिक कृषि साख समितियो का आधारशिला के रूप मे विकास किया जाय, (४) अनाज गोदामो की स्थापना, (५) सकारी कर्मचारियो के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था और (६) इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण, जिससे वह सहकारी साख सस्थाओ को सहायता दे सके।

इन सुझावो के प्रकाश में सरकार ने निम्नलिखित कदम उठाये—

(१) १ जुलाई सन् १९५५ को स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया की स्थापना (इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करके) हुई। सन् १९६०-६१ तक इसकी ४०० नई शाखायें स्थापित की जानी है।

(२) रिजर्व बैंक आफ इन्डिया एक्ट में सन् १९५५ मे सशोधन किया गया, जिसके अन्तर्गत दो प्रमुख कोष स्थापित किये गये—'राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) कोष' और *राष्ट्रीय कृषि साख (स्थिरीकरण) कोष। १० करोड रु० से स्थापित* राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) कोष के निम्न उद्देश्य है—(अ) राज्य सरकारो को दीर्घकालीन कर्ज देना, जिससे सरकार सहकारी सस्थाओ की साझेदारी में काम कर सके, (ब) मध्यकालीन कृषि साख की स्थापना, (स) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंको को दीर्घकालीन साख देना, और (द) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों के डिबेन्चर खरीदना।

१ करोड रु० से स्थापित दूसरे कोष (राष्ट्रीय कृषि साख 'स्थिरीकरण' कोष) का उद्देश्य राज्य सहकारी बैंकों को मध्यमकालीन साख देना है, जिससे सूखे व अकाल की दशा में वे अल्पकालीन साख को मध्यम साख मे बदल सकें।

(३) सन् १९५६ मे एक राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड और २ मार्च सन् १९५७ को एक केन्द्रीय गोदाम निगम स्थापित की गई।

(४) सहकारी कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए एक सहकारी प्रशिक्षण की केन्द्रीय समिति बनाई गई है और इस कमेटी की योजना के अनुसार उच्च अधिकारियो

के प्रशिक्षण का केन्द्र पूना मे स्थापित किया गया। मध्यम श्रेणी के कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए भी ५ क्षेत्रीय केन्द्र तथा ८ केन्द्र सामुदायिक विकास खडो के अधिकारियो के प्रशिक्षण के हेतु खोले गये है।

स्पष्ट है कि रिजर्व बैंक भारत के सहकारी आन्दोलन की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। ५ व्यक्तियो के एक औसत भारतीय परिवार को आधार मानकर साधारणत यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सन् १९५६ ५७ के अन्त तक ९ ६६ करोड व्यक्तियो या २५% भारतीय जन सख्या को सहकारिता का लाभ मिलने लगा था।

भारतीय सहकारी आन्दोलन की आधुनिक प्रवृत्तियाँ—

इस आन्दोलन की कुछ आधुनिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है—

(१) सहकारी सस्थाओ, उनकी सदस्यता तथा पूँजी मे वृद्धि—स्वतन्त्रता काल म सहकारी सस्थाओ की सख्या, इनकी सदस्यता एव क्रियाशील पूँजी में काफी वृद्धि हुई है। इस सम्बन्ध म निम्न आँकडे दिये जा सकते है—

वर्ष	हजार म	लाख म	करोड रु० में
१९४८ ४९	१६३ ८८	१२७ ००	२१९ ४९
१९५० ५१	१८१ १९	१३७·१५	२७५ ७५
१९५१ ५२	१८५·६५	१३७·९२	३०६·३४
१९५५ ५६	२४० ०४	१७६ २२	४६८·८२
१९५६-५७	२४४·७७	१९३ ७३	५६७ ६७
१९५७ ५८	२५३ ८१	२१४ ३५	६६६·४६

(२) सरकार की उदारतापूर्ण नीति—द्वितीय महायुद्ध के काल म खाद्यान्न तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ के वितरण के हेतु तथा 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' को सफल बनाने के लिए भारत सरकार ने सहकारिता के विकास पर अधिक बल दिया। यही नही, देश की आर्थिक समृद्धि मे सम्बर्धित पच वर्षीय योजनाओ में भी इसे उपयुक्त स्थान दिया गया।

(३) साख के अतिरिक्त अन्य पहलुओ पर भी बल दिया जाना—युद्ध एव युद्धोत्तर काल म शहरी सहकारिताओ (Urban Co-operatives) ने बडी उन्नति की। खाद और उर्वरक, कृषि औजार एव बीज बाँटने का काय भी अनेक राज्यो में सहकारी समितियो द्वारा किया जाने लगा है। सहकारी खेती का भी विकास हुआ है। हाँ, नियन्त्रणो के हटने पर उपभोक्ता सहकारी समितियो में कमी हो रही है और अब गैर साख समितियो मे युद्ध और युद्धोत्तरकालीन वृद्धि रुक गई प्रतीत होती है।

(४) एकाकी-कार्य समितियो का बहु-उद्देशीय समितियो मे परिवर्तन—यह बडी स्वागतयोग्य प्रवृत्ति है। नव-सचालित बहु उद्देशीय समितिया ग्रामीण व्यक्तियो के व्यव साय और दैनिक जीवन पर प्रभाव डालती है। उत्तरप्रदेश, बिहार और बम्बई नई बहु उद्देशीय समितियाँ सगठित कर रहे हैं। कुछ एक उद्देशीय समितियो को बहु उद्देशीय समितियो में परिवर्तित करने का भी सुझाव है।

(५) सीमित दायित्व का समर्थन—उत्तर प्रदेश, बम्बई और मद्राम मे नई बहु उद्देशीय समितिया सीमित दायित्व के आधार पर सङ्गठित की जा रही है और उनका काय क्षेत्र कई गावो तक विस्तृत है।

(६) रिजर्व बैंक का बढता हुआ सहयोग—माग दशन के अतिरिक्त रिजर्व बैंक अन्य ढङ्गा म भी आ दालन की सहायता करन लगी है। उसन राज्य सहकारी बका की वित्तीय सहायता म वृद्धि कर दी है। सन् १६४६ ४७ में रिजर्व बक द्वारा राज्य बैंको का दी जान वाली वित्तीय सहायता केवल १½ लाख रुपया थी, सन् १६५१ '२ में १२½ कराड और सन् १६५४ ५५ मे यह सहायता २१ २१ करोड रुपया तक पहुँच गई। ब्याज दर भी केवल १½% थी। सहकारी भूमि बन्धक बका को भी इसने अनुदानो में १० मे २०% तक वृद्धि कर दी ह। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक न सहकारी आदो लन की प्रगति क विषय म छानबीन करन क हतु कई कमेटिया नियुक्त की है और कई सर्वेक्षण कराये है। इस सम्बन्ध म अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे का बडा महत्त्व है, क्योकि इसी की सिफारिशा के अनुसार ही आजकल भारत में सहकारी आन्दोलन को सचालित किया जा रहा है।

(७) अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे और सरकार की नीति—उक्त सर्वे कमेटी की रिपोट सन् १६५४ में प्रकाशित की गई, जिसमें उसने अनक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। भारत सरकार ने इन सुझावो को मानकर सहकारी आन्दोलन की प्रगति के लिए समुचित कदम उठाये है। ये सुझाव निम्नलिखित है :—

(अ) प्रत्येक स्तर पर सरकार सहकारी सस्थाओ के साथ साझेदारी स्थापित करे।

(आ) खाद्य सम्बन्धा काय को फसल की बिक्री एव भन्डार सम्बन्धी कार्यो क साथ सम्बन्धित किया जाय।

(इ) प्रारम्भिक समितियाँ बड आकार की बनाई जायें और उनके सदस्यो का दायित्व सीमित हाना चाहिए।

(ई) सारे देश में अनाज के गोदामों का जाल सा बिछा दिया जाय जिससे किसानो को अपनी फसल की बिक्री मे सहायता हो।

(उ) सहकारी कमचारियो के प्रशिक्षण के हेतु स्कूल खोले जायँ।

(ऊ) इम्पीरियल बैंक का स्टेट बैंक के रूप में राष्ट्रीयकरण कर दिया जावे, जिससे यह बैंक सहकारी संस्थाओं की अधिक सहायता कर सके ।

(ए) रिजर्व बैंक के नियमों में उपयुक्त परिवर्तन करके ग्रामीण ऋण की सुविधा के लिये अधिक धन उपलब्ध करना चाहिये ।

(ऐ) एक अखिल भारतीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड की स्थापना की जाय, जिसके आधीन एक विकास कोष एवं एक गोदाम सम्बन्धी कोष रखा जाय ।

इन सुझावों के प्रकाश में भारत सरकार ने मई सन् १९५५ में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट में संशोधन करके दो कोषों की स्थापना की —(१) राष्ट्रीय कृषि साख कोष (दीर्घकालीन) एवं (२) राष्ट्रीय कृषि साख कोष (स्थिरीकरण) । राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा गोदाम बोर्ड की स्थापना १ सितम्बर सन् १९५६ को की गई । १ जुलाई सन् १९५५ को इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण करके उसे स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया का रूप दे दिया गया । सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार के संयुक्त प्रयत्न से एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की गई है । इस योजना के आधीन पूना में एक अखिल भारतीय सहकारी प्रशिक्षण केन्द्र तथा ५ क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई है । इसके अतिरिक्त ८ अन्य प्रशिक्षण संस्थायें स्थापित की गईं जिनमें सामुदायिक योजनाओं में कार्य करने वाले सहकारी अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है ।

पंच-वर्षीय योजनाओं में सहकारिता का महत्व—

पहली योजना में तीन प्रकार की साख के लिये प्रबन्ध किया गया था—अल्पकालीन ऋण, मध्यम-कालीन ऋण एवं दीर्घकालीन ऋण । भारत सरकार ने सहकारी बैंकों की सहायता के लिये ५ करोड़ रु० और रिजर्व बैंक ने मध्यकालीन ऋण के लिये ५ करोड़ रुपये का प्रबन्ध किया । प्रथम योजना में सहकारिता के विकास के लिये ६६१·२ लाख रुपये का आयोजन किया गया था । क्रय-विक्रय समितियों के संगठन पर अधिक बल दिया गया । बहु-उद्देश्य समितियों का महत्त्व स्पष्टतः स्वीकार किया गया, जिससे गाँव की सभी समस्यायें समन्वित रूप से हल की जा सकें । जून सन् १९५५ में भारत में २२ प्रान्तीय सहकारी बैंक ४९६ केन्द्रीय सहकारी बैंक और २६,९५४ कृषि साख समितियाँ थीं । नगरों में इस वर्ष ७१६ सहकारी बैंक, ८,३८६ साख समितियाँ और ३,६५१ श्रमिकों की समितियाँ थीं । प्रथम योजना में सहकारी प्रशिक्षण के लिये १० लाख रुपये की व्यवस्था की गई थी ।

दूसरी पंच वर्षीय योजना का उद्देश्य यह है कि गाँव की खेती की सारी पैदावार का प्रबन्ध ग्रामोद्योग और गाँव का व्यापार सब सहकारी संस्थाओं के द्वारा हो ।

उद्योगो, मकानो और मजदूरी आदि के लिये भी सहकारी व्यवस्था करने का प्रस्ताव है। इस सम्बन्ध में द्वितीय योजना के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित हैं :—

बड़े पैमाने की सहकारी समितियाँ	१०,४००
अल्पकालीन ऋण	१५० करोड रु०
मध्यकालीन ऋण	५० करोड रु०
दीर्घकालीन ऋण	२५ करोड रु०
प्रारम्भिक विपणन समितियाँ	१,८००
सहकार चीनी मिल	३८
सहकारी रुई धुनने के कारखाने	४८
अन्य सहकारी समितियाँ	११८
केन्द्रीय और प्रदेशीय गोदाम	३५०
विपणन समितियों के गोदाम	१,५००
बडी समितियों के गोदाम	४,०००

सहकारिता विकास के हेतु योजना में ४७ करोड रु० का आयोजन किया गया है।

भारतीय सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति के कारण—

जिस समय सहकारी आन्दोलन भारतवर्ष में प्रारम्भ हुआ था, उस समय कृषि एव ग्रामीण ऋण की समस्यायें हल करने के लिये इसे 'राम बाण' समझा जाता था। ऐसी आशा की जाती थी कि इसके द्वारा कृषकों में मितव्ययिता की आदत पडेगी तथा वे अपने पैरो पर खडा होना सीख जायेंगे। किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि गत अर्द्ध शताब्दी में इस आन्दोलन से उतना लाभ नही हुआ, जितनी कि आशा की जाती थी। इस आन्दोलन की धीमी गति के प्रधान कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) सहकारिता के सिद्धान्तो से अनभिज्ञता—इस आन्दोलन की धीमी प्रगति का मुख्य कारण यह है कि भारतीय ग्रामीण जनता सहकारिता का अर्थ भली प्रकार नही समझती है। सहकारिता क्या है, इसकी आधारशिला क्या है तथा इसके उद्देश्य क्या है—इन बातों से वे पूर्ण परिचित नही है। परिणामतः वे सहकारी समितियो की कार्यवाहियों में रुचि नही रखते। सहकारी समितियो एव उनके सदस्यो की संख्या से आन्दोलन की वास्तविक सफलता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

(२) अति अधिक राजकीय हस्तक्षेप—सहकारिता की सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सहकारिता की भावना लोगो के हृदय में उमडे एव स्वेच्छा से वे इस शुभ कार्य में सम्मिलित हों, परन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि यह आन्दोलन भारतीय ग्रामीण जनता पर बरबस लादा गया है। इस आन्दोलन में सरकारी नियन्त्रण आज भी इतना अधिक है कि सहकारी समितियों के सदस्य उन्हें 'सरकारी समितियाँ'

समझते हैं। सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार को इतनी शक्ति है कि सहकारी समिति के सदस्य स्वेच्छा से कुछ भी सही कर सकें। वास्तव में तो यह 'लोगों द्वारा लोगों के हितार्थ' (राजकीय हस्तक्षेप से परे) आन्दोलन है।

(३) पक्षपात तथा भ्रष्टाचार—भारतीय ग्रामीण जनता अशिक्षा के कारण जातिवाद तथा पक्षपात आदि की बुराइयों में फँसी हुई है। बेईमानी, भ्रष्टाचार, ऋण देने में जाति वालों एवं मित्रों आदि का पक्षपात करना, ऋण का समय पर भुगतान न करना आदि दोष प्रायः सभी समितियों में पाये जाते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रायः सभी समितियों का प्रबन्ध अकुशल तथा अशिक्षित लोगों के हाथों में है।

(४) सहकारी साख पर अत्यधिक जोर—आन्दोलन की धीमी गति का एक कारण यह भी है कि इसमें केवल कृषकों को ऋण देने की ओर ही ध्यान दिया गया है। किसान कभी कभी ऋण का दुरुपयोग भी करता है अर्थात् वह उसे कृषि कार्य में न लगा कर अपने निजी काय म व्यय कर देता है। सन् १९४६ में सहकारी नियोजन समिति ने इस कमी का अनुभव करते हुए भारत में बहु उद्देशीय समितियों की स्थापना का सुझाव दिया था।

(५) सदस्यों की अशिक्षा, अज्ञानता एवं रूढ़िवादिता—इस आन्दोलन का पाँचवाँ दोष यह है कि सहकारी समितियों के सदस्य अशिक्षित, अज्ञानी एवं रूढ़िवादी हैं, अतः प्रयत्न करन पर भी उन्हें सहकारिता के सिद्धान्त समझ में नहीं आते।

(६) सदस्यों में बचत की आदत का अभाव—बचत की आदत तथा सहकारिता एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। भारतीय कृषक अधिकतर फिजूलखर्ची होते हैं और इसी कारण वे सहकारिता के अनेक लाभों से वंचित रह जाते हैं।

(७) हिसाब की उचित जांच न होना—सहकारी समितियों के हिसाब की जाँच पड़ताल भली प्रकार नहीं होती, अतः प्रबन्धकों को हिसाब किताब में गोल-माल करने का मौका मिल जाता है तथा गबन आदि की घटनायें होती रहती हैं।

(८) अपर्याप्त साधन—इस आन्दोलन का एक अन्य दोष यह है कि समितियों के पास धन का अभाव है। अतएव वे ग्रामीण जनता की पर्याप्त रूप से सहायता करने में असमर्थ रहते हैं। विवश होकर कृषकों को ऋण लेने के लिये महाजन के चक्कर में फँसना पड़ता है।

(९) अपेक्षाकृत ऊँची ब्याज-दर—साधारणतः ब्याज की दर ९% से १२% तक रहती है। यद्यपि सरकार तथा रिजर्व बैंक द्वारा आन्दोलन को सहायता प्राप्त होती है, किन्तु अत्यधिक ब्याज की दर का कारण यह है कि सहकारी समितियों को मुख्यतः बाहरी साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है। इनके निजी साधन अपर्याप्त हैं।

(१०) आर्थिक व्यय—इस आन्दोलन का एक दोष यह भी है कि समितियों

का आर्थिक व्यय बहुत होता है। अतः इन्हे बहुत कम लाभ बचता है। कम लाभ के कारण ही ग्रामीण जनता इनके प्रति उदासीन रहती है।

उपर्युक्त दुर्बलताओ के ही कारण सर एम० विश्वेश्वरैया ने व्यगपूर्वक कहा है–"सहकारी आन्दोलन की दिशा में अभी तक जो कुछ किया गया है, वह केवल सतह खरोचने के समान है।" भारतीय सहकारी आन्दोलन की दुर्बलताओ को दूर करने के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :—

दोषो को दूर करने के उपाय—

(१) प्रारम्भिक समितियो का पुनर्गठन—प्रारम्भिक सहकारी साख समितियो को यह प्रयत्न करना चाहिये कि कृषको की समस्त आवश्यकताओ को पूरा करें, अर्थात् प्रारम्भिक समितियो को इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु बहु उद्देशीय समितियो मे बदल देना चाहिये।

(२) सहकारी समितियो की कार्य-विधि मे सुधार—जिन पुराने ऋणो का भुगतान सदस्यो पर बाकी है उन्हे कम कर दिया जाय और भविष्य मे केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही ऋण दिये जाये। सदस्यो मे बचत की भावना को बढाना चाहिये। समितियो के पास अधिक से अधिक धन सुरक्षित कोष में रहना चाहिये, जिससे कि आपत्ति काल मे वे अपनी रक्षा कर सकें।

(३) सरकारी हस्तक्षेप मे कमी—सरकारी कर्मचारियो द्वारा सहकारी समितियो के काम में अनावश्यक हस्तक्षेप नही होना चाहिये। सरकार को केवल आवश्यक देखभाल तथा परामर्श तक अपने को सीमित रखना चाहिये।

(४) सहकारिता की शिक्षा एवं प्रशिक्षण—ग्रमीण शिक्षा प्रणाली मे सहकारिता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिये तथा सहकारी कर्मचारियो के लिये विशेष प्रशिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(५) सरकारी साझेदारी—जैसा कि अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने सुझाव दिया है, सभी स्तरो पर सरकार को सहकारी समितियो के साथ साझेदारी में सम्मिलित होना चाहिये।

(६) केन्द्रीय एव राज्यीय सहकारी बैंको का पुनर्गठन—केन्द्रीय तथा राज्यकीय सहकारी बैंको का कार्यक्षेत्र सीमित कर दिया जाये, जिससे वे अपनी सम्बन्धित समितियो का भली प्रकार निरीक्षण कर सके। व्यापारिक बैंको से भी आर्थिक सहायतार्थ उनका घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिये।

(७) सहकारी विक्रय प्रथा का विकास—सहकारी आन्दोलन की उन्नति के लिए यह जरूरी है कि सहकारी विक्रय प्रथा का विकास किया जाय। इससे समिति के सदस्यो तथा उपभोक्ताओ दोनो को लाभ होगा।

(८) सहकारी अनुसन्धान—भारत एक अत्यन्त विशाल देश है, अतः यहाँ की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक समस्याओं को सहकारिता के आधार पर सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में वैज्ञानिक ढंग के अनुसन्धान किये जायें।

अन्त में यह कहना अनावश्यक न होगा कि हमारे देश में सहकारिता का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। देश की प्रायः सभी समस्याओं को सहकारिता के आधार पर सुगमतापूर्वक हल किया जा सकता है। इसी कारण किसी ने कहा है कि "सहकारिता की असफलता सारे भारत की आशाओं की असफलता होगी।" अतः सहकारी समितियों की दशा को शीघ्र ही सुधार कर उनका पुनरुत्थान करना चाहिये।

सहकारी समितियों का ढाँचा

हमारे देश में तीन प्रकार की सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं।

- सहकारी समितियाँ
  - प्रारम्भिक समितियाँ
    - सहकारी साख समितियाँ
      - कृषि साख समितियाँ
      - गैर कृषि साख समितियाँ
    - गैर साख सहकारी समितियां
      - गैर साख कृषि समितियाँ
      - गैर-कृषि गैर-साख समितियाँ
  - बहु उद्देशीय समितियाँ
  - केन्द्रीय समितियाँ
    - राज्य सहकारी बैंक
    - केन्द्रीय सहकारी बैंक
    - संघ (Union)
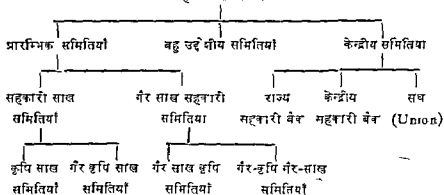
(१) प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ

(Primary Co-operative Societies)

जैसा कि उपर्युक्त चार्ट से स्पष्ट है, प्रारम्भिक सहकारी समितियों के चार प्रमुख भेद हैं :—

(अ) प्रारम्भिक कृषि साख समितियाँ (Primary Agricultural Credit Societies)

(ब) प्रारम्भिक गैर कृषि साख समिति (Primary Non-Agricultural Societies)

(ग) प्रारम्भिक गैर-साख कृषि समितियाँ (Primary Non-credit Agricultural Societies)

(द) प्रारम्भिक-गैर-साख गैर-कृषि समितियाँ (Primary Non-credit Non Agricultural Societies)

(अ) प्रारम्भिक कृषि साख समितियाँ—

भारतीय सहकारी संगठन में कृषि साख समितियों की प्रधानता रही है। ये समितियाँ कृषि कार्यों के लिए साख की समुचित व्यवस्था करती हैं। सन् १६५६-५७ में इनकी संख्या १,६१,५१० थी जो कुल समितियों की प्रायः ७२% थी। उसी वर्ष इन समितियों के सदस्यों की संख्या ६१,१६,८४६ तथा जून १६५७ के अन्त में इनकी क्रियाशील पूँजी ६८·३ करोड़ रु० थी।

विशेषतायें—

प्रारम्भिक कृषि साख समितियों की प्रधान विशेषतायें निम्नलिखित हैं:—

(१) समिति के सदस्य—सहकारी साख समितियाँ जो भारत में पाई जाती हैं उनका स्वरूप जर्मनी के रेफेजन (Raiffeisen) समितियों के सिद्धान्तों पर स्थापित की गई है। समिति के निर्माण के लिए कम से कम १० व्यक्तियों की स्वेच्छात्मक स्वीकृति की आवश्यकता होती है और वे इस हेतु रजिस्ट्रार को प्रार्थना पत्र दे सकते हैं। साधारणतः इस प्रकार की समितियाँ प्रत्येक गाँव में होती हैं, अतः इनके सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो एक ही गाँव में रहते हों, जिससे वे एक दूसरे की आर्थिक स्थिति से पूर्णतया परिचित रहें। यद्यपि सदस्यों की उच्चतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु यह उचित है कि कार्य की सुचारुता के लिए सदस्यों की संख्या १०० से अधिक न होने पाए।

(२) दायित्व—समितियों के सदस्यों का दायित्व असीमित होता है। असीमित दायित्व बाह्य ऋणदाताओं में विश्वास पैदा करता है और सदस्यों में पारस्परिक नियन्त्रण व निरीक्षण को प्रोत्साहन देकर उन पर नैतिक एवं शिक्षणात्मक प्रभाव डालता है। किसी किसी समिति का दायित्व सीमित भी होता है, लेकिन इसके लिए सरकार की विशेष स्वीकृति लेनी पड़ती है।

(३) कार्य क्षेत्र—इन समितियों का कार्य क्षेत्र बहुत ही सीमित होता है और प्रायः एक गाँव ही एक समिति के लिए आदर्श क्षेत्र है, क्योंकि विस्तृत क्षेत्र में सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध नहीं हो सकता और इसलिए सदस्यों में नैतिक दृष्टिकोण के विकास की पूर्ति नहीं हो सकती।

(४) प्रबन्ध—इन समितियों का प्रबन्ध एवं संचालन पूर्णरूपेण प्रजातन्त्रीय तथा अवैतनिक होता है। समिति के सदस्यों की एक साधारण सभा होती है जो

वार्षिक या जब आवश्यकता हो बैठकें (Meetings) करती है। साधारण सभा मे प्रबन्ध समिति के सदस्यो का चुनाव किया जाता है जिनकी सख्या ५ या ७ होती है। प्रबन्ध समिति सहकारी समिति का दैनिक कार्य करती है। इसके कुछ प्रधान कर्त्तव्य निम्न है:—ऋण के हेतु दिये गये प्रार्थना पत्रो पर विचार करके ऋण दिये जाने की स्वीकृति देना, ऋण की वसूली करना एव नये व्यक्तियो को समिति का सदस्य बनाना। इसके अतिरिक्त मन्त्री के हिसाब-किताब के जाँच एव नई पूँजी की व्यवस्था करना भी प्रबन्ध समिति के कर्त्तव्यो मे आता है। साधारण सभा में सदस्यो के व्यवहार, उधार की सीमा आदि के सम्बन्ध मे उपनियम निश्चित कर दिए जाते है एव प्रबन्ध समिति द्वारा प्रस्तुत वार्षिक हिसाब पर विचार भी साधारण सभा में होता है तथा लाभ, सुरक्षित कोष एव शिक्षा तथा सेवा पर होन वाले व्यय की राशि निश्चित की जाती है।

(५) पूँजी—समिति की पूँजी के प्रधान श्रोत निम्नलिखित है—(१) सदस्यो द्वारा जमा राशि, (२) सदस्यों के प्रवेश शुल्क, (३) रक्षित कोष की राशि, (४) केन्द्रीय बैंको द्वारा प्रदत्त ऋण इत्यादि। समिति की सबसे महत्वपूर्ण निधि सुरक्षित कोष है। जिस सहकारी समिति के पास सुरक्षित कोष अधिक होगा, उसकी साख उत्तम होगी और केन्द्रीय बैंको द्वारा ऋण सरलता से प्राप्त हो सकेगा।

(६) उद्देश्य एव कार्य—सहकारी साख समिति का प्रमुख उद्देश्य सदस्यो को सस्ती ऋण सुविधायें प्रदान करना है। प्राय सदस्यों को निम्न कार्यों के लिए ऋण दिए जाते है—(१) उत्पादक कार्यो के लिए, (२) पुराने ऋणो से मुक्त करन के लिए और (३) अनुत्पादक कार्यों के लिए। उत्तम बीज, खाद तथा मजदूरी आदि उत्पादक कार्यों पर व्यय करने के लिए अल्पकालीन ऋण और गाय बैल इत्यादि खरीदने व भूमि के विकास के लिए दीर्घकालीन ऋण दिया जाता है। कभी कभी पुराने सदस्यों को ऋण से मुक्त करने के लिए एव उन्हे महाजनो के चगुल मे बचाने के लिए अनुत्पादक कार्यों के लिए भी ऋण दिया जाता है।

(७) ऋण की वसूली—समितियाँ अपने सदस्यो को महाजनो के चगुल से बचाने के लिए ऋण प्रदान करती है। ऋण की वसूली किस्तो में होती है। साधारणत किस्त का समय फसल कटने के बाद का समय होता है, क्योकि फसल तैयार होने पर किसान स्वेच्छापूर्वक अपने ऋण चुका सकत है। हाँ, फिर भी ऋण की वसूली में इन समितियों को काफी कठिनाई होती है। अधिकतर कृषक ऋण देने में तत्परता नही दिखलाते, अत. ऋण की वसूली के लिए सदस्यो पर दबाव डालना पडता है।

(८) ब्याज की दर—इन समितियो का मुख्य उद्देश्य कृषको को महाजनो के चगुल मे छुडाने के लिए कम से कम ब्याज की दर पर ऋण देना होना है। परन्तु

साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि ब्याज की दर कम होने के कारण कृषक आवश्यकता से अधिक मात्रा में ऋण नहीं ले पाये।

(९) जमानत—समिति के सदस्यों का दायित्व असीमित होने के कारण इनकी व्यक्तिगत जमानत ही ऋण देने के लिए पर्याप्त मान ली जाती है। सदस्यों की ईमानदारी, मितव्ययिता तथा परिश्रम ही सर्वश्रेष्ठ जमानत है।

(१०) लाभ का वितरण—कृषि साख समितियों मे प्रायः सारा लाभ सुरक्षित कोष मे जमा कर दिया जाता है और लाभांश के रूप के सदस्यों को वितरित नहीं किया जा सकता। हाँ, सन् १९१२ के अधिनियम के अन्तर्गत सुरक्षित कोष में लाभ का एक निश्चित भाग जमा करने के बाद शेष राशि शिक्षा एव दान के कार्यों के लिए दी जा सकती है और जिन समितियों में अश पूँजी है, वहाँ कुछ सीमित लाभांश सदस्यों में वितरित किया जा सकता है।

(११) आय व्यय की जाँच—समितियों के आय व्यय की जाँच तथा देख भाल के लिए सरकार द्वारा अकेक्षकों व निरीक्षकों की नियुक्ति की जाती है। देख-भाल के लिए सहकारी सघ भी होते हैं, जो इन समितियों को उचित रूप से हिसाब रखने, उनकी जाँच करने तथा रुपया वसूल करने में सहायता देते हैं।

(१२) झगडों का निपटारा एव विघटन—सदस्यों के झगडों का निपटारा करने के लिए कहीं-कहीं पंचों की व्यवस्था है, जिससे कि व्यर्थ की मुकद्दमेबाजी में उनका पैसा बरबाद न हो। विघटन की आज्ञा देने का अधिकार केवल रजिस्ट्रार को है। समिति के कार्यों की जाँच के बाद यदि वह उचित समझे तो ऐसी आज्ञा दे सकता है। रजिस्ट्रार को इस अधिकार का प्रयोग केवल उसी दशा में करना चाहिये जबकि सदस्यों की बेईमानी के कारण समिति की आर्थिक दशा इतनी खराब हो जाय कि सुधार की कोई आशा ही न रहे।

कृषि साख समितियों की असफलता के कारण—

भारत में कृषि साख समितियों को विशेष सफलता नहीं मिल सकती है। इनकी असफलता के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) ऋण की वसूली मे कठिनाई—इन समितियों द्वारा प्रदान किए हुए अधिकांश ऋण वसूल न हो सके। रिजर्व बैंक द्वारा प्राप्त आँकड़ों के अनुसार सन् १९५७-५८ में इन समितियों की अदत्त ऋण (Loans outstanding) राशि १०७ करोड रु० और बकाया ऋण (Overdues) २३ करोड रु० के लगभग थे। कृषक ऋण का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यों में लगा देते हैं, जिससे ऋण का चुकारा समय पर नहीं हो पाता।

(२) पूँजी की अपर्याप्तता—कृषकों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए

इन समितियों के पास पूंजी की भी कमी है। औसत रूप से प्रत्येक समिति की कार्यशील पूंजी सन् १९५७ ५८ में लगभग १३४ करोड रु० थी। उसी समय इनकी प्रत्येक सदस्य औसत पूंजी केवल २२ रु० और कार्यशील पूंजी १०२ रु० थी। पूंजी की न्यूनता के कारण कृषकों को विवश होकर महाजनों का सहारा लेना पड़ता है।

(३) **ब्याज की ऊँची दर**—इन समितियों द्वारा प्रदान किए गए ऋण पर ब्याज की दर भी अधिक होती है। उदाहरणार्थ, सन् १९५१-५२ में ब्याज की दर उत्तरप्रदेश में १२ से लेकर १५% तक, विन्ध्यप्रदेश में १२ से लेकर १६% तक और बंगाल में १२% तक थी। ये दरें निश्चय ही बहुत ऊँची हैं। इस ऊँची दर का प्रभाव समितियों की सफलता पर अच्छा नहीं पड़ता।

(४) **अन्य दोष**—इनके अतिरिक्त समितियों के संचालन, निरीक्षण तथा हिसाब आदि रखने में भी अनेक दोष पाए जाते हैं, जिनके कारण ये सफलतापूर्वक कार्य करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं।

(ब) प्रारम्भिक गैर कृषि साख-समितियाँ—

गैर कृषि साख समितियों से तात्पर्य ऐसी समितियों से है जो कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों को साख प्रदान करके उनकी सहायता करती हैं। ये समितियाँ मुख्यतः नगरी क्षेत्र में स्थापित की जाती हैं, जहाँ अधिकतर श्रमजीवी तथा शिल्पकार रहते हैं। ये शुल्ज डेलिज (Schuzle Delitch) समितियों के आधार पर स्थापित की जाती हैं। इनका दायित्व भी सीमित होता है। इन समितियों का मुख्य उद्देश्य श्रम जीवियों तथा शिल्पकारों को सस्ती दर पर साख सुविधा प्रदान करके उन्हें महाजनों व साहूकारों के चंगुल से बचाना होता है। इन समितियों का विकास मद्रास व बम्बई राज्यों में बहुत अधिक हुआ है। इन्हें नगर साख समितियाँ (Urban Credit Societies) भी कहते हैं।

नगर साख समितियाँ दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं—(अ) नगर बैंक और (ब) अन्य नगर साख समितियाँ। नगर बैंकों के कार्य साधारण बैंकों से मिलते जुलते हैं, किन्तु अन्य नगर साख समितियाँ केवल सदस्यों से जमा लेने तथा उन्हें साख प्रदान करने का कार्य करती हैं। नगर साख समितियाँ कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा संगठित की जाती हैं। इनमें सहकारी संचय समितियाँ (Co-operative Thrift Societies) तथा सहकारी शिल्पी समितियाँ आदि का प्रमुख स्थान है। देश के औद्योगीकरण के विकास के साथ साथ नगर साख समितियों की संख्या अवश्य बढ़ेगी। अतएव उनका भविष्य सन्तोषजनक प्रतीत होता है।

(स) प्रारम्भिक कृषि गैर-साख समितियाँ—

किसानों को ऋण प्रदान करना कृषि सहकारिता का केवल एक पहलू है। ऋण के अतिरिक्त कृषकगण अन्य कार्यों में भी सहकारिता को अपना सकते हैं। कृषि

साख के अतिरिक्त ग्रामीण जीवन के शेष सभी पहलू गैर साख-सहकारिता (Non Credit Co operative) के अन्तर्गत आते है। सन् १६१२ के अधिनियम के पूर्व गैर साख समितियाँ स्थापित ही नहीं की जा सकती थी, क्योकि उस समय योग्य एव शिक्षित कर्मचारियो का अभाव था। हमारे देश में इनका विकास मुख्यत. द्वितीय महायुद्ध के बाद हुआ। युद्ध के समय सरकार नियन्त्रित वस्तुओ के वितरण के हेतु सहकारी समितियो को प्रधानता देती थी, क्योंकि इनका उद्देश्य लाभ कमाना नही वरन् सेवा करना होता है। अत. उस समय इस प्रकार की अनेक समितियाँ कपडा, चीनी, अनाज तथा तेल आदि वस्तुओ के वितरण के लिये स्थापित की गई। 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन ने भी इन समितियो को स्थापना को प्रेरित किया। भिन्न भिन्न राज्यो में सहकारी कृषि तथा बजर भूमि को कृषि योग्य बनाने की व्यवस्था करने के लिये एव उन्नत बीज, खाद व कृषि यन्त्रो के वितरण के लिये भी अनेक समितियो का निर्माण किया गया।

गैर साख-कृषि समितियो के अन्तगत प्राय निम्न का समावेश किया जाता है—

(१) सहकारी जीवन सुधार समितियाँ (Better Living Societies)
(२) सहकारी कृषि (Co operative Farming)
(३) सहकारी विपणन (Co operative Marketing)
(४) सहकारी उपभोग समितिया (Co operative Consumer's Societies)
(५) सहकारी चकबन्दी समितिया (Co operative Consolidation of Holdings Societies)
(६) सहकारी उपज सुरक्षा समितिया (Co operative Crop Protection Societies)
(७) सहकारी सिचाई समिति (Co operative Irrigation Societies)
(८) सहकारी शिक्षा समितियाँ (Co operative Educational Societies)

गैर-साख-साख कृषि समितियो का सक्षिप्त परिचय—

(१) सहकारी जीवन सुधार समितियाँ—ग्रामीण समाज की अज्ञानता, भाग्य वादिता तथा अन्य कुरीतियो का उन्मूलन करने के लिये सहकारी जीवन सुधार समितियाँ स्थापित की जाती है। इनका व्यापक उद्देश्य उन्नत एव उचित जीवन के प्रति कृषकों की अभिरुचि उत्पन्न करना है। ये समितिया सामाजिक कुप्रथाओ, सामाजिक एव व्यक्तिगत अपव्यय, अन्ध विश्वास आदि को दूर करके आत्म विश्वास एव आत्म निर्भरता की भावना को उत्पन्न करती है, जिससे कि कृषकगण स्वास्थ्य, रक्षा, सफाई, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि के द्वारा अपने व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन को उन्नत बना सकें।

(२) **सहकारी कृषि**—ऐसे कृषक, जिनकी भूमि का आकार उप विभाजन एव अप-खडन के कारण अनार्थिक हो गया है, सहकारी कृषि के द्वारा भूमि के आर्थिक आकार की प्राप्ति कर सकते है। छोटे छोटे खेतो पर कृषि के आधुनिक साधन एव मशीनो आदि का प्रयोग सुविधा से नही किया जा सकता और यदि किया भी जाता है, तो साधनो का अपव्यय अधिक होता है और उत्पादन कम। अत. एक गांव के अनेक कृषक मिलकर अपनी भूमि की सीमायें तोडकर एक कर लेते है, और इस प्रकार कृषि के हेतु उन्हे बडे आकार की भूमि मिल जाती है, जिस पर कृषि · आधुनिक साधनो का प्रयोग करके उत्पादन बढाया जा सकता है। सहकारी कृषि के अन्तर्गत कृषको का उनकी भूमि में व्यक्तिगत स्वामित्व रहता है तथा अपनी भूमि के अनुपात में ही उन्हे लाभांश प्राप्त होता है। जो कृषक खेतो पर काम करते है, उन्हे वेतन दिया जाता है। वर्ष के अन्त में जो लाभ बचता है, उसमे से व्यय, सुरक्षा कोष आदि की राशि निकाल कर सदस्यो मे भूमि के आकार के अनुपात में बाँट दिया जाता है। जिस प्रकार से व्यापार या व्यवसाय में साझेदारी होती है, उसी प्रकार कृषि में यह साझेदारी के ही समान है, जिसमे कृषको के व्यक्तिगत अधिकार सुरक्षित रहते है और वे केवल सुविधाओ के लिये ही आपस मे मिलकर खेती करते है।

(३) **सहकारी विपणन समितियां**—कृषि उत्पादन के विपणन व्ययो को न्यूनतम करने एव अनावश्यक मध्यस्थो की सख्या को कम करने के लिये सहकारी विपणन अत्यन्त आवश्यक है, जिसके द्वारा हम कृषक को उसके उत्पादन का उचित मूल्य प्रदान कर सकते है।

(४) **सहकारी उपभोक्ता समितियां**—सहकारी उपभोक्ता स्टोर वे समितियां है, जिन्हे उपभोक्ता उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुयें प्राप्त करने तथा मध्यस्थो के शोषण से बचने के लिये बनाते है। स्टोर सब सदस्यो का सामान एक साथ खरीदते है, जिससे उसको थोक दामो पर सामान मिल जाता है। वस्तुओ की कीमत कम होने के साथ उनकी किस्म भी अच्छी होती है, फलतः सदस्यो को स्टोर से माल खरीदने मे अधिक लाभ होता है। इन स्टोरो का जन्म सर्व प्रथम इगलैण्ड में हुआ। रॉकडेल के २८ जुलाहो ने एक ऐसे स्टोर का सगठन किया, जिसकी आश्चर्यजनक सफलता से प्रेरित होकर धीरे धीरे बहुत से स्टोर इगलैण्ड मे खुल गये और अन्य देशो में भी यह आन्दोलन फैलने लगा। इन स्टोरो के कुछ सिद्धान्त होते है, जिन्हे पालन करना प्रत्येक स्टोर के लिये आवश्यक होता है। प्रथम, वस्तुयें थोक दामो पर खरीद कर बाजार भावो पर बेची जाती है, दूसरे, वस्तुयें नगद बेची जाती है, उधार नही, एव तीसरे, स्टोर का वार्षिक लाभ सब सदस्यो में उनकी खरीदारी के अनुपात मे बाँट दिया जाता है।

भारत मे स्टोर आन्दोलन की प्रगति—

भारत में स्टोर आन्दोलन का श्रीगणेश मद्रास में हुआ। यह राज्य आज भी

(३) खरीदारी करने मे दूरदर्शिता का अभाव ,
(४) सदस्यों का स्टोर के साथ वफादार न होना ,
(५) उधार व्यापार करना ,
(६) थोक और बिक्री मूल्यों में कम अन्तर हाता ;
(७) हिसाब ठीक तरह म न रखना ,
(८) स्टोर के सचालन व्ययो की अधिकता ,
(९) निशुल्क सेवा पर अत्यधिक निभरता , एव
(१०) खुले बाजार म वस्तुयें सरलता म मिलन लगना ,

स्टोर आन्दोलन की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि इन कारणो को यथासम्भव दूर करके उसे अधिक लोकप्रिय बनाने क उपाय किय जायें। इस सम्बन्ध म हमारे निम्न सुझाव हैः—

(१) स्टोर में कम स कम ५,००० सदस्य बनाये जाय ।
(२) व्यापार के लिए आवश्यक पूँजी हिस्से बेच कर एव केन्द्रीय बंक से ऋण लेकर इकट्ठी की जाय ।
(३) स्टारो की थोक समितियो का सगठन किया जाय । लगभग ५० शहरी और ग्रामीण स्टोरो को एक कन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार के आधीन रखा जाय ।
(४) प्रत्येक राज्य म एक राज्यीय उपभोक्ता समिति सगठित की जाय, जिसका ५०% व्यय ५ वर्षो तक सरकार भेले । यह समिति समन्वय का काय करेगी ।
(५) सहकारी विभाग उपभोक्ता सहकारी स्टोरो के सगटन म अधिक रुचि ल ।
(६) औद्योगिक केन्द्रो म मजदूरो क लिए चन्द की दरें कम रखी जाएँ, जिससे वे इनका लाभ उठा सक ।
(७) मजदूरो का माल उधार बेचा जाय, किन्तु अगल वेतन दिवस पर ही वसूल कर लिया जाय ।
(८) सदस्यो को उपयोगिता समझाने के लिए लिखित साहित्य वितरित किया जाय ।
(९) योग्य व्यक्ति नौकर रखे जायें । इसमें पक्षपात नही होना चाहिए ।
(१०) स्टोर गैर सदस्यो को भी माल बेचे, जिसम व इसकी उपयोगिता से परिचित होकर सदस्य बन जायें ।

प्रथम योजना म इन भण्डारा की प्रगति को विशेष स्थान दिया गया था। द्वितीय एव तृतीय योजना म भी इनके लिए समस्याओं का विशेष अध्ययन करके विकास कायक्रम बनान पर जोर दिया गया है। गांवा म इनके विकास पर बल दिया गया है।

(५) **सहकारी चकबदी समिति**—उप विभाजन एव अप खडन क दोष का निवारण करन के लिए सहकारी चकबदी समितिया की स्थापना की जाती है। इनका विस्तृत चर्चा हम एक गत अध्याय म कर चुक ह।

(६) **सहकारी उपज सुरक्षा समितिया**—इन समितिया का प्रधान उद्देश्य सहकारी ढग पर सदस्या का उपज का जगली वस्तुओं और अनाधिकृत व्यक्तिया से सुरक्षा करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति का दार तार का बाढ लगाकर या चौकीदार का प्रबन्ध करके का जाती है।

(७) **सहकारी सिंचाई समितिया**—इन समितियो का मुख्य उद्देश्य सहकारी ढग पर सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाओं का सम्पन्न करना है।

(८) **सहकारी शिक्षा समितिया**—इनका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षत्रा म शिक्षा सस्थाओं की व्यवस्था करना होना है और इस हेतु ये गावा म स्कूल वाचनालय, प्रौढ शिक्षालय रात्रि पाठशालाय पुस्तकालय आदि का स्थापना करता ह।

(द) प्रारम्भिक गर-कृषि गर-साख समितिया—

जसा कि इनके नाम मे स्पष्ट है य समितिया शिल्पियो तथा श्रमिका का साख के अतिरिक्त अन्य आर्थिक कार्यों म सहायता प्रदान करता है। इनके अन्तगत औद्योगिक समितिया (Industr al Co operatives) गृह निर्माण समितिया (Co oprat ve HOus ng Soc eties) उपभोक्ता समितिया (Consumers Co opera t ves) आदि का समावेश किया जाता है। हमार देश म औद्योगिक सहकारा समितिया का अभी पयाप्त मात्रा म विकास नहीं हो सका है। कुटार एव लघु उद्योगा क विकास क हतु इन समितिया की स्थापना करना नितान्त आवश्यक है। इसी प्रकार मध्यम वग क लोगा का गृह निर्माण म सहायता प्रदान करन क लिए सहकारा गृह निर्माण समितियाँ स्थापित का जाती ह। गृह निर्माण समितिया दो प्रकार का होता है—(अ) एक वह जो सदस्या का मकान बनान क लिए तात्रिक राय तथा सामान आदि का खरीदन म सहायता दती है और (ब) दूसरा वह जो मकान बनाता हैं और दाध समय म अपना लागत का पूरा करन क लिए अपन सदस्या स किराया वसूल करता है। इनक अतिरिक्त आजकल अन्य प्रकार की सहकारी समितिया का भा निर्माण होता है। इनम श्रमिक स्त्रिया शिक्षका विद्यार्थिया चालका आदि का सहकारा समितियो क नाम उल्लखनीय है। बामा के काय क लिए भा सहकारी समितिया का निर्माण हुआ है।

(२) बहुउद्देशीय सहकारी समितियाँ

(Multipurpose Co operative Societies)

गत कुछ वर्षो से यह विवाद का प्रश्न है कि सहकारी समितियों का स्वरूप एक उद्देशीय हो या बहुउद्देशीय । अभी तक जितनी भी सहकारी समितियाँ प्रारम्भ की गई है, वे प्रायः एक विशिष्ट उद्देश्य को दृष्टि मे रखकर शुरू की गई है तथा उनसे कृषक की आर्थिक स्थिति मे कोई उल्लखनीय परिवर्तन नही हुआ है । इसी कारण अधिकांश लोगो की यह धारणा है कि सम्भवत: बहु उद्देशीय समितियों द्वारा कृषको की समस्त समस्याओ का हल हो सक । एक उद्देशीय समिति की दशा मे बेचारे कृषको को अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के हेतु एक समिति से दूसरी समिति के द्वार खटखटाने पडते है । इसके अतिरिक्त कभी कभी यह भी होता है कि उन्होंने सहकारी साख समिति के पैसे से जो कृषि उत्पादन किया है, उसके बेचने के लिये, उनके सन्मुख समस्या हो, अथवा उसके पास पैसा तो हो किन्तु समस्या यह हो कि उत्तम बीज अथवा उत्तम खाद कहाँ से प्राप्त की जाय । यही कारण है कि आजकल देश मे यह विचारधारा बडे वेग से प्रचलित है कि सहकारी समितियाँ एक-उद्देशीय न होकर बहु उद्देशीय हो । सन् १९३९ की एक सभा में सहकारी समितियों के रजिस्ट्रारो ने यह प्रस्ताव पास किया था कि देश मे बहु उद्देशीय सहकारी समितियाँ खोली जानी चाहिये । विश्व के कुछ अन्य देश भी, जैसे—डेन्माक, जर्मनी, फिनलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, स्वीडन आदि भी बहु-उद्देशीय समितियों के पक्ष में है ।

बहु उद्देशीय समितियाँ वे है, जो केवल किसी एक कार्य को न करके अनेक कार्यो को करती है । इनका उद्देश्य अपने सदस्यों को केवल साख प्रदान करना ही नही, वरन् अनेक प्रकार से उनकी सहायता करना भी होता है । इनका उद्देश्य कृषको के आर्थिक जीवन का सर्वाङ्गीण विकास करना होता है । रिजर्व बैंक के अनुसार सहकारिता कृषको के लिए केवल उसी दशा मे लाभदायक हो सकती है जब वह उनके जीवन के प्रत्येक पहलू में सहायक हो । इसी आधार पर रिजर्व बैंक ने बहु उद्देशीय सहकारी समितियो का जोरदार समर्थन किया है । योजना आयोग का भी यह मत है कि भारत के आर्थिक कलेवर में बहु उद्देशीय सहकारी समितियों को विशेष स्थान मिलना चाहिये।

बहु-उद्देशीय समितियों के लाभ—

इन समितियों से कृषकों को निम्न लाभ प्राप्त होने की आशा है—

(१) ये समितियाँ कल्प वृक्ष की भांति कृषको की समस्त समस्याओ को हल कर देती है एवं उनके जीवन को पुनर्गठित करके सुखमय बना देती है ।

(२) इनकी सहायता से ग्रामीण साहूकारी पद्धति का विनाश होता जा रहा है।

(३) इन समितियों में सीमित दायित्व होने से सभी स्थिति के व्यक्ति—गरीब, अमीर व मध्यम वर्गीय - इनके सदस्य बन सकते है। परिणामतः समिति की पूँजी बढ़ जाती है और उद्देश्यों की पूर्ति सुगम हो जाती है।

(४) बिना पढ़े-लिखे कृषक के आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिये इन समितियों द्वारा साख व विपणन म सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

(५) विस्तृत कार्यक्रम होने के कारण इन समितियों को हानि की आशंका कम एव लाभ की आशा अधिक होती है।

(६) सामाजिक बुराइयों को दूर करके एव ग्रामीण जनता का नैतिक पुनरुत्थान करके गाँव का पुनर्निर्माण करने में भी इन समितियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

बहु-उद्देशीय समितियों के दोष—

(१) विभिन्न कामों का बोझा अपने ऊपर लेने के कारण बहु उद्देशीय समितियों का काय बहुत जटिल हो जाता है। सम्पूर्ण कार्य थोड़े से प्रभावशाली व्यक्तियों के हाथों मे केन्द्रित हो जाता है और सहकारिता की सच्ची भावना नष्ट हो जाती है।

(२) समिति के समस्त कार्यों का ब्यौरा एक ही जगह अंकित किया जाता है, जिसम किसी कार्य विशेष से होने वाली क्षति का सच्चा ज्ञान नहीं हो पाता।

(३) इनका कार्य-क्षेत्र भी बहुत अधिक व्यापक होता है, अतएव योग्य सचालकों के अभाव में कभी-कभी समितियाँ असफल हो जाती ह।

उपर्युक्त लाभों के ही कारण हमारे देश मे बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के राज्यों में बहु उद्देशीय समितियों का बहुत प्रोत्साहन दिया जा रहा है। गत दस वर्षों में बहु-उद्देशीय समितियों ने प्रशसनीय प्रगति की है, विशेषकर उत्तर प्रदेश, बम्बई, बगाल और मध्य प्रदेश में। उत्तर प्रदेश मे उनकी सख्या सन् १९४५ ४६ की ६६६२ से बढ़कर १९५५ ५६ में ४१,६६० हो गई। बम्बई में सन् १९४५ ४६ की २६४ सख्या सन् १९५३ में बढ़कर ३६६५ हो गई। सन् १९५० तक मद्रास सरकार ने ८८०२ समितियों को बहु उद्देशीय सहकारी समितियो मे परिवर्तित कर दिया। सन १९५१-५२ में उसने ऐसी ही और भी ३,००० समितियों का रूप बदला। बिहार में १९५५-५६ में इनकी सख्या १०,४८३, उड़ीसा में १७६, पश्चिमी बंगाल में १३९९ और मध्य प्रदेश में ५,००,००० थी। उनकी सख्या सदस्य सख्या, ऋण कार्यो लाभ आदि में सर्वाङ्गीण उन्नति हुई है।

(३) केन्द्रीय सहकारी समितियाँ

केन्द्रीय सहकारी समितियों का प्रमुख काय प्रारम्भिक समितियों का सगठन, निरीक्षण तथा उन्हे आर्थिक सहायता प्रदान करना है। आजकल इनके तीन प्रधान रूप हैं—

(१) सघ (Union)
(२) केन्द्रीय सहकारी बक (Central Co operative Bank) तथा
(३) राज्य सहकारी बैंक (State Co operative Bank)

(१) सघ—सघ तीन प्रकार के होते हैं—(अ) सरक्षित सघ, (ब) निरीक्षक सघ और (स) साहूकारा सघ। सरक्षित सघ (Guaranteering Union) बम्बई में है। ये सघ सदस्य समितियों को केन्द्रीय बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋण का सरक्षण प्रदान करते है। निरीक्षक सघ, जिनका काम निरीक्षण करना होता है, मुख्यत बम्बई व मद्रास मे है। साहूकारा सघ (Banking Union) का निर्माण किसी निश्चित क्षेत्र में विभिन्न समितियों के सम्मिलन से होता है। ऐसे सघ पजाब में हैं। ये कभी कभी प्रारम्भिक समितियों एव केन्द्रीय सहकारी बैंकों के बीच सहयोग का कार्य भी करते है।

(२) केन्द्रीय सहकारी बैंक—सर्व प्रथम सन् १९१२ के सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत प्राथमिक समितियों के अतिरिक्त उनके सघों एव केन्द्रीय बैंकों की स्थापना को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई। इनका मुख्य कार्य प्रारम्भिक समितियों का सगठन करना तथा उन्हे आर्थिक सहायता प्रदान करना है। प्राथमिक समितियों की आर्थिक सहायता के अतिरिक्त, ये समितियाँ साधारण बैंक सम्बन्धी काय भी करती है जैसे जनता की बचत जमा के रूप में स्वीकार करना, वित्त चैक, हुन्डी आदि का भुनाना, प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय तथा कभी कभी व्यक्तियों को अचल सम्पत्ति पर ऋण देना इत्यादि। द्वितीय महायुद्ध के कारण केन्द्रीय बैंकों की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है। मूल्यों में वृद्धि के कारण, युद्ध युग में, इनकी कायशील पूँजी, जमा की राशि तथा ऋणों की वसूली में सन्तोषजनक वृद्धि हुई है। सन् १९५७ ५८ में हमारे देश में ४१८ केन्द्रीय बक थे जिनके सदस्यों की सख्या ३ २२,८१९ थी। इनकी कार्यशील पूँजी १४७ करोड रु० थी तथा इन्होंने १५९ ८७ करोड रुपय अग्रिम तथा ऋण के रूप में दिया था।

(३) राज्य सहकारी बैंक—प्रत्येक राज्य में राज्य सहकारी बैंक (State Co operative Bank) उच्चतम बैंक (Apex Bank) होता है। ये केन्द्रीय सहकारी बैंकों के समाशोधन गृह (Clearing house) के रूप में काय करते हैं। इस प्रकार राज्य

सहकारी बैंक केन्द्रीय बैंको के द्वारा प्रारम्भिक समितियो के कार्यों की प्रगति को भी प्रभावित करते है। देश का सहकारी आन्दोलन बहुत कुछ इन बैंको पर निर्भर करता है। यही कारण है कि सन् १९१५ में मैकलगन समिति ने ऐसी उच्चतम बैंको की स्थापना पर जोर दिया था। सन् १९५७-५८ म इस प्रकार के बैंको की सख्या २१ थी, जिनके सदस्यो की सख्या ३२,१८१ थी। इनकी कार्यशील पूँजी १०६'०७ करोड रु० तथा सचित कोष ८'४७ कराड रु० थी।

(४) भूमि-बन्धक बैंक—भूमि-बन्धक बैंक कृषको की भूमि को बन्धक रखकर उन्हें दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते है। ये भी दो प्रकार के होते हैं—(अ) प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक और (ब) केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक। सन् १९५१–५२ में भारत में ६ केन्द्रीय तथा २८६ प्रायमिक भूमि बन्धक बैंकें थीं। सन् १९५७–५८ में केन्द्रीय भूमि-बन्धक बैंको की सख्या बढकर १५ हो गई। इनकी सदस्य सख्या १,५१,४८३, कार्यशील पूँजी २५'८८ करोड रु० थी और इन्होंने ४'६२ करोड रुपये ऋण के रूप मे दिये थे। सन् १९५७–५८ में कुल मिलाकर ३४७ प्राथमिक भूमि-बन्धक बैंक थे, जिनके सदस्यों की सख्या ३,७५,९८० थी तथा जिन्होंने २'५२ करोड रुपये का ऋण प्रदान किया था। इनकी कार्यशील पूंजी १४ ०६ करोड रुपया थी। अभी तक इन बैंको का प्रमुख कार्य पुराने ऋणो के भुगतान के लिए ही ऋण देना रहा है। हाँ, गत कुछ समय से इन्होंने भूमि सुधार कार्यों के लिए भी ऋण दिए है। अन्य राज्यों की अपेक्षा मैसूर मद्रास तथा आन्ध्रप्रदेश में भूमि बन्धक बैंको की सख्या अधिक है।

STANDARD QUESTIONS

(1) Define Cooperation and point out its essentials.

(2) Discuss the importance of Co operation in India.

(3) Trace a brief history of the Co operative Movement in India from 1904 upto date.

(4) Account for the slow growth of Co-operative movement in India. What methods would you suggest to remove its defects ?

(5) Discuss the organisation and functions of a primary agricultural co-operative society.

(6) Describe the functions of a multipurpose co-operative society. How far such societies can improve the economic life of village ?

(7) What is a central co-operative bank ? How does it help primary credit co-operative societies ?

(8) What is meant by a multi purpose co-operative society ? Would you prefer this type of society to a Single-purpose society ?

अध्याय ७

सहकारी-कृषि

(Co-operative-Farming)

प्रारम्भिक—

अभी हाल में प्रकाशित भारत की तृतीय पंच वर्षीय योजना मे योजना आयोग ने जो लक्ष्य निर्धारित किए हैं, उनके अनुसार सन् १९६६ तक भारत अनाज में आत्मनिर्भर हो जायगा। कृषि उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से योजना में कृषि के विकास पर पर्याप्त बल दिया गया है। वर्त्तमान भारतीय कृषि की मौलिक एव सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि किन-किन उपायो से भूमि की उपज की मात्रा एव प्रकार में वृद्धि की जाय। इस समस्या के अनेक आर्थिक व सामाजिक कारण है। आर्थिक कारणों में भूमि का उपविभाजन व अपखण्डन, उत्तम बीज व खाद का अभाव, सिंचाई की समुचित सुविधाओं का अभाव, कृषि के पुराने उपकरण आदि मुख्य हैं। कृषि के उत्पादन को बढाने के लिए इन समस्याओं को सुलझाना अत्यन्त आवश्यक है तभी न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उपज हो सकती हैं एव देश के औद्योगीकरण के लिए पर्याप्त मात्रा में आवश्यक कच्चा माल प्राप्त हो सकता है। किन्तु अच्छी कृषि के कोई भी उपाय तब तक फलदायक नही हो सकते जब तक कृषि के लिए भूमि के यत्र तत्र बिखरे हुए खण्डो को आर्थिक भू खण्डो मे न बदल दिया जाय।

बड़े पैमाने पर खेती की आवश्यकता—

कृषि के उत्पादन म वृद्धि करने के मार्ग में एक सबसे बडी बाधा अनार्थिक जोतों की विद्यमानता है। खेत का आकार कृषि की लाभदायकता पर एक निर्णयात्मक प्रभाव रखता है। सच तो यह है कि ग्रामीण ऋण ग्रस्तता और दोषपूर्ण विपणन की समस्याओं का मूल कारण जोतो का अनार्थिक होना है। जब जोतें बहुत छोटी होती है, तो वे पर्याप्त आय नही द पाती। फल यह होता है कि किसान को ऊँची दर से ब्याज देकर ऋण प्राप्त करने के लिये विवश होना पडता है और आय की अपर्याप्तता के ही कारण इसके चुकने का अवसर नहीं आता। जोतें वर्तमान में ही अनार्थिक हो, ऐसी बात नहीं है, वरन् पीढी दर पीढी व्यतीत होने के साथ-साथ उनके बँटने और

बिखरने से जोतें अधिकाधिक अनार्थिक होती जा रही है। कृषि उत्पादन की समस्या के स्थायी हल के लिये किसी न किसी रूप में बड़े पैमाने की खेती आवश्यक हो जाती है। संसार के विभिन्न देशों में बड़े पैमाने की खेती विभिन्न ढङ्गों से की जाती है, जो निम्नलिखित है—

(१) व्यक्तिगत कृषि—भारत में व्यक्तिगत कृषि (Individual Farming) सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसके अन्तर्गत कृषक अपने व्यक्तिगत सीमित साधनों के द्वारा कृषि का कार्य करता है। अत. कृषि की इस प्रणाली में बड़े पैमाने पर कृषि के लाभ प्राप्त करना असम्भव है एवं अनेक अनावश्यक आर्थिक हानियाँ होती हैं। इस दोष के निवारणार्थ यदि अधिनियम के बल पर भू खण्डों का एकत्रीकरण करके कृषि की आर्थिक इकाई निर्माण करने की चेष्टा की जाय, तो इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह होगा कि छोटे छोटे किसानों की स्वतन्त्रता समाप्त हो जायगी। वे विशाल कृषि क्षेत्रों के वेतन भोगी श्रमिक मात्र रह जावेंगे। अतः व्यक्तिगत कृषि हमारी समस्या का समुचित समाधान करने में असमर्थ है। यदि भारतीय उत्तराधिकार कानून के अन्तर्गत होने वाले भूमि के उत्तरोत्तर उपविभाजन को रोकना है, तो हमें कृषकों के किसी न किसी प्रकार के सहयोग के आधार पर कृषि की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

(२) पूंजीवादी अथवा कम्पनी के आधार पर कृषि—कम्पनी के आधार पर कृषि (Corporate Farming) पूंजीवादी तरीकों पर निर्भर करती है। इस पद्धति में एक संचालक समिति के प्रबन्ध में कृषि कार्य के लिए एक सम्मिलित संगठन का निर्माण किया जाता है, जिसके सदस्यों का दायित्व सीमित होता है एवं प्रत्येक सदस्य को उस पूँजी के अनुपात में लाभ का अंश मिलता है। इस प्रकार की कृषि में वृहत्त कृषि के आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार की कृषि का उद्देश्य मुख्यतः यह होता है कि अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जाय न कि किसानों के हित की रक्षा की जाय। इस प्रकार की खेती में वे सब गुण दोष विद्यमान हैं जोकि एक पूंजीवादी संगठन में हो सकते हैं। भारत में आजकल खाद्य समस्या बड़ी जटिल हो गई है। इस प्रकार की खेती के द्वारा फसलों की मात्रा में काफी वृद्धि हो सकती है। परन्तु देश की और किसानों की सब बातों को ध्यान में रखते हुए यह न तो किसानों का ही भला कर सकती है और न देश का ही उपकार हो सकता है।

(३) सरकारी कृषि—सरकारी कृषि (State Farming) के अन्तर्गत कृषक फार्म पर मजदूरी पर कार्य करते हैं और फार्म पर स्वामित्व पूर्णतः सरकार का होता है और प्रबन्ध भी सरकार ही करती है। रूस में सरकारी खेती के प्रयोग किये गये हैं। भारत में भी सरकारी खेती को कुछ सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है। देश में बहुत बड़ी मात्रा में ऐसी भूमि पड़ी है, जिस पर खेती नहीं की जा रही है, क्योंकि भूमि में कुछ ऐसे दोष हैं जिनको बहुत बड़ी मात्रा में रुपया खर्च करके हटाया जा सकता

है। इतना रुपया एक साधारण व्यक्ति या कम्पनी नही जुटा सकती, केवल सरकार ही इस कार्य को कर सकती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि सरकार स्वय अपनी ओर से खेती कराये या किसी एजेन्ट के द्वारा। इसका कोई अन्तिम उत्तर नहीं दिया जा सकता। हमारी सम्मति मे तो सरकार को चाहिये कि वह पहले अपने ही प्रबन्ध में देश के कुछ भागो की भूमि के बडे-बडे खेतो मे कार्य आरम्भ करे और फिर यह देखे कि ऐसा करने से कुछ लाभ हो सकता है या नहीं। सच तो यह है कि जब सरकार रेलो जैसी विशाल सम्पत्ति का अपनी ओर से, बिना किसी एजन्ट के, सफल प्रबन्ध करती है, तो यह आशा करना अनुचित नही होगा कि वह इस नये क्षेत्र में भी अवश्य सफल होगी। चूँकि भूमि और कृषि व्यवसाय राज्यो के शासन-क्षेत्र में है, इसलिये सरकारी ढग की खेती पर निरीक्षण उसमे अधिक हो सकता है।

(४) **सामूहिक खेती**—इस प्रकार की खेती (Collective farming) फिलिस्तीन और रूस में आश्चर्यजनक रीति से सफल हुई है। सामूहिक खेती वह खेती है जिसमें व्यक्ति अपने साधनो को एकत्र कर एक प्रबन्ध समिति के आधीन, जिसे वे स्वय चुनते है, मिल जुल कर काम करने का दायित्व ग्रहण करते हैं। यह प्रबन्ध समिति फार्म के प्रबन्ध के लिये, काय व आमदनी के वितरण तथा आधिक्य के निपटारे के लिये दोषी होती है। सभी कार्यकर्त्ता सदस्यो को श्रम समूहो म बाँट दिया जाता है और काय का बँटवारा इन समूहो के आधार पर होता है। समूह का नेता अपने सदस्यो के कार्य को मात्रा व किस्म के लिये जिम्मेदार होता है। कार्य दिवस की इकाइयो (Work day units) के आधार पर पारिश्रमिक की गणना की जाती है अर्थात् पारिश्रमिक उस कार्य क मूल्य के अनुसार होता है जोकि एक औसत सामूहिक कृषक एक दिन मे करता है। योग्यता मे अन्तर या विशेष निपुणता के लिये कुछ कार्यों को अन्य कार्यों की अपेक्षा ऊँची श्रेणी की इकाइयाँ प्रदान की जाती ह। उत्पादन की योजना सरकार बनाती है। प्रत्येक सामूहिक फार्म को अपनी फसल का एक निश्चित आनुपातिक भाग सरकार को नियत दर से बेचना पडता है। सामूहिक खेती के अन्तर्गत बडे पैमाने पर यंत्रीकरण सम्भव हो जाता है, जिससे कृषि उत्पादन में बडी वृद्धि की जा सकती है।

सरकारी खेती और सामूहिक खेती मे एक अन्तर है। एक सरकारी फार्म पर काम करने वाले किसान कवल मजदूरी कमाते ह जबकि एक सामूहिक फार्म पर काम करने वाले किसानो को दैनिक कार्य के लिये मजदूरी मिलता है और फाम के शुद्ध लाभ से भी भाग मिलता है। इस प्रकार सामूहिक खेती म फार्म का सुधार करने के लिये बडा प्रोत्साहन रहता है। यही नहीं, उत्पादन क साधनो पर

सामूहिक स्वामि व क कारण सदस्या को काम क प्रब ध म भी अधिक स्वतन्त्रता होती है ।

यह कहा गया है कि सामूहिक खेती का भारत म गलत समभा जा सकता है और सामाजिक आर्थिक समस्याय उत्पन्न हो सकती है । भारतीय कृषक इस प्रणाली म अपरिचित है । इस स्वाकार करना या न करना उस रीति पर एव उस एजन्सी पर निभर है जिसके द्वारा इस प्रचलित किया जाय । भारतीय कृषक को भूमि के स्वामित्व म बडा प्र म है और उसका यह प्र म सामूहिक खती क प्रचलन क माग म बडा बाधक बनगा । जबकि उद्योग व अ य क्ष त्रो म उत्पादन क साधनो के स्वामिया म उनकी वस्तु नहा छीनी जा रहा तो फिर बेचारे किसानो को ही अपना स्वामित्व छोडन के लिये क्या विवश किया जाय ? अत यह सुभाव दिया गया कि वतमान परिस्थितिया म स मूहिक खती भारत के लिये उपयुक्त नहा है ।

निसदह यदि सामूहिक खती का ढ ग भारत म चल पडा तो भूमि पर व्यक्ति गत स्वामि व का अ त हो जायगा । पर तु इसम उत्पादन म अद्वितीय वृद्धि हो जाती है जो किसी अ य साधन द्वारा सम्भव नही है । यही नही रूस म इस प्रणाली का जो सफलता प्राप्त हुई है उसक कारण अब इसक पक्ष म एस लोग भी हो गये है जो पहले इस ठीक नही समभते थे । राज्या म जमीदारी उन्मूलन कानून पास हो जान से सामूहिक खती के पक्षपाती अब यह जोर के साथ कहने लगे है कि हर प्रकार की यक्तिगत खती ब द कर दनी चाहिये ।

इन परिस्थितिया म हमारा मत है कि हर राज्य क हर जिल के कुछ गावा म सामूहिक ढग की खेती प्रारम्भ कर दी जाये । ये गाव एसे हो जिन पर या तो पहल एक ही व्यक्ति का स्वामित्व था या दो चार का । यदि इन प्रयोगो म सफलता हो तो फिर इस प्रकार की खती म विस्तार किया जा सकता है ।

सहकारी खेती—

सहकारी खती स आशय उस व्यवस्था का है जिसके अ तगत प्रत्यक किसान अपना भूमि का स्वामी बना रहता है लेकिन कृषि सम्ब धी कार्यो को अ य लोगा क साथ मिल कर करता है । सम्पूर्ण खर्चे एक सम्मिलित कोष (Common Fund) म स किय जात है और कुल आय म स काट लिये जाते है । शुद्ध आय विभि न किसाना म उनकी भूमियो के अनुपात म बाट दी जाती है । इस प्रकार जैसा कि योजना आयोग न भी कहा है सहकारी खेती का अथ है भूमि का एकत्रीकरण एव सयुक्त प्रब ध ।

सहकारी खती और सामूहिक खती म अ तर इस प्रकार है —

(१) सामूहिक खती म भूमि का स्वामि व और भूमि की कृषि सामूहिक

होती है। व्यक्ति स्वामित्व का अधिकार 'समूह' के प्रति त्याग दिया जाता है। लेकिन, सहकारी खेती के अन्तर्गत, सदस्य उन भूमियों के स्वामी बने रहते है, जिन्हें वे एक निर्दिष्ट अवधि के लिये या सदैव के लिये सहकारी खेती के हेतु संयुक्त कर लेते है।

(२) सामूहिक खेती में भूमि का प्रत्येक धारी (Holder) या किसी स्थान में वहाँ का प्रत्येक कृषक सदस्यता प्राप्त करने का अधिकार रखता है। उसे अलग नहीं रहने दिया जा सकता है। लेकिन सहकारी खेती का ऐच्छिक संगठन है और किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं होता कि उसे सदस्य बना ही लिया जाय।

(३) सामूहिक खेती के अन्तर्गत सरकार कृषि की योजना बनाती है, जिसे शक्ति एवं यन्त्रों के प्रयोग द्वारा पूरा किया जाता है। लेकिन सहकारी खेती में सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता।

(४) सामूहिक खेती के अन्तर्गत कार्य करने वालों को कुल शुद्ध आमदनी में से 'कार्य दिवस' (Work day) के सिद्धान्तानुसार कुछ भाग दिया जाता है। लेकिन सहकारी खेती के अन्तर्गत सदस्य मजदूरों की और गैर सदस्य मजदूरों को भी प्रचलित दरों से मजदूरी दी जाती है। अवशेष लाभों को प्रदान की गई भूमि के मूल्यानुसार बाँट दिया जाता है।

सब बातों को ध्यान में रखते हुये बड़े पैमाने की खेती आरम्भ करने का सबसे अच्छा ढंग सहकारी खेती का है। इससे न तो जनता के मौलिक रीति रिवाजों या आर्थिक अधिकारों पर ही कोई प्रभाव पड़ता है और न व्यक्तिगत सम्पत्ति में ही कोई परिवर्तन होता है। परन्तु उत्पादन की मात्रा में बहुत वृद्धि हो सकती है। यही कारण है कि अनेक विशिष्ट समितियों ने इस प्रकार की खेती को भारत में अपनाये जाने के लिए मत प्रगट किया है।

सहकारी कृषि निम्न दशाओं में उपयुक्त होती है :—

(१) जबकि किसी नई भूमि को कृषि के लिये प्रयोग में लाना हो, तो काफी भूमि एक सहकारी समिति के अन्तर्गत निर्धारित की जा सकती है।

(२) जबकि वर्तमान भूमि किसी बड़े भूमि-पति के अधिकार में हो और उस पर वह स्वयं खेती नहीं करता, तो सहकारी समिति का निर्माण कर ऐसी भूमि सहकारी खेती के लिये वार्षिक किराये या पट्टे पर प्राप्त की जा सकती है।

(३) जब विद्यमान भूमि पति यह चाहते है कि वे अपनी भूमियों को संचित करके सहकारी-समिति के रूप में कृषि करें।

सहकारी कृषि की विशेषतायें—

सहकारी खेती की निम्न विशेषतायें है :—

(१) भूमि पर एक इकाई के रूप में खेती की जाती है।

(२) भूमि के भिन्न भिन्न टुकड़े मिलाकर एक चक कर दिये जाते हैं, उनके बीच के बाँध हटा दिये जाते हैं जिससे खेतों का आकार बड़ा हो जाय।

(३) सदस्यों का भूमि पर वैयक्तिक अधिकार बना रहता है किन्तु अपनी कृषि करने का अधिकार वे समिति को सौंप देते हैं। खेती का ढंग, क्षेत्रफल, खाद, बीज, औजार आदि के निर्णय का अधिकार समिति को मिल जाता है।

(४) समिति ही कुल उत्पादन का विक्रय करेगी।

(५) पैदावार में से या बिक्री धन में से प्रत्येक सदस्य को उसकी भूमि अथवा श्रम के अनुपात में भुगतान किया जाता है।

(६) कृषि पर कड़ा नियन्त्रण होता है।

(७) प्रत्येक सदस्य का प्रत्येक दिवस का श्रम सम्बन्धी रिकार्ड रखा जाता है।

(८) एक प्रबन्ध समिति हिसाब किताब रिकार्ड व प्रबन्ध के लिये दायी होती है।

सहकारी खेती के विभिन्न स्वरूप—

सहकारी खेती के चार रूप हो सकते हैं —

(१) सहकारी उन्नत खेती (Cooperative Better Farming)

(२) सहकारी संयुक्त खेती (Cooperative Joint Farming)

(३) सहकारी किसान खेती (Cooperative Tenant Farming)

(४) सहकारी सामूहिक खेती (Cooperative Collective Farming)।

अब इन चारों प्रकार की सहकारी खेती के विषय में लिखा जायगा क्योंकि हर प्रकार की खेती के लिए कुछ भागों में समितियाँ बन गई हैं।

(१) **सहकारी उन्नत खेती समिति**—ऐसी समिति वैयक्तिक स्वामित्व (individual ownership) और वैयक्तिक कामकरण (individual operatorship) के सिद्धान्त पर बनाई जाती है। इसका उद्देश्य कृषि के उन्नत ढंगों का प्रचलन करना है। इस प्रणाली के अन्तर्गत किसान अपनी भूमि का स्वयं ही स्वामी बना रहता है और स्वतन्त्र रूप से अपनी भूमि पर खेती भी करता रहता है। लेकिन कुछ कार्यों में उसे सबके साथ मिलकर चलना पड़ता है। जैसे—समिति खेती के सम्बन्ध में जो विशेष योजना बना देती है, सदस्य उसी के अनुसार कार्य करते हैं। बीज और खाद सबकी ओर से समिति खरीदती है और इसी प्रकार जो उपज होती है उसे साफ करने व बेचने का काम भी समिति करती है ताकि मूल्य अच्छा मिल जाय। खेतों को जोतना, फसलों को काटना और मशीनों का प्रयोग मिला जुला रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य सब बातों में सदस्य स्वतन्त्र रहता है। समिति की इस सेवा के बदले

म वह समिति को उचित कमीशन देता है और वर्ष के अन्त में उसे कुछ लाभ (Patronage dividend) प्राप्त होता है। इस प्रकार की समितियाँ यूरोप के बहुत से देशों में विशेषकर डेनमार्क में पाई जाती है।

(२) सहकारी संयुक्त खेती समिति—इस समिति के अन्तर्गत व्यक्तिक स्वामित्व के अधिकार का सम्मान किया जाता है लेकिन छोटे छोटे भू स्वामी अपनी भूमियों को (जो इतने कम आकार की है कि उन पर खेती करना आर्थिक दृष्टि से ठीक नहीं कहा जा सकता) मिला कर एक कर लेते है ताकि संयुक्त रूप से खेती की जा सके अर्थात् वैयक्तिक स्वामित्व किन्तु संयुक्त कृषि की व्यवस्था की जाती है। सब जोतो का आकार काफी बड़ा हो जाता है और सारी भूमि को एक इकाई मान कर खेती की जाती है। समिति एक कमेटी बना देती है और एक मैनेजर नियुक्त कर देती है। सब सदस्यों को इस मैनेजर के कहने के अनुसार भूमि पर काम करना होता है। प्रत्येक सदस्य को उसके दैनिक श्रम के बदले में मजदूरी दी जाती है। यह सब होने हुये भी हर सदस्य अपनी जोत का स्वामी बना रहता है, जिसका प्रमाण उस लाभांश के भुगतान में मिलता है जो वह अपनी भूमि के मूल्य के अनुपात में प्राप्त करता है। जो उपज संयुक्त प्रयत्नों द्वारा भूमि से प्राप्त होती है उसे बेचकर और आमदनी में से खर्चा निकालकर जो बचता है वह समिति सदस्यों में बाँट देती है। खर्चे में भूमि का लगान सदस्यों की मजदूरी, प्रबन्धक का वेतन और सुरक्षित कोष में रखी जाने वाली रकम सम्मिलित होती है। समिति के मुख्य कार्य निम्न होते है—फसल की योजना बनाना, खेती सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं की संयुक्त खरीद, खेती की उपज का संयुक्त विक्रय, भूमि सुधार के लिए भूमि, फसलों एवं अन्य सम्पत्ति की जमानत पर ऋण प्राप्त करना। सदस्यों के साथ यह समझौता होता है कि अलग होने पर वे अपनी भूमि पर किये गये सुधार का खर्चा लौटा देंगे।

(३) सहकारी किसान खेती समिति—ऐसी समिति के अन्तर्गत स्वामित्व तो सामूहिक होता है लेकिन कृषि कार्य व्यक्तिगत आधार पर किया जाता है। समिति सरकार से या किसी बड़े जमींदार से भूमि या तो बिना लगान के या बहुत लम्बी अवधि के लिए पट्टे पर ले लेती है। फिर इस भूमि के कितने ही छोटे-छोटे भाग करके जोतों की कुछ संख्या बना देती है और प्रत्येक जोत को अपने किसी सदस्य को पट्टे पर देती है जो इस समिति का लगानदार कहलाता है। सम्पूर्ण भूमि उस योजना के अनुसार जोती और बोई जाती है जो समिति बना देती है लेकिन योजना किस प्रकार कार्यान्वित की जाय, यह प्रत्येक सदस्य की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है। यद्यपि समिति प्रत्येक सदस्य को आवश्यकतानुसार ऋण, बीज, खाद और बहु-मूल्य कृषि औजार देती तथा सदस्यों की उपज मण्डी में बेचने का दायित्व अपने ऊपर लेती है तथापि सदस्य की इच्छा है कि वह इन सुविधाओं का लाभ उठाये या नहीं।

वे अपना फर्म में खेती करने और बेचने में पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। प्रत्येक लगानदार सदस्य अपनी जोत के लिए निर्धारित लगान अदा करता है। इस प्रकार समिति जमींदार का स्थान ले लेती है और जो लाभ प्राप्त होता है वह सब खर्चा निकाल कर संचित कोष में कुछ निश्चित रकम डालकर सदस्यों में उस अनुपात में बाँट दिया जाता है जिसमें वे लगान देते हैं।

(४) सहकारी सामूहिक खेती समिति—इस प्रणाली के अन्तर्गत भूमि का स्वामित्व एवं कृषि कार्य संचालन दोनों ही सामूहिक आधार पर होते हैं। इस प्रकार की समिति के पास भी भूमि या तो बिना लगान के होती है या लम्बे पट्टे पर होती है। सम्पूर्ण भूमि पर वह संयुक्त खेती कराती है जिसमें सब सदस्य मिल कर काम करते हैं और इस काम के बदले में उनको निश्चित वेतन दिया जाता है। वर्ष के अन्त में लाभ मालूम किये जाते हैं और मजदूरी, प्रबन्ध सम्बन्धी व्यय व संचित कोष में जमा की जाने वाली रकम निकाल कर जो लाभ बचता है वह प्रत्येक सदस्य को उसकी कुल मजदूरी के अनुपात में बाँट दिया जाता है। इस प्रकार की समिति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि बड़े पैमाने पर खेती करने के कारण उत्पादन में मशीनों का प्रयोग भलीभाँति किया जा सकता है। इस दशा में फार्म के मजदूर न तो व्यक्तिगत स्वामी रहते हैं और न व्यक्तिगत कार्य कर्त्ता (neither individual owners nor individual operators)।

भारत में सहकारी खेती का सबसे उपयुक्त रूप—

मरैया कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार सहकारी सामूहिक खेती या सहकारी किसान खेती समिति का संगठन तब किया जा सकता है जबकि समिति के पास भूमि हो। अतः यह उस दशा में सबसे अधिक उपयुक्त है जबकि सुधार कर या अन्य किसी प्रकार से भूमि प्राप्त की गई है। जैसे—शरणार्थियों, रिटायर्ड सैनिकों या भूमिहीन मजदूरों को बसाने के हेतु। सरकार को चाहिए कि वह कृषि यन्त्रों के लिए या कृषि कार्यों के लिए पूँजीगत व्ययों में सहायता करे।

सहकारी उन्नत खेती समितियाँ व्यापक पैमाने पर संगठित की जानी चाहिए। राज्य इन्हें निम्न सहायता दे सकता है—(अ) निपुण स्टाफ (आ) इमारत, स्थायी सुधार और कीमती कृषि यन्त्रों के लिए दीर्घकालीन ऋण (इ) पशु एवं साज सामान के लिए मध्यकालीन ऋण।

सहकारी संयुक्त खेती समितियों की स्थापना करना भारत में सभी जगहों पर उचित न होगा। सरकार को चाहिए कि वह इन समितियों के संगठन में आरम्भ में आर्थिक सहायता, टेक्निकल सहायता, परामर्शदाता, मैनेजर व अन्य निपुण कर्मचारियों की सहायता देकर प्रोत्साहन दे सकती है। सरकार को चाहिए कि समिति

में प्रारम्भिक वर्षों के खर्चे स्वयं चुकाये। केन्द्रीय सहकारी बैंक अपने कार्य क्षेत्र में आने वाली संयुक्त खेती समिति को लघु एवं मध्यकालीन ऋण दे और दीर्घकालीन ऋण भूमि बंधक बैंकों या सरकार द्वारा दिये जायें।

सहकारी खेती के लाभ—

यदि भारत में सहकारी खेती को अपनाया जाय, तो इसके अनेक आर्थिक और सामाजिक लाभ होंगे जबकि सामूहिक खेती के कोई दोष इसमें नहीं है। ये लाभ निम्नलिखित हैं:—

(१) किसान उत्पादन बढ़ाने में समर्थ होंगे और साथ ही कार्य के व्यय भी कम हो जायेंगे, क्योंकि केन्द्रित प्रबन्ध व विकेन्द्रित नियन्त्रण के लाभ उसे प्राप्त हो जाते हैं, वह कृषि विशेषज्ञों की सेवाओं का प्रयोग कर सकता है, खेती की उत्तम टेकनीक ग्रहण कर सकता है, कच्चा माल खरीदने में मितव्ययिता हो जाती है, फसल का विपणन सुविधापूर्वक किया जा सकता है, कीमती कृषि मशीनों तथा साज सामान का प्रयोग हो सकता है।

(२) सहकारी खेती कृषकों में एक सामाजिक चेतना और सुरक्षा की भावना विकसित करेगी, उनके आवास सम्बन्धी दशाओं में सुधार हो जायगा, काम करने की दशायें अच्छी हो जायगी, काम के घण्टे कम हो जायेंगे, मनोरंजन के लिए अधिक समय मिल सकेगा, चिकित्सा, शिक्षा एवं अन्य सुविधायें भी उत्तम स्तर पर प्राप्त हो सकेंगी। श्रम का पुरस्कार भी बढ़ जायगा, क्योंकि सहकारी विधि के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य खेती में प्रत्यक्ष रुचि लेने लगता है। लालच, स्वार्थ आदि सामाजिक प्रवृत्तियाँ मन्द पड़ जाती है।

(३) उक्त लाभ न केवल किसानों को, जोकि सहकारी खेती में भाग लेंगे वरन् सम्पूर्ण समाज को ही मिलेंगे। उत्पादन बढ़ने से ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं का जीवन स्तर भी ऊँचा हो जायगा, सदस्यों में जनतन्त्रीय भावना विकसित होगी, भूमि रहित नवयुवक मजदूरों को भी भूमि पर बसने का अवसर मिलेगा।

(४) संयुक्त सहकारी समितियों के संगठन से कृषक और सरकार के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना हो सकेगी। सहकारी कृषि समितियों के द्वारा सरकार अधिक व्यापक पैमाने पर अपने विभिन्न अनुसन्धानों के परिणामों का सक्रिय प्रदर्शन कर सकेगी, क्योंकि उसके अपने प्रदर्शन फार्मों की संख्या अभी कम है। आकस्मिक संकट के समय सरकार अपनी कृषि नीतियों को (जैसे फसल उत्पादन, गल्ला वसूली आदि के सम्बन्ध में) सरलता से कार्यान्वित कर सकेगी। सहकारी कृषि समितियों के द्वारा सरकार को कृषि सम्बन्धी आँकड़े संग्रह करने में भी सहायता मिलेगी।

किया है कि देश में सहकारी खेती को प्रोत्साहन दिया जाए। साथ ही भूस्वामित्व की अधिकतम सीमा निर्धारित करने का भी निर्देश दिया गया है। अधिकतम सीमा निर्धारित करने के फलस्वरूप सरकार जो भूमि हस्तगत करेगी, उस भूमिहीनों में वितरित नहीं किया जायेगा, बल्कि भूमिहीनों की सहकारी समितियां बनाई जायेंगी और यह अतिरिक्त भूमि इन समितियों को खेती करने के लिये दी जायेगी। पहले तो सहकारी कृषि सम्बन्धी प्रस्ताव पर अधिवेशन में ही बहुत जोरों में बहस हुई थी। उसके बाद संसद में तथा संसद के बाहर विभिन्न सभा सम्मेलनों में इस पर वाद विवाद चलता आ रहा है। यह कितना विवादास्पद विषय बना है उसका अनुमान इस बात से ही लगा लिया जा सकता है कि राजाजी, श्री मुंशी, श्री रंगा जैसे व्यक्तियों ने भी प्रस्तावित सहकारी कृषि की आलोचना की है। लेकिन सरकार इसको कार्यान्वित करने के लिये कृत संकल्प है क्योंकि इसे वह देश में सामाजिक तथा आर्थिक क्रान्ति का अनिवार्य अंग मानती है।

सहकारी कृषि के प्रश्न पर विचार करते समय हमें सबसे पहले यह विचार करना चाहिये कि किसानों के सामने क्या कठिनाइयाँ हैं और कृषि व्यवस्था के सम्बन्ध में हमारे मुख्य लक्ष्य क्या हैं। कृषि समस्याओं का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है —(१) भूमि की कमी तथा बिखरे हुए खेत, (२) अन्न तथा चारे की अपर्याप्तता, (३) अल्प आय, (४) पर्याप्त तथा कम ब्याज वाले ऋण की व्यवस्था का अभाव, (५) जमीन के मुकाबले जन संख्या की भारी बहुतायत, (६) गाँवों में उद्योग धंधों की कमी, (७) सिंचाई, अच्छे बीजों तथा खाद की उन्नत व्यवस्था का अभाव, (८) पशुओं की हीन दशा, (९) बुनियादी शिक्षा का अभाव, (१०) सुधारों तथा परिवर्तन के प्रति आशंकाशील मनोवृत्ति तथा किसी हद तक प्रतिरोध की भावना।

विचारणीय विषय तो यह है कि इन समस्याओं का समाधान कैसे हो और कृषक राष्ट्र के आर्थिक विकास का अंग कैसे बने। जब हम भूमि सुधारों तथा कृषि नीति की चर्चा करें तो हम इन महत्वपूर्ण उद्देश्यों को सतत दृष्टि में रखना चाहिए —(१) किसान की आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति हो, (२) खाद्य उत्पादन में इतनी वृद्धि हो कि देश आत्मनिर्भर बन जाए तथा (३) वह लोकतन्त्रीय पद्धति अक्षुण्ण बनी रहे जिसमें व्यक्ति तथा समाज के हितों का साथ-साथ निर्वाह हो सके।

जो लोग बिना सोचे विचारे एक दम सामूहिक कृषि के गीत गाने लगते हैं उन्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि सोवियत संघ में सामूहिक कृषि का प्रयोग सफल नहीं रहा। जब पहले किसानों से जमीन छीनकर उन्हें कृषि मजदूरों के रूप में परिणित किया गया तो उन्होंने प्रबल विरोध किया था और इस प्रतिरोध में बहुतों का सफाया हुआ। १९३० में सोवियत सरकार को अपनी गलती का अनुभव हुआ

होगा। इस पर सामूहिक कृषि फार्मों को अधिक उत्पादन के लिये प्रोत्साहित करने के हेतु कुछ रियायतें दी गई। उनमें से एक उल्लेखनीय है और वह यह है कि प्रत्येक किसान परिवार अपना एक 'उद्यान भूमि खंड' रख सकता था। लेकिन सामूहिक कृषि फार्मों के परिणाम तब भी आशाप्रद न रहे। फलतः १९४९-५० में कृषि नगरों की योजना चली। वह भी कुछ दिनों बाद त्याग दी गई। अतः किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मूल्य वृद्धि की गई तथा कृषि सम्बन्धी कर घटाये गये। इस प्रकार ३५ वर्षों के इतने बड़े परीक्षण का वह परिणाम न निकला जिसकी कि आशा की गई थी। चीन ने 'कम्यूनों' के प्रयोग के रूप में रूस से भी आगे जो कदम बढ़ाया है, उसके बारे में भी निष्पक्ष विशेषज्ञ आशावादी नहीं मालूम देते। उनका कहना है कि चीन के अन्नोत्पादन के मुकाबले जापान में अन्नोत्पादन का अनुपात अधिक है। बात यह है कि उसने वैज्ञानिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग किया है।

सहकारी खेती का प्रयोग देश में सफल हो सकेगा, इस बारे में शंकायें उठाई जा रही हैं।

सहकारी खेती के प्रस्ताव के विरोध में—

राजाजी का कहना है, 'साम्यवादी देशों को छोड़कर जहाँ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अभाव है और लोगों से जबर्दस्ती काम कराया जाता है कहीं भी सहकारी खेती का प्रयोग नहीं किया गया। सहकारी खेती बिना बल प्रयोग के सम्भव नहीं होगी। लोग खुशी से मजदूर बनने के लिये राजी नहीं होंगे और किसान तो और भी कम। हमारे देश में सहकारी खेती भयंकर रूप से विफल होगी। जो पंचायतों द्वारा खेती कराने की बात करते हैं उन्हें मद्रास के उस प्रयोग का अध्ययन कर लेना चाहिये जबकि छोटे जंगल पंचायतों के सपुर्द कर दिये गये थे।

मुन्शी जी को भी सहकारी खेती में जोर जबर्दस्ती की आशंका है। उन्होंने सहकारी खेती के विरुद्ध ये आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं :—(१) हमारे पास काफी साधन या प्रशिक्षित व्यक्ति नहीं हैं। इस समय जो अधिकांश सहकारी समितियाँ हैं, उनका काम केवल कर्ज देना है। उनको पैसा बैंकों से मिलता है। साधनों के रूप में सदस्यों का योग तो मुश्किल से दसवां हिस्सा भी नहीं होता। भूमिहीन श्रमिकों को कुशल किसानों के रूप में नहीं बदला जा सकेगा। (२) सहकारी खेती का प्रयोग भारत में कहीं भी सफल नहीं हुआ। मद्रास, पंजाब और अन्यत्र जहाँ भी वह किया गया अन्त में उसे छोड़ देना पड़ा। किसान को अपनी भूमि से बेहद मोह होता है और वह उसे सहकारी खेती में शामिल करने के लिए रजामन्द नहीं होगा। (३) दुनिया में सहकारी खेती से कहीं भी उत्पादन नहीं बढ़ा। जापान और इजरायल में जहाँ

उत्पादन बढा है, किन्तु उसका श्रेय व्यक्तिगत खेती का है। किसान लाभ की आशा में काम करता है। सहकारी समितियां किसानो को खाद, अच्छे बीज, अन्न को सुरक्षित-रखने और बिकवाने में मदद दे सकती है। युगोस्लाविया मे बल प्रयोग द्वारा सहकारी खेती जारी की गई तो उत्पादन १५-२० प्रतिशत घट गया। हमारे देश में वर्तमान खेती की व्यवस्था हजारो वर्षों मे चली आ रही है। पारिवारिक इकाई ही इसके लिए सर्वोत्तम होगी।

श्री रघुवीरसहाय (का-उ. प्र) ने कहा कि देश के सहकारी आन्दोलन मे एक गन्दी "बू" आती है क्योकि अधिकारियो का सहकारी संस्थाओ से निकट सम्पर्क है। श्री वाजपेयी ने कहा कि कुछ लोग कहते है कि सहकारी खेती का उद्देश्य उत्पादन बढाना है और कुछ लोग कहते है कि साम्यवादियो के बढते हुए प्रभाव को कम करने के लिए है। इससे उत्पादन तो बढ नही सकता। बल्कि गाँव में अव्यवस्था और नौकरशाही बढेगी। अगर आप सहकारी खेती में शामिल करने के लिए जबरदस्ती नही करेंगे तो किसान सहकारी खेती में शामिल नही होगे। आप सहकारी खेती को ज्यादा आर्थिक सहायता देंगे और निजी खेती को नही। बिना दबाव के सहकारी खेती की स्थापना न किसी देश मे हुई है और न यहा होगी।

श्री रघुनाथसिंह ने कहा कि जापानी खेती बडे बडे रकबा के लिए उपयुक्त नही है। इस व्यवस्था मे छोटे खेतो में ही हम अधिक उत्पादन कर सकते है। आपने छोटे खेतो को मिलाकर बडे खेतो में परिणित किये जाने का सुझाव रखा। कुछ सदस्यो ने यह भी कहा बताया जाता है कि अतिरिक्त भूमि के लिए जाने की बात कहने से पूर्व हमें यह जान लेना चाहिये कि हमारे पास कितनी अतिरिक्त भूमि है जिसे हम बाँटेंगे। यह जानकारी नही रहने से इस बात की पूरी आशका है कि जिनके पास भूमि है वे भूमि की उपयोगिता पर कम खर्च कर सकते है और उसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड सकता है। अत. इन मामलो में सरकार को जल्दी करनी चाहिए ताकि भूमि की समस्या हल करते हुए उत्पादन में भी कमी न होने पाए।

हमारी भारत सरकार एव राज्य सरकार बार-बार यह जोर दे रही है कि सहकारिता के आधार पर कृषि होनी चाहिए। यह तो बिल्कुल ठीक है किन्तु हमारे देश की स्थिति के अनुकूल सहकारिता किस प्रकार की हो इसका कोई ठीक-ठीक ढाचा उनके दिमाग मे नही मालूम होता। नतीजा यह हो रहा है कि आजकल जितनी सहकारी समितियां बनी हुई है उनका लाभ केवल पढे-लिखे लोग ही उठाते है और उनमे अधिकतर भाई-भतीजावाद का बोलबाला रहता है। वे प्रायः एक ही परिवार के सदस्य होते हैं जिसमे अनपढ किसानो को कोई लाभ नही होता। आजकल जितनी कृषि सहकारी समितियां है तथा बन रही है वे ऐसे लोगों की है जिनके पास सैकड़ो एकड जमीन है, जो सीलिंग लगने पर उनके कब्जे से निकलने वाली है,

सफलता प्राप्त की है उनसे भी हम कुछ सीख सकते हैं और सारी दुनिया इस सिद्धान्त को तसलीम कर चुकी है कि सहकारिता के जरिए ही अनाज का उत्पादन और लोगों का रहन सहन ऊंचा हो सकता है।

प्रधानमंत्री ने कहा कि जो लोग सहकारिता के उसूल का विरोध कर रहे हैं, वे उस वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं जिसे अपने निहित स्वार्थों को ठेस लगने का खतरा है। इन लोगों ने अपने दिमाग को ऐसी कोठरी में बन्द कर रखा है जहाँ न हवा आती है, न धूप। शायद ही कोई समझदार आदमी ऐसा मिलेगा जो सहकारिता के तरीके का विरोध करता हो, यहाँ तक कि पूंजीवादी देश भी सहकारिता को मानते हैं। आखिर हम यही तो चाहते हैं कि किसान अपनी अपनी जमीनें रखें, लेकिन खेती मिल कर करें और पैदावार को उसी हिसाब से बांट लें। यह ठीक है कि इसमें कुछ सीखे हुए आदमियों की आवश्यकता है। पुराने ढंग की सहकारी समितियां यहाँ काम नहीं दे सकतीं, क्योंकि उनमें अफसरशाही का बोलबाला है। आजकल हिन्दुस्तान में खेती का कोई तरीका अच्छा नहीं है, सिवाय इसके कि हम सहकारिता के उसूल को उसमें लागू करें। इसलिए सहकारिता आज का युग धर्म है। श्री नेहरू ने सहकारिता का भारत की संयुक्त परिवार प्रणाली के साथ मुकाबला किया है। उन्होंने कहा कि बहुधा एक संयुक्त परिवार में भाइयों का किसी सम्पत्ति पर पृथक रूप से स्वामित्व का अधिकार होता है, परन्तु उसके बावजूद परिवार के सभी सदस्यों के लाभार्थ सम्पत्ति की व्यवस्था संयुक्त रूप से होती है। उन्होंने कहा—सहकारी कृषि भी इसी प्रकार व्यक्तिगत स्वामित्व को नहीं हटाती और न ही किसान को उसकी भूमि से वंचित करती है, बल्कि भूमि की बहतर व्यवस्था होने की संभावना बढ़ाती है।

नेहरूजी ने अपने भाषण में कुछ नई बातें कहीं। एक यह कि कुछ लोग कहते हैं कि सहकारिता में शामिल होने के लिए किसानों पर दबाव डाला जायगा। उन्होंने कहा कि जब तक वर्तमान संविधान लागू रहेगा तब तक इस तरह का भय निराधार है। हाँ, यदि संविधान बदल गया तो मैं नहीं कह सकता। लेकिन यह एक दम गलत बात होगी कि एक किसान गांव में सहकारिता के निर्माण में बाधक बने और उसे बर्दाश्त किया जाए। दूसरी नई बात उन्होंने यह बताई कि लोग कहते हैं कि क्या किसान जब सहकारिता में शामिल हो जायेंगे तब वे अपने खेतों के मालिक बने रहेंगे। उन्होंने कहा कि मैं यह नहीं कह सकता कि अमुक किसान अपने ही खेत का मालिक बना ही रहेगा, इस बदलती हुई दुनियां में स्वामित्व का अर्थ भी बदल रहा है। आचार्य विनोबा भावे कहते हैं कि जमीन का स्वामित्व समाप्त कर देना चाहिए। सहकारी खेती में यह कहना संभव नहीं है कि अमुक किसान अपने ही खेत का मालिक बना रहेगा। हाँ, वह सहकारिता में जितने हिस्से का मालिक पहले रहेगा उतने का मालिक बाद में भी बना रहेगा। उनके कहने का अर्थ यह था कि

यदि एक हजार एकड़ की सहकारी खेती में अमुक किसान की ५ एकड़ भूमि है तो वह ५ एकड़ का हिस्सेदार बना रहेगा लेकिन जिस ५ एकड़ का वह पहले मालिक था उसी भूमि का मालिक सम्भवतः वह नहीं रह सकेगा। तीसरी नई बात उन्होंने यह बताई कि सहकारी खेती में शामिल होने वालों को यानी सहकारी खेती को सरकार जितनी अधिक सहायता देगी उतनी सहायता निजी किसान को नहीं दी जाएगी। नेहरू जी ने कहा कि सरकार इस बात में भेदभाव करेगी। चौथी नई बात उन्होंने यह बताई कि सहकारी खेती के मामले में ऐसा दृष्टिकोण अपनाना चाहिए कि उसमें परिस्थितियों के अनुसार हेरफेर किया जा सके। उदाहरण के लिए गेहूं वाले क्षेत्रों की स्थिति चावल के क्षेत्रों से भिन्न होती है।

नेहरू जी ने बताया कि गांवों की गरीबी दूर करने के लिये दो मार्ग हैं एक है सहकारी खेती और दूसरा है कि खेती पर काम करने वाले लोग उद्योगों में जायं। यदि आप वर्तमान स्थिति में परिवर्तन करने के लिये कदम नहीं उठाते हैं तो गरीबी दूर नहीं हो सकती। उन्होंने कहा कि सहकारी खेती का उद्देश्य गरीबी दूर करना और उत्पादन बढ़ाना है। यदि हम कोई ऐसा कदम उठाते हैं जिससे संक्रमण काल में तथा अन्त में जाकर उत्पादन कम होता है तो वह गलत कदम होगा। सहकारी खेती निस्सन्देह अच्छा कदम है लेकिन कुछ स्थानों पर इसका पहले परीक्षण किया जाए। यह हानिकारक कदम होगा। इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। लेकिन कल ही सहकारी खेती प्रारम्भ करना व्यवहारिक कदम नहीं होगा क्योंकि इसके लिये लोगों में वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि सहकारिता मनुष्य के सभी कार्यों के लिए लाभदायक है। हां कला के क्षेत्र में यह बात लागू नहीं होनी चाहिये। उन्होंने कहा कि वैदिक युग और आज के युग में बहुत फर्क है। आज आबादी अधिक और भूमि कम है।

श्री मन्नारायण ने सहकारी कृषि के लाभ बताते हुए कहा कि मेड़ खत्म कर दिए जाने से हर ५० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि खेती के लिये उपलब्ध हो जाएगी। इसके अलावा इसमें श्रम और पूंजी का अधिक युक्तियुक्त उपयोग हो सकेगा। उन्होंने कहा कि सहकारिता के क्षेत्र में काम करने वालों को सहकारी कृषि के ये लाभ किसानों को बताने चाहिए जिससे वे सहकारी कृषि को एक विश्वास के साथ अपनायें इस भावना से नहीं कि उन पर कोई चीज थोपी जा रही है।

नेहरू जी ने कहा कि हम कृषि के क्षेत्र में महान प्रगति करने की आवश्यकता है क्योंकि कृषि विकास के बिना औद्योगिक प्रगति रुक जायगी। यह ठीक है कि देश की समस्याओं के लिए उद्योगीकरण आवश्यक है। विज्ञान और टेक्नालाजी के बिना देश प्रगति नहीं कर सकता किन्तु देश का उद्योगीकरण भी स्थिर कृषि अर्थ व्यवस्था पर निर्भर करता है

प्रधान मंत्री ने कहा कि भारत में प्रति एकड़ उत्पादन विश्व में सबसे कम है। इसे बढ़ाकर दुगुना किया जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है यदि हम कृषि की वैज्ञानिक पद्धति अपनाएं जैसी कि अन्य विदेशों में अपनाई जाती है। प्रधानमंत्री ने कहा कि देश में जो विभिन्न भूमि प्रथाएं चालू थी वे उत्पादन में बाधक थी। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सब प्रथम भूमि व्यवस्था को क्रांतिकारी रूप दिया गया। जमींदारी समाप्त कर दी गई परन्तु अब भी इस दिशा में और कार्य शेष था उसी के बारे में नागपुर कांग्रेस के निर्णय है। नेहरूजी ने कहा कि इस प्रकार के भूमि सुधार अन्य देशों में भी किए गए हैं। मैं साम्यवादी देशों की बात नहीं कहता क्योंकि उनकी विचार प्रक्रिया के आधार भिन्न हैं। जापान में जो साम्यवादी देश नहीं है भूमि सुधार किये गए तथा भूमि की अधिकतम मात्रा निश्चित की गई। अतः यह नहीं सोचना चाहिये कि इन सब बातों का किन्हीं सिद्धान्तों से सम्बन्ध है। यह तो विश्व में सर्वत्र प्रमुख समस्याओं के समाधान का एक उपाय है।

सहकारिता का सिद्धान्त आजकल सभी बातों में आवश्यक है। यह देखना होगा कि सहकारिता का स्वरूप बड़ा हो या छोटा। नागपुर कांग्रेस में सहकारी खेती जारी करने के लिये बल प्रयोग का कहीं जिक्र नहीं है। नेहरूजी ने नई दिल्ली की सार्वजनिक सभा में बोलते हुए कहा है कि यह काम लोगों की स्वेच्छा से होगा। लोगों को सहकारी खेती के फायदे समझाये जायेंगे और वे समझ-बूझ कर ही इसमें प्रयोग में शामिल होंगे। नागपुर प्रस्ताव में तो यह भी कल्पना की गई है कि सहकारी समिति में शामिल होने वाला किसान अपनी भूमि का मालिक बना रहेगा। उसे अपनी भूमि और काम के हिसाब से जमीन की उपज में हिस्सा मिलेगा।

नागपुर प्रस्ताव में संयुक्त सहकारी कृषि की परिकल्पना एक अंतिम प्रणाली के रूप में की गई थी। तीन वर्ष की अवधि तक हमारा मुख्य कार्य सेवा सहकारी समितियों का निर्माण होना चाहिए। संयुक्त सहकारी कृषि का घनिष्ठ सम्बन्ध सेवा सहकारी समितियों की सफलता से है जो कि लोगों में देहाती जीवन के अनेक क्षेत्रों में सहयोग की स्वभाव एवं दृष्टिकोण पैदा कर देगी। तब संयुक्त सहकारी कृषि को उत्पादन प्रक्रिया में भी सहकारिता के प्रसार के रूप में चालू किया जाएगा।

लोक सभा ने नागपुर प्रस्ताव के उक्त अंश स्वीकार कर लिया है। उप योजना मंत्री ने बताया है कि सरकार ने यह तय कर लिया है कि प्रत्येक सेवा सहकारी संगठन को ५ वर्ष तक प्रति वर्ष ६००) दफ्तर संचालन व्यय के लिए दिया जायगा।

सहकारी खेती कैसे सफल हो ?*

आज हमारे ग्रामीण समाज की जो स्थिति है उसमे अभी सहकारिता की भावना बहुत कम है। एक दूसरे के प्रति सहनशीलता नहीं है। आपस मे झगडे बहुत है। जो सहकारी समितियां अभी गांवो मे चालू है उनका काम भी ठीक नहीं चल रहा है। समितियों के चुनाव मे झगडे होते है। चुनाव हो जाने के बाद भी बराबर पार्टीबंदियां चलती रहती है। ऐसी स्थिति मे यदि इसका कोई उपाय नहीं किया गया तो सहकारिता के द्वारा खेती जैसा कार्य सफल होना असम्भव है। कहीं ऐसा न हो कि आपस की पार्टीबन्दी तथा वैमनस्य के कारण सहकारी खेती मे उत्पादन और गिर जाए।

आजकल गावो की सहकारी समितियो मे सरकारी अधिकारियो का हस्तक्षेप है और एक तरह से जो थोडा काम चल रहा है वह सरकारी अधिकारियो के बल बूते पर ही चल रहा है। सरकारी हस्तक्षेप मे ऐसे ही काम चल सकता है, इसमे अधिक क्षमता उसमे नही आ सकती। इसी से आज माग है कि सरकारी हस्तक्षेप समाप्त होना चाहिए। हमारे प्रधान मन्त्री भी यही चाहते हैं।

हम कोई व्यवस्था ऐसी लानी होगी कि जिसमे सहकारी समितियो मे पार्टीबन्दी चलते रहने पर भी उनका काम आगे बढता जाए और उसमे रुकावट न हो। एक बार काम जम जाने की जरूरत है फिर तो जब भूमि के उत्पादन मे बढोतरी हो जायेगी तथा सहकारी खेती के साथ ही साथ दूसरे सहायक उद्योग धंधे भी कुछ खडे हो जायेगे और इनके द्वारा गाव वालो को रोजगार मिल जाएगा तब तो ग्रामीणो को स्वय उसका मीठा फल अनुभव होने लगेगा। उनकी आय बढ जाएगी। कम से कम वह काफी स्थायी हो जाएगी। मजदूरी का पैसा उनको नियम से बराबर उपलब्ध होने लगेगा।

जिस प्रकार व्यावसायिक कम्पनियो मे व्यवस्था का काम कुछ सचालको (डायरेक्टरो) के हाथ मे रहता है उसी से मिलती जुलती कोई व्यवस्था सहकारी समितियो मे भी लानी होगी ताकि सभी साझीदारो को व्यवस्था के रोजमर्रा के कामो मे हस्तक्षेप न रहे।

चुने गाँवों मे प्रचार—

सहकारी खेती की सफलता के लिए पहला आवश्यक कदम तो यह है कि प्रारम्भ मे प्रत्येक क्षेत्र में हम कुछ गांवो को चुन लें। ये गांव ऐसे होने चाहिए कि वहा अभी तक सहकारिता तथा पचायत का काम सबसे अच्छा चल रहा हो तथा पार्टीबाजी सघर्ष तथा वैमनस्य सबसे कम हो। इन चुने हुए गांवो में पहले खूब अच्छा

---

* श्री कृष्णचन्द्र हिन्दुस्तान जून १९४०

तरह से सहकारी खेती का प्रचार किया जाए ताकि गांवों का प्रत्येक व्यक्ति सहकारी खेती का क्या रूप होगा तथा उससे उसे क्या लाभ होगा, यह समझ जाए और यह भी वह जान जाए कि उसके पास जो जमीन आज है वह सहकारी खेती होने पर उसी की मिल्कियत रहेगी। उसे यह समझा देना जरूरी है कि साझेदारी का मतलब है कि सब जमीनों की जुताई, बुवाई, नलाई आदि का काम एक व्यवस्था के द्वारा सचालित होने लगे। जिसकी जितनी निजी जमीन होगी अथवा जिसका जितना खेती का सामान हल, बैल आदि होंगे, उन सबका मूल्यांकन एवं निश्चित सिद्धान्त के आधार पर कर लिया जाएगा और इस प्रकार प्रत्येक के हिस्से की जो धनराशि होगी वह उसकी पूंजी के रूप में सहकारी समिति के हिसाब में अंकित हो जाएगी। इस पूंजी के अतिरिक्त जो नकद रुपया वह अपने हिस्से के रूप में देगा वह भी उसके हिसाब में सम्मिलित हो जाएगा। इस प्रकार किसी की जितनी भी पूंजी सहकारी खेती की समिति के हिसाब में निकलेगी वह व्यक्ति का पावना समिति पर रहेगा।

उद्योग धन्धों की जरूरत—

यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक साझीदार को इस बात का आश्वासन प्राप्त हो कि सहकारी खेती के चालू हो जाने पर सहकारी समिति के लिए यह अनिवार्य होगा कि वह किसान को उसकी योग्यता के अनुसार काम दे तथा उस काम के हिसाब से उसे मजदूरी का पैसा नियमित रूप से अदा करे। सम्भव है कि सहकारी खेती की व्यवस्था चालू हो जाने पर सब साझीदारों को खेती में काम न मिल सके। उसके लिए फालतू व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए गांव में कोई और उद्योग धन्धा चालू करना पड़ेगा।

जिन चुने हुए गांवों में इन बातों का प्रचार करने पर यदि यह लगे कि वहाँ के अधिकांश व्यक्ति सहकारी खेती की उपादेयता को अनुभव करने लगे हैं और उसमें सम्मिलित होने को तैयार हैं तो उन्हीं गावों में सहकारी खेती पहले चालू की जाए। सेवा सहकार समितियों की जो योजना अभी पहले चालू की जा रही है और जिस पर आगामी तीन वर्षों में पूरा बल दिया जाएगा, उससे भी पता लग सकेगा कि कौन-कौन से गांवों में सहकारिता की अधिक से अधिक भावना घर कर गई है। सेवा सहकार समितियों के द्वारा किसानों को खेती के लिए आवश्यक सहायता उपलब्ध की जाएगी। किसानों को इन संस्थाओं के द्वारा अच्छा बीज, खाद खेती के औजार तथा तकावी दी जाएगी। इन समितियों में किसान ही सदस्य होंगे और वे स्वयं ही उनका संचालन करेंगे। सहकारिता का मूल मंत्र यही है कि किसान अपनी सहायता के लिए किसी दूसरे के प्रति न ताकें, बल्कि वे स्वावलम्बी बनें, मिल-जुलकर अपनी मदद स्वयं करें। अपनी-अपनी पूंजी मिला-जुलाकर उसके द्वारा एक दूसरे की आवश्यक सहायता प्रदान करें। यह सही है कि उनकी अपनी पूंजी मिला-जुलाकर भी अभी उनकी

सहायता के लिए पर्याप्त नहीं होगा। प्रारम्भ में इसके लिए सरकार उनको आवश्यक पूंजी ऋण के रूप में देगी। परन्तु उद्देश्य सदा यही रहेगा कि किसान स्वयं अपने पैरों पर खड़े हों।

दैनिक कार्य—

सहकारी समितियों में कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि जिससे प्रबन्ध का दैनिक कार्य कोई एक व्यक्ति बिना दूसरों के किसी हस्तक्षेप के अपनी योग्यता के अनुसार संचालित करता रहे। यह संचालक अवश्य ही साझीदारों द्वारा ही चुना जाएगा। परन्तु एक बार चुने जाने पर उसे कुछ निर्धारित समय अथवा तीन या चार वर्ष के लिए बिना हस्तक्षेप के कार्य संचालन का अवसर प्राप्त रहेगा। उसकी सहायता के लिए एक शिक्षित व्यक्ति वेतनभोगी मैनेजर के रूप में भी रखना आवश्यक होगा। इस मैनेजर की योग्यता सरकार समय समय पर निर्धारित कर सकेगी और आवश्यकता हुई तो सरकार ऐसे योग्य व्यक्तियों की सूची तैयार करेगी और समितियों के लिए अनिवार्य होगा कि वे उसी सूची में से ही नियुक्ति करें। इन मैनेजरों के वेतन क्रम योग्यता आदि बातों के लिए उचित नियम होंगे।

साझेदारी की समितियाँ गाँव गाँव में स्थापित हों और ठोस नींव पर उनका निर्माण हो इसके लिये आवश्यक है कि कुछ योग्य व्यक्ति उन्हें स्थापित करने का भार अपने ऊपर लें। ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है। ऐसी समिति को दृढ़ होने के लिए कम से कम तीन चार वर्ष की अवधि आवश्यक होगी। इस अवधि के अन्दर उसी योग्य व्यक्ति पर इसके संचालन का भार रहना चाहिये कि जिसने उसका संगठन किया है और उसे उस कार्य के लिये पर्याप्त वेतन मिलना चाहिये। कानून में उसकी उचित व्यवस्था रहनी चाहिये। कोई योग्य व्यक्ति समिति को स्थापित करे उसका संगठन मुकम्मिल करे और फिर प्रचलित ईर्षा-द्वेष के कारण दूसरे साझीदार पार्टीबन्दी से अपना बहुमत करके उसे निकाल बाहर करें इससे संस्था की नींव तथा उसका संगठन दृढ़ नहीं हो सकता और न आगे उसका कार्य संचालन ही सुचारु रूप से हो सकता है। एक निर्धारित अवधि तक उसे कार्य करने का अवसर मिलना चाहिए। इसके दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि यदि कोई संचालक स्वार्थी बेईमान अयोग्य तथा अनुपयुक्त सिद्ध हो तो उसे हटाए जाने की भी कानून में व्यवस्था होनी चाहिये। ऐसा न होने से वह अपने स्वार्थ साधन में ही रत रहेगा और समिति बर्बाद हो जायगी। इसके लिये उसे अपनी सफाई देने का पूरा अवसर उपलब्ध रहना चाहिये। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि उसके साथ पूरा न्याय हो तथा स्वत्वों का वह निराकरण न करने ... इन सब बातों के लिये सहकारी कानून में आवश्यक नियम बनाए जायेंगे।

सहकारी कृषि के सम्बन्ध मे वर्तमान स्थिति—

२८ मार्च सन् १९५९ को लोक सभा ने एक गैर-सरकारी प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसके अनुसार सेवा-सहकारिताओं का संगठन किया जायगा, जोकि देश में सहकारी कृषि के प्रचलन के लिये उपयुक्त वातावरण निर्माण करेंगी। भारत सरकार ने जून ११ को एक समिति का गठन किया है जोकि उन लोगों को, जो देश में स्वेच्छा से संयुक्त कृषि समितियाँ स्थापित करने का निश्चय करते है, वित्तीय, टैक्नीकल एवं अन्य सुविधायें प्रदान करने के हेतु एक कार्यक्रम तैयार करने में सहायता देगी। इस समिति की रिपोर्ट १५ फरवरी सन् १९६० को प्रकाशित हुई थी। रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई है कि प्रत्येक जिले के लिये एक अग्रगामी योजना (pilot project) के हिसाब से ३२० योजनायें चुने हुये ब्लॉकों में अगले चार वर्षों के अन्दर चलाई जायें। उसकी सम्मति में अल्पमत कृषकों को किसी सहकारी समिति में सम्मिलित होने पर विवश करना ऐच्छिकता के आधारभूत सिद्धान्त के विरुद्ध है तथा व्यावहारिक दृष्टि से भी यह वाञ्छनीय नहीं है। निम्न तालिका मे विभिन्न राज्यों में सहकारी समितियों का वितरण दिखाया गया है—

सहकारी कृषि समितियाँ (३० जून १९५८)

राज्य	समितियों की संख्या	कार्यशील व्यक्तियों की संख्या	भूमि का क्षेत्रफल (एकड़ों में)
आन्ध्र प्रदेश	८	४११	७१८
आसाम	१८४	४,९७७	१३ ४४४
बिहार	२६	२५२	३,११४
बम्बई	५१०	१४ ६९९	४९,५३५
जम्मू व काश्मीर	५	५८२	१,०७६
केरल	९	१,७१४	४,०५१·९६
मध्य प्रदेश	२०१	२,८३०	३६,१८२
मद्रास	४४	२,७१२	८,२६८·३६
मैसूर	१२८	३,४०६	१७,५८०
उड़ीसा	२८	४३८	२,०५३
पंजाब	६७८	६,२५३	१,२७,५८७
राजस्थान	१०३	६२७	७,५१०
उत्तर प्रदेश	२६२	२,९८०	३३७१२
पश्चिमी बंगाल	१६१	२ ५००	११,२२०
अण्डमन एवं निकोबार द्वीप	३१	८००	—
दिल्ली	२१	१,२४७	५,१६०
हिमाचल प्रदेश	८	—	—
मनीपुर	१५	४८५	५२६
त्रिपुरा	२०	१,१८०	४,८६५

† India, 1960.

STANDARD QUESTIONS

1 Mention the various forms of large scale farming and state which of them is the most suitable in Indian conditions

2 Distinguish between co-operative farming and collective farming What are the obstacles to co operative farming in India ?

3 What are the different forms of co operative farming societies ? State the practicability of organising such socie ties in Indian Agriculture

4 Mention the various forms of co operative farming recommended for adoption in India Which of them do you *prefer and why* ?

5 Describe a co operative farming society What are its diffe rent forms ? Make out a case for the wide establishment of such societies in India

6 Write a critical essay on co operative farming in India ?"

अध्याय ८

भूमिरहित कृषकों की समस्याएँ व भूदान आन्दोलन

(Problem of landless Labourers and Bhoodan movement)

भूमिरहित कृषकों की समस्या का महत्व—

भूमिरहित कृषक (Landless Labourer) से हमारा आशय गांव में काम करने वाले उन व्यक्तियों से है, जोकि कृषि के धन्धे में मजदूरी पर काम करते हैं और जिनके पास अपनी कोई भूमि नहीं होती और यदि होती भी है तो इतनी कम कि उससे उनका तथा उसके परिवार के सदस्यों का पालन-पोषण नहीं हो सकता। हमारी ग्राम्य जनता का एक बहुत बड़ा भाग ऐसे कृषि श्रमिकों का ही है, जैसा कि क्वेसने महोदय (Quesnay) ने एक बार कहा था—'गरीब किसान, गरीब राजा, गरीब देश'—यह कथन अन्य देशों के सम्बन्ध में भले ही सत्य न हो, किन्तु जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, यह कथन॰ सत्य प्रतीत होता है। जिस देश के कृषक स्वयं ही गरीब हों, वहाँ दूसरों के खेतों पर काम करके अपनी जीविका चलाने वाले कृषकों की क्या स्थिति हो सकती है इसका अनुमान लगाना सरल काम नहीं है। इन भूमिरहित कृषि श्रमिकों को दिन में दो बार भर पेट भोजन नहीं मिल पाता और न पहनने के लिए पर्याप्त वस्त्र ही मिलते हैं। सामाजिक सुविधायें क्या होती हैं, इनका उन्हें ज्ञान तक नहीं है। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था (Socialistic Pattern) के इस युग में इन श्रमिकों के रहने के लिए घर, दवाइयों की मुफ्त सहायता, न्यूनतम मजदूरी इत्यादि का महत्व औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों से किसी प्रकार भी कम नहीं होना चाहिए किन्तु बड़े दुःख की बात है कि हमारे देश के स्वतन्त्र होने तक इनकी दशा को सुधारने का प्रयत्न न तो ब्रिटिश सरकार ने ही किया और न अन्य समाज सुधारकों, राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं तथा खोज करने वाले व्यक्तियों ने ही इस ओर ध्यान दिया।

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक भारत की अर्थ व्यवस्था में 'मजदूर' शब्द का अर्थ सदैव सगठित उद्योगों में काम करने वाले श्रम-जीवियों से ही समझा जाता था।

भारत सरकार भी औद्योगिक श्रमिकों की समस्याओं पर विशेष ध्यान देती थी तथा कृषि श्रमिकों की समस्याओं की उपेक्षा की जाती थी। परिणामत देश में कृषि श्रमिकों की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई। कृषि सुधार समिति (Agrarian Reforms Committee) के अनुसार, "कृषि विकास की किसी भी योजना में भूमि रहित कृषकों की समस्या पर समुचित ध्यान न देना, देश की कृषि व्यवस्था की एक ददनाक समस्या की उपेक्षा करना होगा। आज जबकि देश में अन्न सकट है, देश का विभाजन हो जाने के कारण खाद्य पदार्थों की दृष्टि से भारत की स्थिति और भी खराब हो गई है तथा पटसन एव कपास जैसे आवश्यक औद्योगिक कच्चे माल का भी देश में टोटा है, तब हमें अपनी कृषि एव कृषि श्रमिकों की दशा में आमूल परिवर्तन करने होंगे। यदि हमने अपने कृषि व्यवसाय में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए और अपने भारतीय कृषक को पुराने ढग में अवैज्ञानिक खेती करने दी, तो न हम अपनी बढ़ती हुई जन सख्या का जीवन निर्वाह कर सकेंगे और न अपने धन्धो की उन्नति कर सकेंगे। आज जिस अवस्था में हमारा कृषि श्रमिक रहा है, उस अवस्था में रहकर वह कभी भी वैज्ञानिक कृषि के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। मानवीय नीति और आर्थिक हित दोनो ही दृष्टिकोणों से हमारे कृषि श्रमिकों की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है।

कृषि श्रमिकों की सख्या—

भारत में कृषि श्रमिकों की सख्या का अनुमान समय समय पर लगाया गया है। राष्ट्रीय योजना समिति (N. P C.) के विवरण में प्रोफेसर रगा ने भारत में कृषि श्रमिकों की सख्या १० करोड़ बताई थी। यह तत्कालीन जन-सख्या के आधार पर देश की कुल जन सख्या का २५% भाग थी। सन् १९५१ की जन गणना के अनुसार गाँव में रहने वाली २९ करोड़ ५० लाख जनता में से २४ करोड़ ९० लाख व्यक्ति केवल कृषि में लगे हुए थे। कृषि में लगे हुए इन व्यक्तियों का १८% भाग खेती करने वाले मजदूर एव उन पर आश्रित व्यक्तियों का था।

कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में कृषि श्रम जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट में कुछ विश्वसनीय आँकड़े प्रकाशित किए हैं। केन्द्रीय श्रम सचिवालय द्वारा कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में की गई जाँच तीन भागों में प्रकाशित की गई है। उनकी कुटुम्ब सम्बन्धी आर्थिक स्थिति तथा रोजगार आदि के विषय में जो जाच की गई है, वह नमूने के आधार पर ही की गई है क्योंकि समस्त देश के कृषि श्रमिकों की पूरी पूरी जाँच करना अत्यन्त कठिन है। नमूने की जाँच ८१२ गाँवों में रहने वाले केवल १ ०३,५४८ परिवारों की है। इन गाँवों में ७९ ०८% परिवार कृषि पर निर्भर है और ३०·४%

कृषि श्रमिकों के परिवार हैं। कृषि श्रमिकों के परिवारों का आधा भाग, अर्थात् १५·२% ऐसा है, जिनके पास स्वयं की कुछ कृषि योग्य भूमि है और शेष १५·२% परिवार भूमि रहित कृषि श्रमिक हैं। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमारे देश के गाँवों में रहने वाले परिवारों की संख्या लगभग ५८० लाख है, जिनमें से १७६ लाख परिवार कृषि श्रमिकों के हैं। देश में पाये जाने वाले कृषि श्रमिकों का देश की कृषक जनता से अनुपात भिन्न भिन्न क्षेत्रों में एकसा नहीं है। निम्नलिखित आँकड़ों से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है :—

ग्रामीण जन-संख्या में कृषि श्रमिकों का स्थान

राज्य	समस्त प्रतिशत	भूमि युक्त मजदूरों का प्रतिशत	भूमि हीन मजदूरों का प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	१४·३	५·७	८·६
आसाम	१०·७	६·७	४·०
बिहार	३९·९	२५·६	१४·३
उड़ीसा	४३.०	२३·८	१९·२
पश्चिमी बंगाल	२३·८	१०·५	१३·३
मद्रास	५३·०	२८·३	२४·७
केरल	३९·५	२०·८	१८·७
बम्बई	२०·४	९·६	१०·८
मध्य प्रदेश	४०·१	१४·९	२५·२
पंजाब	१०·१	१·६	८·५
सम्पूर्ण भारत	३०·४	१५·२	१५·२

कृषि श्रमिकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सर्व श्री वाडिया व मर्चेन्ट के अनुसार देश में भूमिहीन श्रमिकों की संख्या सन् १८८१ में केवल ७५ लाख थी। यही संख्या बढ़कर सन् १९२१ में २१५ लाख और सन् १९३१ में ३३० लाख हो गई।* सन् १९५१ की जन गणना के अनुसार कृषि श्रमिकों की संख्या ४८० लाख थी। कृषि श्रम जाँच समिति के अनुसार देश की सम्पूर्ण ग्रामीण जन-संख्या का ३०·४% भाग कृषि श्रमिकों का है। कृषि श्रमिकों की संख्या में इस निरन्तर वृद्धि के अनेक कारण है, जैसे कृषि पर जन संख्या का अत्यधिक बोझ, औद्योगिक विकास की धीमी गति, कुटीर-उद्योगों की अवनति, ग्रामीण ऋण ग्रस्तता, कृषि श्रमिकों में गतिशीलता का अभाव, इत्यादि।

* देखिये Our Economic Problems by Wadia and Merchant, Page 365.

कृषि श्रमिकों के भेद—

कृषि मजदूरों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(१) खेतों पर काम करने वाले जैसे—हल चलाने वाले, सिंचाई करने वाले, निराई एवं खेत खोदने वाले, फसल काटने वाले इत्यादि। (२) साधारण मजदूर, जैसे—कुँआ खोदने वाले खेत के आस पास पत्थर या मिट्टी की बाढ़ लगाने वाले पत्थर खोदने एवं ढोने वाले इत्यादि। (३) निपुण मजदूर जैसे—सुनार राज लुहार, इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं कि जिनके पास अपनी स्वयं की भूमि कम होती है और वे उस भूमि पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रह सकते अतः अपने जीवन निर्वाह के लिए दूसरे किसानों के खेतों पर कभी कभी मिलने वाले छोटे मोटे काम करने के लिये जाना पड़ता है। पिछले वर्षों में यह देखा गया है कि कृषि श्रमिकों की संख्या में प्रति वर्ष बड़ी तेजी से वृद्धि होती जा रही है जो हमारे देश की एक महान् बेकारी की समस्या को और भी जटिल बनाने में सहायक हो रही है।

कृषि श्रमिक जांच समिति के अनुसार देश के कुल कृषि श्रमिकों में ८५% आकस्मिक तथा १५% आसजित श्रमिक (Attached labourers) थे। कृषि श्रमिकों में से कुछ के पास थोड़ी भूमि होती है तथा कुछ के पास बिल्कुल भूमि नहीं होती। जिनके पास बिलकुल भूमि नहीं होती उन्हें भूमिरहित श्रमिक (Landless Labourer) कहते हैं। कृषि श्रम जांच समिति की खोज के अनुसार भारत के कुल ग्रामीण परिवार का ३०.४% भाग कृषि श्रमिकों का था जिनमें १५.२% के पास कुछ भूमि थी तथा १५.२% भूमिहीन श्रमिक थे।

भारतीय कृषि-श्रमिकों की समस्याएँ

भारतीय कृषि श्रमिकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं —

(१) मजदूरी की दरें एवं उसे चुकाने की विधियां—हमारे कृषि श्रमिकों को इतनी कम मजदूरी मिलती है कि वे न तो भर पेट भोजन ही कर पाते हैं और न पर्याप्त वस्त्र ही धारण कर सकते हैं। कृषि श्रमिकों को मजदूरी न केवल नकद वरन् अनाज कपड़ा तथा अन्य सुविधाओं के रूप में भी चुकाने की प्रथा हमारे देश में प्रचलित है। विभिन्न स्थानों में इन प्रथाओं की विभिन्नता के कारण मजदूरी को नकद रुपयों में आंकना अत्यन्त कठिन है। कृषि श्रमिक जाँच समिति के अनुसार सन् १९५०-५१ में प्रति कृषि श्रमिक परिवार की औसत वार्षिक आय ४८७ रु० तथा औसत प्रति-व्यक्ति वार्षिक आय केवल १०४ रुपये थी, जबकि उसी वर्ष एक औसत भारतीय की वार्षिक आय २६३ रु० थी। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि हमारे देश के

कृषि-श्रमिकों की मजदूरी कितनी कम है। नीचे दी हुई तालिका में कृषि तथा औद्योगिक श्रमिकों की प्रति व्यक्ति औसत आय का तुलनात्मक ढंग से अनुमान लगाया जा सकता है—

प्रति-व्यक्ति वार्षिक आय

(रुपयों में)

राज्य	कृषि-श्रमिक	औद्योगिक श्रमिक	कृषि श्रमिक का आय औद्योगिक श्रमिकों के प्रतिशत में
पश्चिमी बंगाल	१६०	२६८	५६
बिहार	११६	३३२	३६
मध्यप्रदेश	८७	२६२	३३
उड़ीसा	७६	१४५	५४
पंजाब	१२१	२१६	५६
बम्बई	८८	३६८	२४

(२) **काम के घंटे**—काम के घंटे भिन्न भिन्न स्थान, ऋतु तथा फसलों के लिये एक से नहीं है। इन लोगों के काम के घण्टे औद्योगिक श्रमिकों की भांति निश्चित नहीं। साधारणतः मजदूर सूर्य उगने पर खेतों पर जाते है और केवल दोपहर के समय रोटी खाने और थोड़ा आराम करने के एक दो घण्टे को छोड़कर संध्या होने तक काम करते रहते है। कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि जिन खेतों में अधिक काम रहता है उन दिनों काम के घण्टे और भी अधिक बढ़ जाते है।

(३) **कृषि श्रमिकों की मौसमी बेकारी**—कृषि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति कमजोर बनाने में उनका वर्ष भर लगातार काम न मिलना भी एक कारण है। केवल खेती के दिनों में, जब मजदूरों की मांग अधिक रहती है, अधिक लोगों को मजदूरी मिल जाती है, किन्तु वह भी लगातार नहीं, बीच बीच में छोड़कर। यदि वर्ष भर के बेकारी के दिनों को जोड़ा जाय, तो कदाचित ६० से १८० दिन हो सकते है। इन दिनों ये लोग या तो फालतू बैठे रहते है अथवा काम की तलाश में दर दर ठोकरें खाते है।

(४) **कृषि श्रमिकों के मकान की दशा**—क्योंकि कृषि मजदूरों की स्वयं भूमि नहीं होती, अतः विरले ही ऐसे है, जिनके पास कुछ भूमि का टुकड़ा हो जिस पर वे अपना मकान बना सकें, अतः उन्हें या तो भूमिपतियों की या गाँव की संस्थाओं के स्वामित्व की भूमि पर उनकी स्वीकृति लेकर मकान या झोपड़ियां बना कर रहना

पड़ता है। वे रहने की झोपड़िया बहुत ही छोटी होती है। डा० आर० के० मुकर्जी ने भी इनके रहने के स्थानों के सम्बन्ध में लिखा है कि ये झोपड़ियाँ केवल ऐसे स्थान में है जहाँ कि मजदूर केवल अपनी टांगे लम्बी करके रात को सो सकता है और अनेक उदाहरण ऐसे है जहा एक ही झोपड़ी में अनेक व्यक्तियों के सोने से आपस में पर्दा न होने के कारण मर्यादा भी समाप्त हो जाती है। ठण्ड के मौसम में एक ही कमरे में स्त्री और पुरुष युवक एवं वृद्ध और कभी-कभी जानवर तथा बकरे साथ साथ ठुसे रहते है। इन मकानों में शुद्ध हवा तथा प्रकाश आने के लिये खिड़कियों का पता नहीं दीवारें तथा आंगन सीलन के कारण गीले व्यक्ति बुखार से पीड़ित और बच्चों की तन्दुरुस्ती इतनी खराब रहती है कि मृत्यु का डर बना ही रहता है। घर के आस पास गन्दगी के कारण मच्छरों इत्यादि का जोर भी कम नही रहता।

(५) कृषि श्रमिकों की दासता—हमारे देश के कुछ भागों में कृषि श्रमिकों की स्थिति उनकी अत्यधिक गरीबी के कारण दासों जैसी हो गई है। दास व प्रथा उन स्थानों में अधिक पाई जाती है जहा निम्न एवं दलित वर्ग के लोगों की अधिकता हो। बम्बई राज्य में दुबला तथा कुला कहलाने वाले ऐसे लोग है जिनमें से अनेक परिवार कई पीढ़ियों से अपने स्वामी के यहाँ दासों की तरह नीरस जीवन व्यतीत कर रहे है। इनको खाने के लिए भोजन व पहिनने के लिए वस्त्र मालिकों की ओर से मिलता है। मद्रास राज्य के दक्षिणी पश्चिमी भाग के इरुहावास चिरमस पुलेया तथा होलिया इत्यादि का स्थिति भी दासों के समान है।

(६) कृषि श्रमिकों की ऋण ग्रस्तता—श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी तथा लगातार काम न मिलने के कारण इन्हें अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए ऋण लेना पड़ता है जिससे ये सदैव के लिए महाजन के चंगुल में फंस जाते है। कृषि-श्रमिक अधिकांशत अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को गिरवी रखकर ही ऋण प्राप्त करते है कृषि श्रम जाच समिति की खोज के अनुसार कुल १७६ लाख कृषि-श्रमिक परिवारों में से ७८ लाख परिवार ऋण के बोझ से ग्रसित थे। औसत ऋण की मात्रा प्रति परिवार १०५ रु० थी। अत यह कहा जा सकता है कि सन् १९५०-५१ में कृषि श्रमिकों पर ८० करोड रुपये के लगभग ऋण था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कृषि जाच समिति के इस अनुमान से हमारे कृषि श्रमिकों की वास्तविक स्थिति का पता नहीं लग सकता क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि शायद ही कोई ऐसा कृषि श्रमिक परिवार होगा जो ऋण के बोझ से मुक्त हो।

बढ़ते हुए मूल्यों की समस्या—

मूल्यों की वर्तमान वृद्धि का भी हमारे कृषि श्रमिकों की दशा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। मूल्य के अनुपात में मजदूरी न बढ़ने के कारण इनकी आर्थिक

कठिनाई और भी भयकर हो गई है। इनमें सगठन का भी बडा अभाव है, अत किसी प्रकार की सुविधा प्राप्त करने म भी इनको बडी कठिनाई होती है। बीमारी, बुढापे तथा अन्य परिस्थितियो से इन्ह बचाने के लिए सामाजिक सुरक्षा की भी कोई व्यवस्था नहीं है। इस वग की समस्या को सुलझाये बिना भारत की ग्रामीण व्यवस्था की नीव सुदृढ नही हो सकती।

कृषि-श्रमिकों की हीनावस्था के कारण

भारतीय कृषि श्रमिकों की हीन दशा क प्रमुख कारण निम्नलिखित है —

(१) जन सख्या की वृद्धि एव भूमि का उप विभाजन—हमारे देश म जन-सख्या बडी तीव्रगति म बढ रहा है और इसक परिणाम स्वरूप कृषको की भू सम्पत्ति का उप विभाजन भी बढता जा रहा है। जात छोटी छोटी होन के कारण अनार्थिक होती जा रही हैं। छोटे आकार के खतो म कृषि काय भी अलाभकर हो जाता है। फलत कृषक, का निर्वाह कवल अपना भूमि म ही नही हो पाता और उन्ह विवश होकर कम मजदूरी पर काम करना पडता है।

(२) कुटीर उद्योगो की अवनति—भारत म अग्रजी राज्य क प्रारम्भ स हमारे कुटीर उद्योगो का विनाश होन लगा। कुटीर तथा कृषि के अन्य सहायक उद्योग-धन्धो के पतन के कारण अनेक कारीगर बेकार हो गये तथा उन्ह विवश होकर केवल कृषि काय करना पडा। अत कृषि श्रमिको की सख्या में वृद्धि हो गई, जिसमें इन्हे कम मजदूरी पर काम करन के लिए विवश होना पडा।

(३) ऋण का भार—जैसा कि हम पीछे सकत कर चुके हैं, हमारे देश मे कृषि श्रमिको की आमदनी इतनी कम है कि उन्ह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि क लिए ऋण लना पडता है। वे ऋण में जन्मते, ऋण मे पलते एव ऋणग्रस्त ही मर जाते हैं। कम मजदूरी क कारण व समय पर अपन ऋणो का नही चुका पाते एव विवश होकर अन्त में उन्ह अपनी सम्पत्ति बेचनी पडती है। कभी कभी ता ऋण लेन के लिए इन्ह अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को भी गिरवी रखना पडता है जिसमे वे महाजनों के दास की तरह हो जाते है। इस प्रकार कज क बोझ से भी ऋणग्रस्त मजदूरो की आर्थिक बेकारी बढती जा रही है।

(४) साल भर काम का न मिलना—हमारे देश में कृषि श्रमिको को कम मजदूरी पर भी साल भर काम नही मिल पाता। वे वष के अधिकांश भाग में बेकार ही रहते है। कृषि श्रम जाँच समिति की खोज के अनुसार कृषि-श्रमिको को वर्ष में औसत १८९ दिन कृषि काय में तथा २९ दिन गैर कृषि कार्यों म काम मिलता है। दश के कुछ भागो में तो हमारे खेतिहर मजदूर ६-७ महीने तक बेकार ही रहत है। कृषि श्रमिको का बेकारी का यह समय अत्यन्त दुखदायी हाता है। इस अवधि में उनके पास पेट पालन का कोई साधन होता ही नहीं, अत भोजन, वस्त्र, आदि के लिये उन्ह ऋण लेना पडता है। अतएव निरन्तर काम न मिलने के कारण भी भारतीय कृषि श्रमिको की आर्थिक दशा बडी हीन होती जा रही है।

(५) मजदूरी चुकाने की दोषपूर्ण पद्धति—कृषि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी की प्रणाली भी अत्यन्त दूषित है। देश के कुछ भागों में तो उन्हें नकद रुपयों में मजदूरी दी जाती है कुछ भागों में अन्न वस्त्र प्राप्ति के रूप में और कहीं कहीं दोनों के रूप में। आजकल मजदूरी अधिकांशतः नगद रुपयों के रूप में ही दी जाती है। इससे श्रमिकों को सचमुच घाटा ही होता है क्योंकि विभिन्न वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने के कारण मजदूरी में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हुई है। अतः उनकी वास्तविक मजदूरी बहुत कम है। कम मजदूरी भी उनकी हीन दशा का एक महत्वपूर्ण कारण है।

(६) दोषपूर्ण रयती कानून तथा जमींदारी प्रथा—हमारा वर्तमान रयती कानून (Tenancy Legislation) भी कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि के लिये उत्तरदायी है। यह श्रमिक अन्य लोगों की भूमि पर कार्य करते हैं और स्वयं केवल अपनी मजदूरी पाने के लिये ही अधिकारी होते हैं। भूमि का स्वामी बहुधा कृषि कार्य से बहुत दूर रहता है किन्तु फिर भी वह सम्पूर्ण उपज का अधिकारी होता है। इसी प्रकार जमींदारी प्रथा भी कृषि श्रमिकों की दयनीय स्थिति के लिये काफी सीमा तक उत्तरदायी है। *अनेक जमींदार गांवों में न रहकर नगरों में रहते हैं* और उनकी अनुपस्थिति में जमींदारी की व्यवस्था उनके कारिन्दों द्वारा की जाती है। ये लोग कृषकों को तरह तरह से शोषण करते हैं। जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत अनेक कृषक भूमि से बेदखल कर दिये गये और उन्हें बाध्य होकर कृषि श्रमिकों की श्रेणी में आना पड़ा।

(७) कृषि श्रमिकों में संगठन का अभाव—भारतीय कृषि श्रमिकों में संगठन की भी बहुत बड़ी कमी है। विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रयास के फलस्वरूप देश के औद्योगिक श्रमिक दिन प्रतिदिन संगठित होते जा रहे हैं और शक्तिशाली संगठन के परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में भी संतोषजनक सुधार हुआ है। परन्तु कृषि श्रमिकों में अभी तक संगठन का बहुत अभाव है। यही कारण है कि स्वतन्त्र राष्ट्र होते हुए भी इनकी दशा अधिक उन्नत नहीं हो सकी है।

(८) सरकार व समाज की उदासीनता—कृषि श्रमिकों के प्रति भारत सरकार एवं जन समाज भी प्रारम्भ से ही उदासीन रहे हैं। ब्रिटिश शासन काल में इनकी दशा को सुधारने के लिये कभी भी सक्रिय कदम नहीं उठाया गया। हाँ जब से हमें स्वतन्त्रता मिली है तब से कृषि श्रमिकों की समस्याओं को हल करने के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं परन्तु फिर भी इस दिशा में अभी कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हो सका है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि जन संख्या की वृद्धि, कुटीर उद्योगों का ह्रास, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, निरन्तर काम न मिलना, संगठन का अभाव एवं जनता

व सरकार की उदासीनता के कारण भारतीय कृषि श्रमिको की दशा बडी दयनीय है। इनका जीवन बडी निराशा में बीतता है। भूख नगे पैदा होकर, भूख नगे तथा आश्रयहीन मर जाने तक ही उनके जीवन का सारा इतिहास सीमित है। अत आज देश की सबसे बडी माग है कृषि श्रमिको की दशा को उन्नत करना।

कृषि-श्रमिको की दशा को सुधारने के उपाय

कृषि श्रमिको की समस्या का वास्तविक समाधान उस समय सभव होगा जबकि हमारी कृषि का नए सिरे से पुनरुत्थान हो और भूमि पर से जन सख्या का भार कम करके अन्य सहायक व्यवसायो का विकास हो। भारत सरकार इस समस्या को सुलझाने के लिए निम्न प्रयत्न कर रही है—

(१) **जमींदारी उन्मूलन तथा शोषण का अन्त**—स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद हमारी राष्टीय सरकार का ध्यान भूमि व्यवस्था की ओर गया और विभिन्न राज्यों में जमीदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार कानून पास किये गए जिनका मुख्य उद्देश्य शोषण को समाप्त करके किसानों की आर्थिक दशा म सुधार करना था।

(२) **न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण**—सन् १९४८ में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पास किया गया और राज्य सरकारो को यह भार सौंपा गया कि कृषि श्रमिको के लिये न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित कर। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सन् १९४९ में एक अखिल भारतीय जाच समिति स्थापित की गई जिसमे समस्त देश के ८१३ गाँवो म आकडे प्राप्त किए गए। इस जाच के फलस्वरूप प्रथम पच वर्षीय योजना के काल म पजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश तथा अन्य राज्यो में न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित कर दी गई है और शेष राज्य इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने जा रहे है।

(३) **कृषि योग्य बजर भूमि का सुधार**—केन्द्रीय ट्रैक्टर सस्था द्वारा कृषि योग्य बजर भूमि का सुधार किया जा रहा है और यह भूमिहीन कृषिको को सहकारिता के आधार पर दी जा रही है। पच वर्षीय योजना में १५ लाख एकड भूमि को कृषि योग्य बनाने तथा २० लाख एकड भूमि को सुधारने का अनुमान है। इससे भूमिहीन कृषको की समस्या बहुत कुछ हल हो जायगी।

(४) **व्यक्तिगत जोत की उच्चतम सीमा निर्धारित करना**—सरकार एक उच्चतम सीमा निर्धारित करने जा रही है जिससे अधिक भूमि किसी व्यक्ति के पास नही रह सकेगी। जिन लोगो के पास अधिक भूमि है वह उनसे प्राप्त करके भूमिहीन किसानो म बाट दी जायगी।

(५) **भूदान यज्ञ**—आचार्य विनोबा भावे द्वारा प्रतिपादित भूदान यज्ञ म भूमि

दान के रूप मे प्राप्त का जाती है और उसे भूमिहीन कृषको के रूप मे सहकारिता के आधार पर विनरित किया जाता है।

(६) सहकारी ग्राम प्रबन्ध—योजना आयोग का मत है कि गाँव की समस्त भूमि को एक साथ एकत्र करके सहकारिता के आधार पर खेती कराई जाय और इसका प्रबन्ध ग्रामवासियो की एक समिति द्वारा हो। ऐसा हो जाने से भूमिहीन कृषकों की समस्या स्वय हल हो जायेगी और समस्त ग्राम वासियो के सामूहिक परिश्रम के फल मे ये लोग भी भागीदार बन जायेंगे। इस प्रकार उत्पादन में वृद्धि होगी और किसी न किसी रूप मे सबको रोजगार मिल सकेगा।

(७) राजकीय बोर्डों की स्थापना—योजना कमीशन ने इस बात की सिफारिश की है कि राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर सरकारी व्यक्तियो के बोर्डों की स्थापना की जाय, जिनका उद्देश्य भूमिहीन किसानो को बसाने के सम्बन्ध मे परामर्श देना तथा समय समय पर काय की प्रगति की देख रेख करना भी हो।

(८) कृषि-श्रमिको का सगठन—जिस प्रकार उद्योगो म काम करने वाले श्रमजीवियो के श्रम सघ स्थापित हो गये हैं, उसी प्रकार कृषि श्रमिकों के भी सगठन स्थापित होने चाहिये। प्रत्येक गाँव म एक कृषि श्रम सघ की स्थापना हो और एक केन्द्रीय सस्था बनाई जाय जो इन श्रम सघो के काय का सचालन करे। इस योजना से कृषि श्रमिकों की अज्ञानता दूर होगी और उनमें चेतना तथा जागृति पैदा होगी। योजना आयोग ने सुझाव दिया है कि सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गाँव मे श्रमसहकारी समितियो की स्थापना होनी चाहिये, और प्रत्येक विकास खड मे सहकारी यूनियन होनी चाहिये, जो प्रत्येक गाँव की श्रम समितियो की देखभाल कर सके।

(६) ग्रामीण-उद्योगो का विकास—ग्रामीण उद्योगो के विकास से जन सख्या का भूमि पर अत्यधिक भार बहुत कुछ कम हो जायगा। किसानो को रोजगार मिलेगा और कृषि की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होगी। सावजनिक विकास कार्यों में इन लोगो को रोजगार देने का प्रयत्न किया जाता है जैसे—कुँये खोदना, सडकें बनाना, नहरें निकालना आदि। उत्तरप्रदेश की ग्राम्य औद्योगीकरण योजना के अन्तर्गत सन् १९५८ के मध्य तक राज्य की लगभग १६% जन सख्या शामिल हो गई है। इस योजना मे प्रशिक्षण व उत्पादन केन्द्र स्थापित किये गये है। यह योजना अब १३,८८४ गांवो में चल रही है, जिनकी जन सख्या ५९,८५,००० है।

उपसहार—

भूमिहीन कृषको की दशा को सुधारने के लिये तथा उनके पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करने के लिये उपरोक्त उपायो के अलावा कुछ अन्य सुझाव भी दिये जा सकते

है। सिचाई का सुविधाएँ तथा कृषि कला म सुधार किया जाय जिसस कृषि-आय म वृद्धि हो। दूसर गाव में रोजगार के दफ्तरो की स्थापना की जाय। इसका तापय यह है कि जिस प्रकार रोजगार के दफ्तर बेकार लोगो को काम दिलान का काम करते है उसी प्रकार ग्रामीण श्रम एक्सचेंज भूमिहीन कृषको की सहायता कर सकते है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यातायात के सस्ते साधनो का विकास होना भी जरूरी है।

भूदान आन्दोलन

(Bhoodan Movement)

भूदान आन्दोलन से आशय—

गत कुछ वर्षो से भारतीय कृषि के इतिहास म हम जिस नई घटना को देख रहे है वह है भूदान आन्दोलन जिसके प्रणेता है सत विनोबाभावे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब हैदराबाद क तेलगाना क्षेत्र म आर्थिक विषमता का दूर करन के लिए कुछ साम्यवादियो न हिंसा की शरण ली ता उस खूनी क्रान्ति को अहिंसात्मक ढग से परिवर्तित करन क उद्देश्य से सन्त विनोबा न अपनी पदल यात्रा प्रारम्भ कर दी। तेलगाना के नालकुण्डा क पोचमपल्ली गाव म प्राथना के समय विनोबाजी न भूमि हीन हरिजनो के लिए ८० एकड भूमि की माग की थी। एक उदार हृदय जमीदार न उसी समय १०० एकड भूमि अपनी इच्छा से हरिजनो को दे दी। तभी से सत विनोबा न यह निर्णय किया कि व पदल घूम घूम कर जमीदारो स स्वेच्छापूवक भूमि का कुछ भाग लकर भूमि हीन कृषको म वितरित करेंगे। भू दान यज्ञ के द्वारा सन्त विनोबा भावे यह प्रयत्न कर रहे है कि गावो म मनोवैज्ञानिक जागरण हो अर्थात् उन लोगो स भूमि लकर जिनके पास वह आवश्यकता स अधिक है उन लोगो को द दी जाय, जिनके पास वह बिल्कुल नही है। विनोबाजी के अनुसार भूमि जल एव वायु की भाति प्रकृतिदत्त पदार्थ है जिस पर किसी व्यक्ति विशेष का नहीं वरन् समाज का अधिकार है अत यह न्यायसगत प्रतीत नहा होता कि किंचित लोग ता भूमि का उपयोग करें और लाखो करोडो लोगो को वे भूमि के लाभ स वचित कर द।

हमार देश म लगभग ५ करोड व्यक्ति भूमि हीन कृषक है जो भूमि के अभाव म अत्यन्त निम्न जीवन व्यतीत कर रहे है। कृषि हमार देश का प्रमुख व्यवसाय है जिसम लगभग ६७% व्यक्ति लगे हुए है अत यदि उद्योग म ही हम भूमि का समान वितरण कर देते है ता स्वत ही आर्थिक विषमता दूर हो सकती है। सत विनोबा भावे न अहिंसा का शस्त्र लकर इस काय के करन का बीडा उठाया है। वे पदल यात्रा करके गाँव गाव एव घर घर घूमत है तथा अपन पवित्र एव हृदयस्पर्शी प्रवचनो के द्वारा लोगो का हृदय परिवर्तन करते है। इनके इस आन्दोलन की सफलता को देख

कर देश के अनेक नेता एवं समाज-सेवक भी इसमें शामिल हो गये हैं। इस आन्दोलन की उपयोगिता इसी बात से स्पष्ट है कि हमारे प्रधान मन्त्री नेहरू एवं भारत सरकार के अन्य सभी मन्त्री गण तथा कांग्रेस के कार्यकर्त्ता गण इसके प्रति सहानुभूति रखते है। यही नही, अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन मे भू दान आन्दोलन की सफलता के लिए एक प्रस्ताव पास किया गया तथा देश के सभी राज्यों मे भू दान अधिनियम बनाये गए हैं। द्वितीय पंच वर्षीय योजना मे भी इसे पर्याप्त स्थान दिया गया है।

आन्दोलन का क्षेत्र—

आजकल यह आन्दोलन केवल भूमि के दान तक ही सीमित नही है, परन्तु 'सम्पत्ति दान' एवं 'ग्राम दान' भी साथ साथ पनप रहे हैं। सम्पत्ति दान का उद्देश्य यह है कि भूमि-हीन कृषकों को जमीन के साथ साथ इतनी सम्पत्ति भी मिले, जिससे कि वे हल, बैल, बीज इत्यादि खरीद सकें। ग्राम दान आन्दोलन इसलिए है, जिससे कि सर्वोदय के सिद्धान्तो पर गाँव की समस्त भूमि का पुन. वितरण करके ग्रामीण कृषि का पुन. सगठन किया जा सके। यह बड़े सतोष का विषय है कि दुबला पतला सन्त बिनोबा १३,००० मील की पैदल यात्रा कर चुका है तथा कुल लगभग ५० लाख एकड़ भूमि प्राप्त हो चुकी है। भूमि के साथ समर्थ व्यक्ति सम्पत्ति का भी दान दे रहे हैं तथा अब तक १०० ग्राम सम्पूर्ण रूप से विनोबाजी को प्राप्त हो चुके है।

भू-दान यज्ञ की महिमा—

भू दान यज्ञ की प्रशसा करते हुए श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने अपने एक लेख में लिखा है कि इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप भूमि हीन कृषकों के पास छोटे-छोटे खेत हो जायेंगे। यद्यपि कुछ लोगो के विचार मे यह आलोचना का विषय है, परन्तु श्री अग्रवाल का मत है कि बडे बडे खेतो की अपेक्षा छोटे छोटे खेतों पर खेती करना अधिक लाभप्रद है। उन्होंने बताया है कि जापान मे प्राय २ ५ एकड के खेत है। आगे उन्होंने लिखा है कि चीन की नई सरकार बडे बडे खेतों को समाप्त करके छोटे-छोटे खेत बनाकर भूमि का पुन. वितरण कर रही है। यही नही, रूस मे भी कृषकों के पास ½ एकड से २½ एकड तक भूमि है। इन छोटे छोटे खेतो में तन, मन, धन से काम करके हमारे कृषक सुविधा से अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर सकते है, अत यह कहना कि भू दान आन्दोलन द्वारा खेतों के छोटा होने के कारण कृषि अलाभिक हो जायेगी, असत्य है। श्री अग्रवालजी ने यह भी लिखा है कि छोटे पैमाने पर की गई कृषि के स्तर को ऊँचा करने के लिए कृषकगण अपनी सहकारी समितियाँ बना सकते है तथा सामूहिक रूप मे बीज, खाद, सिंचाई व बिक्री आदि का प्रबन्ध कर सकते है। श्री नेहरूजी के शब्दो में—"इस आन्दोलन के द्वारा एक ऐसा अनुकूल मनोवैज्ञानिक वातावरण समाज मे उत्पन्न होता जा रहा है जिसने हमारी

भावी समस्याओं को बहुत कुछ सरल बना दिया है।" इस आन्दोलन के सम्बन्ध में श्री भगवानदास केला ने लिखा है—"यह पद्धति अहिंसक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके पीछे विकेन्द्रीयकरण और स्वावलम्बन की प्रेरणा है।" भू-दान यज्ञ के सम्बन्ध में श्री रामेश्वरदयाल ने लिखा है—"भारत की भूमि की यह विशेषता है कि यहाँ जब धर्म चक्र चल जाता है, तब जनता मन्त्रमुग्धसी सर्वस्व अर्पण कर देती है। साथ ही, हमें यह भी समझना चाहिए कि भू-दान आन्दोलन से उत्पन्न जन-शक्ति के प्रभाव से हमारी आर्थिक रचना सर्वोदय की दिशा में प्रगति करेगी। किसी के भी हाथ में अत्यधिक पूँजी का केन्द्रीयकरण न होगा, क्योंकि प्राथमिक आवश्यकताओं के विषय मे विकेन्द्रित स्वावलम्बी व्यवस्था होगी। शेष बड़े उद्योग जो केन्द्रित रूप मे चल रहे है, उनके राष्ट्रीयकरण के लिए, जिस वातावरण की आवश्यकता है, वह भू दान आन्दोलन में छिपा है। इसी से समाज की जाति, वर्ण, स्त्री-पुरुष आदि की असमानतायें दूर होंगी।"

भूदान-यज्ञ की आलोचना

कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि इस प्रकार भूमि का वितरण निर्धनता का वितरण है, क्योंकि जो भूमि कृषकों को दी जाती है वह प्राय. निकृष्ट होती है और इतनी अपर्याप्त है कि उस पर कृषि करना असम्भव हो जाता है। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक आलोचना की है कि इससे उप-विभाजन एव अप-खण्डन को प्रेरणा मिलती है एव इससे कृषि के प्राचीन एव पिछड़े हुए तरीकों को मान्यता दी जाती है, परन्तु यदि हम गम्भीरता से विचार करें, तो हम यह ज्ञात होता है कि ये किंचित आक्षेप आन्दोलन की महिमा को किसी प्रकार कम नहीं करते। वास्तव में भूमि का वितरण करते समय यह विचार रखा जाता है कि जोत अनार्थिक न हो। कुछ सीमा तक उप-विभाजन अवश्य होता है, परन्तु वितरण के बाद सहकारी कृषि द्वारा यह दोष भी दूर हो सकता है। सम्पत्ति-दान एव ग्राम दान से तो कोई समस्या ही पैदा नहीं होती।

भूदान-आन्दोलन की प्रगति—

द्वितीय योजना में यह स्वीकार किया गया है कि ग्राम दान वाले गाँवों के विकास के सम्बन्ध में प्राप्त व्यावहारिक सफलता सहकारी ग्राम विकास के लिए काफी महत्वपूर्ण रहेगी। 'अखिल भारत सर्व सेवा संघ' द्वारा सितम्बर सन् १९५७ में यलवाल (मैसूर राज्य) में आयोजित सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा ग्रामदान आन्दोलन के बीच निकटतम सम्बन्ध स्थापित किया जाये। सामुदायिक विकास मन्त्रालय के तत्सम्बन्धी कर्मचारियों ने इस पर विचार किया और मई सन् १९५८ में माउन्ट आबू में हुए विकास आयुक्त सम्मेलन में इस पर और अधिक विचार किये जाने के बाद भूदान और ग्रामदान के बीच

निकटतम सबध स्थापित करन का निर्णय किया गया। सामुदायिक विकास खन्ड स्थापित करन और सामुदायिक विकास के अन्य नये काय आरम्भ करन के सबन्ध में सबसे पहले ग्रामदान वाले गाँवो म काय आरम्भ किया जायेगा। भूदान क लिये भूमि दान दिये जान तथा उसके वितरण को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से आन्ध्र प्रदेश, उडीसा, उत्तरप्रदेश पजाब, बम्बइ (सौराष्ट्र) बिहार, मद्रास, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली तथा हिमाचल प्रदश में आवश्यक कानून बनाये जा चुके हैं। बम्बई म प्रशासन सबन्धी आदेश जारी किये जा चुक है।

सन १९५५ ५६ मे विभिन्न राज्य सरकारो न इस आन्दोलन की सफलता के हेतु जो वित्तीय सहायता प्रदान की है, उसका ब्यौरा इस प्रकार है —

भूदान को वित्तीय सहायता (हजार रुपयो में)

राज्य अथवा केन्द्र शासित क्षेत्र	१९५५ ५६	१९५६ ५७	१९५७ ५८	१९५८ ५९	१९५९-६०
(१) आन्ध्र प्रदेश	—	—	३ ०	२ ०	०'८
(२) बिहार	३३ ०	१००'०	१८६'०	१५०'०	५० ०
(३) बम्बई					
(अ) विधव	†	†	२० ०	*	*
(ब) सौराष्ट्र	२५ ३	२५ ३	१६ ९	४५'०	४८'०
(४) केरल					
(५) मध्यप्रदश	—	—	६ ६	२८'०	—
(अ) मध्यप्रदश	५० ०	५०'०	३० ०	१५'०	
(ब) मध्यभारत	१५'०	३०'०	२०'०	१०'०	६० ०
(स) भापाल	—	—	—	२ ५	
(द) विन्ध्यप्रदेश	—	—	५ ०	३ ७	
(६) मद्रास	—	—	—	१'०	१३ ८
(७) उडीसा	३५ ४	३'६	३३५ ०	२०'०	३३५'२
(८) पजाब	—	—	५ ०	५'०	
(९) राजस्थान	१०'०	२५'०	३०'०	५'०	—
(१०) उत्तर प्रदश	—	—	—	५० ०	५०'०
(११) हिमाचल प्रदश	—	—	५ ०	—	—

भारत सरकार द्वारा सन् १९५६ ५७ म ११ ९२ लाख रुपये और सन् १९५७-५८ म १० लाख रुपय भूदान आन्दोलन की वित्तीय सहायता क लिए स्वीकार किए गए। सन् १९५७ ५८ म बिहार राज्य म एक नई योजना स्वीकार की गई जिसक अतगत भूदान स सबन्धित भूमि रहित श्रमिकों को बसाया गया। यह काय सहकारिता के आधार पर किया गया एवं इस पर कुल २½ लाख रुपया खच हुआ। एक दूसरी योजना, *जिसके अन्तगत भूमिरहित कृषि परिवारो को वित्तीय सहायता की व्यवस्था की गई, भी*

† पूर्व मध्यप्रदश में सम्मिलित
* कुल बम्बइ राज्य के लिए

कार्यान्वित हुई। इस पर कुल ३० लाख रुपया खर्च किए गए और यह योजना भी बिहार के भूदान से सबन्धित क्षेत्रो मे लागू की गई। सामुदायिक विकास एव सहकारिता मत्रालय (Ministry of Community Development and Co operation) द्वारा सामुदायिक विकास क्षेत्रो में भूदान सबन्धी साहित्य वितरित किया गया। इस कार्य में सन् १९५८ ५९ में १·८२ लाख रुपये खर्च हुए और सन् १९५९ ६० मे २·६५ लाख रुपये खर्च होने का अनुमान है। ग्रामदान एव ग्राम सकल्प गाँवो में ग्रामीण एव लघु उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए उक्त मन्त्रालय ने सन् १९५९ ६० म क्रमश. १ ६६ व २·१ लाख रुपया देना स्वीकार किया है। ग्राम दान से सम्बन्धित गाँवो मे विकास कार्य के हेतु ऋण देने की योजना अनेक राज्यो ने स्वीकार कर ली है जिनमें से प्रमुख ये हैं.—आन्ध्रप्रदेश, आसाम, बम्बई, केरल और मद्रास।

३० नवम्बर १९५९ तक राज्य वार भूमि एव ग्रामो का दान इस प्रकार था —

भूदान एवं ग्राम-दान

राज्य अथवा क्षेत्र	भूदान का क्षेत्र फल (एकड मे)	वितरित भूमि का क्षेत्रफल (एकड में)	ग्रामदान (सख्या)
(१) आन्ध्र प्रदेश	२,४',९५०	९५,२७८	४८१
(२) आसाम	२३,१९६	२२५	१२७
(३) बिहार	२१,२२,९१०	२,४२,२५३	१५३
(४) बम्बई			
(i) गुजरात	४७,४८६	११,५२७	६३
(ii) सौराष्ट्र	३१,२३७	८,१८५	२
(iii) विन्ध्य प्रदेश	८६,७७८	४५ ०००	—
(५) देहली	३९६	१५७	—
(६) हिमाचल प्रदेश	१,५६८	२१	—
(७) केरल	२९,०२१	२,१७६	५४३
(८) मध्य प्रदेश :			
-(i) मध्य भारत	२,७४,६५७	३३,९२४	७४
(ii) महाकोशल	१,१८,३५३	५५२	
(iii) विन्ध्य प्रदश	११,१९५	३,६७०	
(९) मैसूर	१९,९८९	२,६६४	६६
(१०) पजाब	१९,९२९	५,६५३	२
(११) राजस्थान	४,२८,१७३	८१,१०१	२३४
(१२) तामिलनाड (Tamilnad)	७०,८०३	२,३४९	२५४
(१३) उत्तर प्रदेश	४,११,४८४	१,२७,८३५	५९
(१४) उत्कल (Utkal)	३,९३,४६६	१,१८,३३५	१,९४६
(१५) वैस्ट बगाल (West Bengal)	१२,६८१	३,६७३	२६
योग	४४,०९,६३६	८,४०,९०९	४,५६५

STANDARD QUESTIONS

1 Carefully describe the Economic condition of Agricultural Labourers in India. How would you improve your lot ?

2. Discuss the present condition of land-less Agricultural Labourers in India. How far Bhoodan can solve their problems ?

3 Discuss the various factors responsible for the bad Economic condition of Indian Agricultural Labour. Suggest suitable remedies for its improvement.

4. What do you understand by the term 'Bhoodan Yagya' ? How far has it solved the problem of landless labour in India ?

5 Write a critical essay on 'Bhoodan Movement.'

अध्याय ६

सामुदायिक विकास योजनाएँ

(Community Development Projects)

प्रारम्भिक—

हमारा देश 'गाँवों का देश' है, जिसकी ८२·७% जन सख्या ५½ लाख गावो में निवास करती है। अत्यन्त प्राचीन काल से भारत के समस्त राष्ट्रीय जीवन की इकाई इसके गाँवों में ही केन्द्रित रही। परन्तु यह दुर्भाग्य का विषय है कि आज हमारे गाँवो की दशा अत्यन्त शोचनीय है। वे अपने अतीत का गौरव खो चुके हैं। अंग्रेजो ने इनकी समृद्धि का अपहरण किया। यही कारण है कि हमारे गाँव शोषितो, अशिक्षितो, दरिद्रो आदि के श्मशान मानव-जीवन से समस्त दोष यहाँ विद्यमान हैं। समाज के शिक्षित एव साहसी व्यक्ति गावों में रहना नही चाहते। यदि हम भारत के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाना चाहते हैं तो सबसे पहले भारतीय गावों की दशा को सुधारना होगा। भारत के आर्थिक विकास के लिए यहाँ के ५½ लाख गाँवो के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना अनिवार्य है। हमको गाँवो के सभी अगो का विकास करना चाहिये। स्फुट प्रयत्नो से इनका विकास नहीं हो सकता। हम एक ही साथ गावा का आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पुनर्निर्माण करना है। इसके लिय कृषि की उन्नति, मनोरजन के साधनो की व्यवस्था, शिक्षा, सफाई तथा चिकित्सा का प्रबन्ध पारस्परिक द्वेष, सघर्ष तथा मुकदमेबाजी का अन्त, बेकारी, ऋणग्रस्तता तथा पशुधन की समस्या का समाधान, यातायात एव सदेशवाहन के साधनो का विकास, ग्रामीणों में नई आशा का सचार आदि अनेक कार्यों की आवश्यकता है।

ब्रिटिश शासन काल में भारतीय गावो के विकास के लिए सरकार द्वारा प्राय. कोई प्रयत्न नही किया गया। ग्रामीण उन्नति के प्रति विदेशी शासन की नीति सदैव उपेक्षापूर्ण रही। हाँ, देश-प्रेमी कुछ समाज सुधारको ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किये हैं। महात्मा गाधी ने राष्ट्रीय सग्राम के साथ-साथ ग्रामीण विकास को भी अपना परम कर्त्तव्य समझा तथा ग्रामीण जीवन के उत्थान के लिए उनके नेतृत्व

में अखिल भारतीय चरखा संघ तथा अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ ने ग्रामीण भारत में एक नई जान फूंक दी। इसी प्रकार स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस दिशा मे प्रशसनीय काय किया है। सन् १६३५ के वैधानिक सशोधन के पश्चात् भारत सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और तब से केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को इस काय के लिए एक करोड़ रुपया अनुदान के रूप मे देना स्वीकार किया। सन् १६३७ मे देश के विभिन्न प्रान्तों मे काग्रसी सरकारों की स्थापना के बाद ग्राम सुधार का काय तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक प्रा त मे ग्राम सुधार के हेतु एक अलग विभाग खोला गया और ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये योजनायें कार्यान्वित का गई। परन्तु इन प्रयत्नों की सबसे बड़ी दुबलता यह थी कि सरकार के विभिन्न विभागों के प्रतिनिधि अपन विभागीय उद्देश्यों को लेकर पृथक पृथक रूप से ग्रामीणा के पास पहुँचते थ जिससे ग्रामीण किंकर्त्तव्य विमूढ हो जाता था और इसके सारे प्रयत्न निष्फल हो जात थे। सच बात तो यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए जो भी योजना बनाई जाय वह समबद्ध होनी चाहिए एव उसम ग्रामीण जीवन का कोई भी पहलू छूट न जाय। ग्रामीण विकास के लिय गाँवा के लोगों में उत्साह की भी बड़ी आवश्यकता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु हमारी जन प्रिय सरकार ने सामुदायिक विकास योजना (Community Development Project) बनाई है।

सामुदायिक विकास योजना का अर्थ—

सामुदायिक विकास योजना वास्तव में बहुमुखी आधार पर ग्रामीण विकास की एक विस्तृत योजना है। श्री सैंडरसन के अनुसार, "सामूहिक सगठन उन उद्देश्यों को प्राप्त करने जोकि सामूहिक कल्याण के लिये आवश्यक हैं तथा उनको प्राप्त करने के सर्वोत्तम उपाय दोनों को ही उपलब्ध करने की एक काय विधि है।"

भारत मे सामुदायिक विकास योजनाओं की आवश्यकता—

सामुदायिक विकास योजनाओं की हमारे देश के आर्थिक पुनर्गठन म विशेष आवश्यकता है। यदि हम ग्रामीण क्षेत्रों की सम्पन्नता चाहते है, तो उनका एकमात्र उपाय सामुदायिक योजनाय ही है। ऐसी योजनाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विस्तृत है, जिसम शिक्षा, स्वास्थ्य चिकित्सा, कृषि, उद्योग, सामाजिक कार्य आदि सभी सम्मिलित हैं। ग्रामवासियों का जीवन स्तर ऊँचा करने में भी ये योजनाएँ काफी सीमा तक *सहायक होंगी। यदि सच्चा सामाजिक सुधार करना है, ग्रामवासियों को आदर्श नागरिक* बनाना है तो गाँव को अच्छा, साफ और रहने योग्य बनाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त खाद्य समस्या का समुचित हल करने के लिए एव आर्थिक स्वावलम्बता प्राप्त करने के लिय भी सामुदायिक योजनाओं का विशेष महत्त्व है। ऐसी योजनाओं से

कृषकों में यह विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है कि वे अपने सामूहिक प्रयत्नों द्वारा अपनी दशा को स्वयं भी सुधार सकते हैं।

सामुदायिक विकास योजनाओं का उद्देश्य—

भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'सामुदायिक योजना की रूपरेखा' शीर्षक पुस्तक में इसका उद्देश्य इस प्रकार बताया गया है—"योजना के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र के पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों के जीवित रहने के अधिकार में, एक मार्ग-प्रदर्शक व्यवस्था के रूप में सेवायें प्रदान करना। "सामुदायिक विकास योजना का प्रमुख उद्देश्य क्षेत्र के मानव और भौतिक साधनों का पूर्णतः विकास करना है। श्री विलसन ने, जो भारत में टैकनीकल कोआॅपरेशन फॉर इण्डिया के सचालक हैं, बताया है कि सामुदायिक विकास योजना का उद्देश्य सभी दिशाओं में विकास करने के लिये, समाज के लिये भोजन, स्वास्थ्य तथा आवश्यक ज्ञान उत्पन्न करना है।

सामुदायिक विकास योजनाओं के प्रमुख अङ्ग—

(१) इन योजनाओं की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये ग्रामीण जीवन के बहुमुखी विकास के लिये प्रयत्नशील हैं। जैसा कि कृषि के शाही कमीशन ने कहा था—"कृषि सुधार की समस्या भारतीय ग्रामीण जीवन के सुधार की समस्या है और उसे सामूहिक रूप से ही हल करना होगा। ग्रामीण जीवन के सभी पहलू प्रायः परस्पर सम्बन्धित हैं अतः सर्वश्रेष्ठ विधि यही होगी कि ग्रामीण जीवन की समस्याओं पर एक ही समय मे और एक-दूसरे के साथ समुचित सहयोग से आक्रमण किया जाय।" सामुदायिक विकास योजना की भी यही कार्यशैली है।

(२) ये योजनाएँ किंचित चुने हुये क्षेत्रों तक ही सीमित हैं। ऐसा करने का यह आशय नही है कि शेष भागों की अपेक्षा कर दी जाये, वरन् उसका उद्देश्य यह है कि छोटे-छोटे क्षेत्रों में केन्द्रीभूत प्रयत्नों से अधिक सफलता मिलने की आशा है।

(३) ये योजनाएँ एकाकी बहु-उद्देशीय साधन की व्यवस्था करती है, जो सीधे किसानों के घर तक पहुँचाने वाला है। अभी तक सरकार के विभिन्न विभाग ग्रामीणों की विभिन्न समस्याओं को पृथक-पृथक हल करने में लगे थे। इसमें व्यय भी अधिक होता था एवं सफलता भी नही मिली, किन्तु सामुदायिक विकास योजना लोगों को स्वय अपने पैरों पर खड़ा होना सिखलाती है एवं उनकी सारी समस्याओं को एक साथ हल करने का प्रयत्न करती है।

(४) इन सामुदायिक विकास योजनाओं का सार अपनी सहायता करने के लिये जनता की सहायता करना है।

(५) इनकी सफलता के हेतु पर्याप्त आर्थिक तथा औद्योगिक व्यवस्था भी की गई है। पूर्व प्रयत्नों में इस बात की बड़ी कमी थी।

सामुदायिक योजनाओं का कार्य-क्षेत्र—

इन योजनाओं के अन्तर्गत विकास के निम्न कार्य किये जायगे —

(क) खेती तथा उससे सम्बन्धित अन्य कार्य—

(१) भूमि को उपजाऊ बनाना और सिंचाई के छोटे छोटे कार्य।

(२) अच्छे बीज खेती का सुव्यवस्थित ढंग तथा पशु चिकित्सा खेती के सुधरे हुये औजार चीजों का क्रय विक्रय ऋण की सुविधाएं पशु पालन तथा नस्ल सुधारने के केन्द्र भूमि तथा खाद का अनुसंधान।

(३) मीनाश्रय फलों और तरकारियों की खेती वन लगाने का विकास और भोजन का सुधार।

(ख) यातायात—

सड़कों का प्रबन्ध यातायात यन्त्र ट्रांसपोर्ट को उन्नत करना जहाँ पशुओं का यातायात तथा अन्य कार्यों के लिए उनका प्रयोग किया जाता है वहां उस कार्य की उन्नति करना।

(ग) शिक्षा—

निःशुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा हाईस्कूल मिडिल स्कूल सामाजिक शिक्षा और वाचनालयों का प्रबन्ध करना।

(घ) स्वास्थ्य—

सफाई और जन स्वास्थ्य की व्यवस्था रोगियों की चिकित्सा बच्चा होने में पहले और बाद की देख भाल तथा दाइयों की व्यवस्था करना।

(ङ) प्रशिक्षण—

(१) विद्यमान कारीगरों के स्तर को नवीन अध्ययन द्वारा ऊंचा करना।

(२) खेतिहरों विस्तार कार्य सहायकों निरीक्षकों कारीगरों प्रबन्धकों स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यकर्ताओं और अफसरों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना।

(च) व्यवस्था प्रबन्ध—

देहाती प्रदेशों में बेरोजगारी को दूर करने के लिए सहायता देना तथा अधिक से अधिक व्यवसाय दिलाने के लिए —

(१) छोटे तथा मध्यम स्तर के घरेलू उद्योगों का विकास करना।

(२) आयोजित वितरण व्यापार सहायक और कल्याण सेवाओं द्वारा व्यवसाय दिलाने का प्रबन्ध करना।

(छ) गृह निर्माण—

देहाती तथा नागरिक क्षेत्रों में मकानों के आधुनिक डिजाइन और नक्शे तयार करना।

(ज) लोक-कल्याण—

(१) स्थानीय कलाकारों की सुलभता और संस्कृति के अनुसार सामूहिक मनोरंजन की व्यवस्था करना, फिल्म द्वारा शिक्षा देना और मनोरंजन करना।

(२) स्थानीय तथा अन्य खेलों और मेलों का प्रबन्ध करना।

(३) सहकारी समितियों और पंचायतों द्वारा जनता के आर्थिक तथा नागरिक आंदोलन का संगठन करना।

योजना का संगठन—

इस कार्यक्रम का संपूर्ण उत्तरदायित्व सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्रालय पर है। आधारभूत नीति सबन्धी प्रश्न केन्द्रीय समिति के समुख रखे जाते हैं। इस समिति में योजना आयोग के सदस्य, खाद्य तथा कृषि मन्त्री और सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्री होते हैं। प्रधान मन्त्री इस समिति का अध्यक्ष होता है। विशेष समितियों द्वारा तत्संबंधी मन्त्रालयों के साथ समन्वय स्थापित किया जाता है।

इस कार्य को कार्यान्वित करने का दायित्व मुख्यतः राज्य सरकारों पर है। राज्य सरकार इस कार्यक्रम को राज्यीय विकास समितियों द्वारा कार्यान्वित करती है। इन समितियों में राज्यों के मुख्य मन्त्री, विकास मन्त्री तथा विकास आयुक्त होते हैं। मुख्य मन्त्री इनके अध्यक्ष तथा विकास आयुक्त इनके कार्यालय सचिव होते हैं। कार्यक्रम का कार्यपालक प्रधान विकास आयुक्त होता है। जिलों में इसको कार्यान्वित किये जाने का दायित्व कलक्टरों पर होता है। खण्डों में खण्ड विकास अधिकारी की सहायता के लिए कृषि, पशु पालन, कुटीर उद्योग तथा सहकारिता जैसे विषयों के विशेषज्ञ विस्तारी अधिकारी होते हैं। गावों में ग्राम सेवक बहुधन्धी विस्तार अभिकर्त्ता एजेन्ट के रूप में १० गावों का कार्य संभालता है।

विस्तार संगठन—

खंड तथा गावों में विस्तार संगठन दो कार्य करता है—(१) ग्रामीणों को व्यावहारिक शेष आदि की जानकारी कराता है और (२) सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय तथा अन्य प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराता है। ग्रामीणों की समस्याओं को यह संगठन विशेष अध्ययन आदि के लिये शोध संस्थाओं तक पहुँचाना है।

सामुदायिक संगठन—

आयोजन और कार्यान्वयन का दायित्व लोक संगठनों पर है। चुनी हुई पंचायतें आवश्यक आंकड़ों का संग्रह करती तथा महत्व के अनुसार क्रम से योजनाएं निर्धारित करती हैं। प्राथमिक सहकारी समितियां तथा गांवों के स्कूल भी इस कार्यक्रम से संबंधित रहते हैं।

खण्ड विकास समिति—

खण्ड विकास समितियों में पंचायतों तथा सहकारी समितियों के प्रतिनिधि, कुछ प्रगतिशील कृषक, सामाजिक कार्यकर्ता तथा कार्यकर्त्रियां, तत्सम्बन्धी क्षेत्र के संसद सदस्य तथा विधान सभाई सदस्य रहते हैं। ये समितियां अपने अपने क्षेत्रों की विकास योजनाओं के आयोजन, उनके संबंध में पहल करने, उनको स्वीकृति दिलाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने के लिये उत्तरदायी होती हैं। कुछ राज्यों में खंड पंचायत समितियां स्थापित करने के लिये कार्यवाही आरम्भ की जा चुकी है।

वित्त व्यवस्था—

कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए वित्त की व्यवस्था जनता तथा सरकार मिलकर करती है। प्रत्येक खण्ड क्षेत्र की विकास योजनाओं के लिये जनता से नगद तथा श्रम के रूप में प्राप्त होने वाले स्वेच्छिक योगदान की मात्रा निर्धारित होती है। वित्तीय सहायता सरकार की ओर से मिलने की स्थिति में केन्द्रीय तथा राज्य सरकार आवर्तक मदों पर होने वाले व्ययों को समान रूप से तथा अनावर्तक मदों पर होने वाले व्यय को ३ः१ के अनुपात से वहन करती है। सिंचाई तथा भूमि पुनरुद्धार जैसे कार्यों के लिये केन्द्रीय सरकार ऋणों के रूप में राज्य सरकारों को आवश्यक वित्तीय सहायता देती है। खंडों में नियुक्त कर्मचारियों पर राज्य सरकारों द्वारा किये जाने वाले व्यय में से भी आधा भाग केन्द्रीय सरकार वहन करती है।

मार्च ३१, १९५९ तक जनता ने ७४.५९ करोड़ रु० के मूल्य का योगदान दिया जो १४०.८६ करोड़ रुपये के कुल सरकारी व्यय का लगभग ५०% है। प्रथम योजनाकाल के निर्धारित ९६.५० करोड़ रु० के व्यय की तुलना में इस अवधि में केवल ५२.४० करोड़ रु० ही व्यय किये गये। इसी प्रकार ४४.१० करोड़ रु० की शेष निर्धारित राशि का उपयोग द्वितीय योजनाकाल में किया जायेगा। द्वितीय योजना के लिये लगभग २ अरब रुपये के व्यय की व्यवस्था की गई है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उपकरणों के आयात के लिए प्राविधिक सहयोग मण्डल सहाय करार के अनुसार अमेरिका सरकार से १ करोड़ ४२ लाख ८० हजार डालर प्राप्त हुये। योजना कार्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये फोर्ड प्रतिष्ठान से भी सहायता प्राप्त हुई।

निम्न तालिका में वे विभिन्न मदें दी गई हैं जिन पर प्रथम एवं द्वितीय योजना के अन्तर्गत व्यय किया गया —

व्यय तथा जनता का योग-दान

(अप्रेल १, १९५९) (लाखो रुपयो मे)

विवरण	प्रथम योजना अवधि मे	द्वितीय योजना अवधि मे १९५६ ५७	१९५७ ५८	१९५८ ५९	योग	महा योग
(१) राजकीय व्यय :						
ब्लॉक हैडक्वार्टर (यातायात, कार्यालय भवन आदि को सम्मिलित करते हुए)	९,९२	५,१३	९,२८	११ ५२	२५,९३	३५,५५
कृषि तथा पशु सम्पदा	३,५२	१,७६	१,६८	१,८२	५,२६	८,७८
सिचाई तथा भूमि प्राप्ति	८ ०८	४,७४	६,९७	९,१२	२०,८३	२८,९१
स्वास्थ्य एव ग्रामीण सफाई	४,५२	२,२९	३,१२	३,०१	८,४२	१२,९४
शिक्षा	२,६५	२,५२	२,५४	२,१६	७,२२	९,८७
सामाजिक शिक्षा	१,९५	९६	१,५३	१,९७	४ ४६	६,४१
सदेशवाहन	६,६४	९५	२,११	१,८०	४,८६	११,५०
ग्रामीण उद्योग	१,७८	१,०५	८४	७८	२,६७	४,४५
गृह	३६	१,३४	१ २९	२,१६	४,७९	५ १५
अ-वर्गित व्यय	७,७६	२,९६	१,३६	५,२२	९,५४	१७ ३०
योग	४६,८८	२३,७०	३०,७२	३९,७६	९३,९८	१,४०,८६
(२) जनता का योग .						
योग	२५,१३	१६,३१	१६,३०	१६ ८४	४९,४६	७४ ५९

नोट—२ अक्टूबर १९५९ को राजकीय व्यय एव जनता का योग क्रमश १५३,९६ लाख रुपये तथा ७९ ७८ लाख रुपये था।

विकास खण्डो पर व्यय—

राज्यो की योजना म कोषो का विभाजन खण्ड वार किया गया है। प्रथम स्तरीय खण्डो (Stage I Block) के लिये पाँच वर्षो की अवधि के हेतु १२ लाख रुपये का व द्वितीय स्तरीय खण्डो के लिये पाँच वर्षो के हेतु ५ लाख रुपये का आयोजन किया गया है। पूव विस्तार अवधि क लिये कृषि विकास के हेतु १८,००० रु० उपलब्ध किये गये है।

प्रशिक्षण—

ग्राम सेवको का दो वष की ट्रेनिंग दी जाती है और इसके लिए ६१ विस्तार प्रशिक्षण केन्द्र (Extension Training Centres) खोले गये है। सितम्बर १९५६ के अन्त तक १५०० ग्राम सेविकाओ को ३५ प्रशिक्षण केन्द्रो में प्रशिक्षित किया गया। सामाजिक शिक्षा के सगठनकर्त्ताओ की प्रशिक्षा के लिये १३, मुख्य सेविकाओ की प्रशिक्षा के लिए २ तथा खड विकास अधिकारियो क लिये ८ प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित है। स्वास्थ्य कर्मचारियो की प्रशिक्षा के लिये ३ प्रशिक्षण केन्द्र है। ६६ केन्द्र नर्सो की ट्रेनिंग के लिये व ६ केन्द्र महिला स्वास्थ्य अधिकारियो के लिये खोले गये है। विभिन्न प्रशिक्षण केन्द्रो के आचार्यों की ट्रेनिंग क लिये देहरादून के पास एक प्रशिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र (Trainers' Training Institute) खोला गया है। उच्चाधिकारियो की ट्रेनिंग के लिये मसूरी में एक केन्द्रीय सस्था स्थापित की गई है। अल्पकालीन प्रशिक्षण कैम्प भी चलाये जाते है जहाँ गैर सरकारी व्यक्तियो को ट्रेनिंग दी जाती है। ३१ मार्च १९५६ तक १६ लाख ग्राम सहायक ग्राम सवको के काय म सहायता देने के लिये प्रशिक्षित किये गये थे।

सामुदायिक विकास योजनाओ का आरम्भ एव विकास—

सामुदायिक विकास कार्यक्रम, जिसका उद्देश्य भारत की विशाल ग्रामीण जन सख्या का व्यक्तिगत तथा सामूहिक कल्याण करना है, का भारत म २ अक्टूबर सन् १९५२ को चुने हुए ५५ योजना काय क्षेत्रो मे प्रारम्भ किया गया था। प्रत्येक योजना काय में ५०० वर्ग मील के क्षेत्रफल मे फैले हुए लगभग २ लाख की जनसख्या के करीब ३०० गाँव आते है। यह कायक्रम खण्डो (Blocks) के रूप म कार्यान्वित किया जाता है। प्रत्येक खण्ड में सामान्यत. १५० वर्ग मील में फैले तथा ६०-७० हजार की जन सख्या युक्त १०० गाँव आते है। पाँच वर्ष भरपूर विकास का कार्य किए जाने के बाद प्रत्येक खण्ड के दूसरे चरण का कार्य का आरम्भ होता है। जैसा कि नीचे दी हुई तालिका से प्रगट होता है, १ अप्रैल १९५८ तक इस योजना के अन्तगत २,५४८ खण्ड, ३,३६,५१८ गाँव तथा १७·३ करोड व्यक्ति आ गए—

सामुदायिक विकास योजना की कार्य प्रगति

(१ अप्रैल १९५९ तक)

राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र	सीमा रहित (Delimited) खण्डो की सख्या	खण्डो की सख्या (१-४-५९)			जनसख्या (हजारो म)	गाँव	क्षेत्रफल (वग मील)
		प्रथम स्टज	दूसरी स्टज	योग			
(१) आन्ध्र प्रदेश	४४७	१६१	६१	२२२	१ ५६ ७४	१४ ८७२	५० ८२१
(२) आसाम	१५२	४२	२७	६९	३७ ६६	१२ २८७	२२ ७०६
(३) विहार	५७५	२५४	३८	२९२	१ ९६ २१	३ ७८४	२३ ३६०
(४) बम्बई	६४९	२११	८४	२९५	१ ९६ ५२	३७ ६१९	६१ ६४४
(५) जम्मू और काश्मीर	५२	४८	४	५२	२३ ५८	५ ८४२	४७,५६२
(६) केरल	१४२	५५	१८	७३	६७ ३०	८६२	५ ९९६
(७) मध्य प्रदेश	४१६	१५१	७२	२२३	१ ३८ ५३	४२ ७२०	८० २०५
(८) मद्रास	२५८	१०९	५८	१६७	१ ४१ ६०	८ ६११	२२ ८८०
(९) मैसूर	२६८	९९	३७	१३६	१ ०८,५३	१४ ५१३	५० ७३७
(१०) उडीसा	३०७	११९	२४	१४३	९२,०६	३१ ४०८	३० ६८४
(११) पजाब	२२८	९०	४३	१३३	९२ ९७	१८ १३३	२५ ७०३
(१२) राजस्थान	२३२	८६	३३	११९	७८ ७५	१८ ३०७	५५ ५१८
(१३) उत्तर प्रदेश	८९९	३१७½	८९½	४०७	२ ६५ ५६	५७ ६९२	५५ ७२३
(१४) वेस्ट बगाल	३४१	१२३	२३	१४६	१,०८ ९३	१९ ९१९	१५,८५२
(१५) केन्द्र प्रशासित क्षेत्र	१५१	५१	२०	७१	२६ २६	१० ८६५	२६ ६११
योग	५,२१७	१ ९१६½	६३१½	२५४८	१७ ३० ९१	३ ३९ ५१८	६ ०६ ०११

नोट—२ अक्टूबर १९५९ तक इस योजना के अतगत २ ७०८ ब्लाक्स ३ ६० हजार गाँव तथा १७ ९२ करोड व्यक्ति आ गए थ ।

अक्टूबर १९६३ तक सामुदायिक विकास का काम सारे देश में फैल जायगा।

दोष और सुझाव—

ये योजनायें सफल रही हैं, परन्तु इनमें कई दोष हैं:—

(१) पूर्व योजना की कमी। यह दोष अधिकाधिक अनुभव से दूर होगा।

(२) राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों में सहयोग अथवा सहकारिता की भावना में कमी। अब यह माना जाने लगा है कि विकास कार्यक्रमों को लागू करने का दायित्व मुख्यतः डिप्टी कमिश्नर पर होना चाहिये। इस व्यवस्था से उन्नत सहयोग एवं कार्यपालन सम्भव हो जायगा।

(३) गैरसरकारी वर्ग का सहयोग पर्याप्त नहीं है। मूल्यांकन सङ्गठन ने बताया है कि राज्यों में योजना सलाहकार समितियों की स्थापना नहीं हुई है। जहाँ हुई है, वहाँ वे मिलकर नियमित रूप से विचार नहीं करतीं। योजना अधिकारियों ने इसे लाभदायक न पाकर बाधक पाया है, अतः अधिकाधिक सहयोग को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

(४) उपकरण के प्राप्त होने में देरी लगती है।

(५) कई योजनाओं में भौतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनुचित शीघ्रता की गई है। इससे कई बार भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है, परन्तु आन्दोलन जड़ नहीं पकड़ता, अतः प्रभाव अस्थायी होगा। जन प्रोत्साहन तो यथेष्ठ है, किन्तु ऐसी स्थायी संस्थायें बनाने की आवश्यकता है जो इस प्रोत्साहन तथा सामूहिक कार्य क्रम का स्थायी ढङ्ग से चलावें। इसके लिये पचायतों एवं सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन देने और ध्यान देने की आवश्यकता है।

(६) विस्तार सेवा कर्मचारियों के चरित्र, प्रशिक्षण एवं चुनाव की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

राष्ट्रीय विस्तार सेवा

(National Extension Service)

जबकि सामुदायिक विकास योजना ग्रामीण पुनर्सङ्गठन का एक अङ्ग है, राष्ट्रीय विस्तार सेवा उसकी एजेन्सी है। इसके चालू करने की सिफारिश 'अधिक अन्न उपजाओ' जाँच समिति तथा योजना आयोग ने की थी और यह २ अक्टूबर सन्

१९५३ से चालू की गई। उद्देश्य एक सा होने के कारण केन्द्र तथा राज्यों में सामूहिक विकास योजना एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा को मिला दिया गया है, परन्तु राष्ट्रीय विस्तार सेवा स्थायी है, जबकि सामूहिक योजना ३ वर्ष के लिए है। राष्ट्रीय विस्तार सेवा के द्वारा योजना काल के अन्त तक सारे देश के लोगों तक पहुँचने का प्रयत्न किया जावेगा।

किसान बिना सहायता एव पथ प्रदर्शन के स्वय वैज्ञानिक कृषि अपनाने में असमर्थ है। इस योजना के अन्तर्गत अनेक व्यक्तियों को ग्रामीण जनों की सहायतार्थ प्रशिक्षित किया गया है। वे गाँव वालों को अपने घर एव गाँव साफ, स्वास्थ्यवर्द्धक रखने, सड़कें बनाने व मरम्मत करने, कुटीर उद्योग चलाने एव सहकारी समितियाँ सगठित करने के लिये कहते हैं। दूसरे शब्दों में, वे ग्रामीणों को अपने ही प्रयत्नों द्वारा अपने प्रसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। प्रत्येक १० गाँव के पीछे एक ऐसा कार्यकर्त्ता रखा गया है। ग्राम स्तर कार्यकर्त्ताओं का यह सगठन 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा' के नाम से बोला जाता है।

सामुदायिक योजना क्षेत्रों में अन्य स्थानों की अपेक्षा प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता कहीं अधिक सख्या में होते हैं। उदाहरण के लिये, एक योजना क्षेत्र में प्रति ४ या ५ गाँव पीछे एक ग्राम स्तर कार्यकर्त्ता होता है। वह ग्राम स्तर कार्यकर्त्ता गाँव वालों का मित्र एव मार्ग दर्शक होता। स्वय वह ब्लॉक प्रधान कार्यालय के ब्लॉक विकास अधिकारी एव अन्य तान्त्रिक विशेषज्ञों से मार्ग-दर्शन प्राप्त करता है।

आरम्भ में यह सेवा सम्पूर्ण देश भर में २४० ब्लॉकों में चालू की गई थी। प्रथम पच वर्षीय योजना काल में लक्ष्य सामुदायिक विकास कार्य क्रम एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत ग्रामीण जन-सख्या के लगभग $\frac{1}{4}$ भाग तक पहुँचने का था। अक्टूबर सन् १९५५ तक यह कार्य क्रम ६ ८६ करोड़ व्यक्तियों को, जो कि १,०६,०५७ गाँवों में (९५१ सामुदायिक योजना एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा ब्लॉकों में विभाजित) निवास करते थे, विस्तृत किया। ये सामुदायिक योजना ब्लॉक १५२ और राष्ट्रीय विस्तार सेवा ब्लॉक १३५ थे। इस प्रकार भारत में प्रत्येक पाँच गाँवों में एक गाँव उपरोक्त किसी एक या दोनों ही सेवाओं का लाभ पा रहा था।

प्रथम योजना के अन्त तक १,१६० विकास ब्लॉक बनाये गये, जिनमें से प्रत्येक में १०० गाँव और ६० ७० हजार जनसख्या है। इनमें से लगभग ३०० को गहन सामुदायिक योजनाओं में परिवर्तित कर दिया गया और शेष राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत थे। द्वितीय योजना में इस कार्यक्रम के लिये २०० करोड़ रुपये रखे गये हैं, ताकि यह सम्पूर्ण भारत में विस्तृत हो जाय। कुल ३,८०० अतिरिक्त ब्लॉक विस्तार सेवा के अन्तर्गत बनाये जायेंगे, जिनमें से १,१२० को गहन विकास के लिये चुन लिया जायगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Explain the importance of villages in the economic system of India and discuss the attempts made for rural reconstruction in our country.
2. Examine the main aim of the Community Development in our Country. How far they have succeeded in achieving their aims ?
3. What are the main features of Community Development Projects launched in the Country ? Examine their usefulness as an instruments of rural reconstruction
4. Write a full note on the achievements of Community Development Projects in India.
5. Write an Explanatory note on India's National Extension Service

अध्याय १०

भारतीय सूती वस्त्र उद्योग

(Indian Cotton Textile Industry)

प्रारम्भिक—

"भारत का सूती वस्त्र मिल उद्योग देश के अतीत का गौरव, वर्तमान और भविष्य का सदेह, परन्तु सदैव आशा की वस्तु रहा है।' यह भारत का सबसे प्राचीन उद्योग है, किन्तु परिमाण एव गति की दृष्टि से इसके विकास में विशेष रूप से विगत शताब्दी का समय अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। आजकल कृषि उद्योग के बाद सूती वस्त्र उद्योग ही देश के सर्वाधिक व्यक्तियो को जीविका प्रदान करता है, इसके साथ ही हमारे देश के कुल उत्पादन का ३५ प्रतिशत भाग उत्पन्न करने का भी इस उद्योग को श्रेय है। इस उद्योग मे ८ लाख श्रमजीवी लगे ह एव १२२ करोड रुपये की पूँजी लगी हुई है। सन् १९४७ में जब कि हमारा देश स्वतन्त्र नही हुआ था, यहाँ ३८८ सूती मिलें थी, जिनमें १ करोड तकवे एव २ लाख करघे थे और अब इस उद्योग में ४८२ सूती मिलें हैं, जिनमें १३ करोड ४० लाख तकवे है। १९४८ मे जो उत्पादन १४,४७० लाख पौंड सूत और ४३,१९० लाख गज कपडा था, १९५७ में वही उत्पादन बढकर १७,८०० लाख पौंड सूत और ५३,१७० लाख गज कपडा हो गया। सन् १९५९ में कपडे का उत्पादन ४९,२८० लाख गज और सूत का उत्पादन १७,१८८ लाख पौंड हुआ। आज यह उद्योग ४०० करोड रुपये की उत्पत्ति कर रहा है। सूती वस्त्र के परिमाण को ध्यान में रखते हुए यह विश्व के तीसरे दर्जे का उद्योग है एव सूत उद्योग में इसका विश्व में दूसरा स्थान है। भारतीय मिल उद्योग में सूत एव कपडे के उत्पादन में निरतर प्रगति हो रही है।

सन् १९४७ में भारत के विभाजन के समय भारत की बहुत सी अच्छी कपास उत्पन्न करने वाली भूमि पाकिस्तान को हस्तातरित कर दी गई, इसके बावजूद भी उत्पादन में वृद्धि इस बात का द्योतक है कि भारतीय वस्त्र उद्योग में अपार उत्पादन-क्षमता निहित है। उद्योग के लिए कपास की खपत भी १९४८ की ३५ लाख गाँठो से

बढ़कर १६५८ में ५० लाख गाँठे हो गईं। इनमें ६ लाख कपास की गाँठें विदेशों में निर्यात की गईं एवं शेष ४० लाख गाँठों का देश में ही उत्पादन किया गया।

भारत ने सूती कपड़े के निर्यात में भी प्रगति की है। निर्यात करने वाले देशों में जापान के बाद भारत का स्थान है। सूती वस्त्र का निर्यात भारत पश्चिम में कनाडा से लेकर पूर्व में इण्डोनेशिया तक और उत्तर में फिनलैंड से लेकर दक्षिण में आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड तक करता है। आज हमारा देश ७५ से ८० करोड़ गज मिल का कपड़ा विदेशों को निर्यात कर रहा है जब कि कुछ समय पूर्व हमारा देश विदेशों से कपड़े का आयात करता था। इस उद्योग में हुई इस तरक्की के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय कारण हैं किन्तु वास्तव में देश में हुई प्रगति को ही इसका श्रेय प्राप्त है। हमारे देश द्वारा सन् १९५४ ५५ ५६, ५७ में क्रमशः ६५१ ८७३ ८०४ ७६५ मिलियन गज कपड़ा निर्यात किया गया और सन् १९६० ६१ में १ ००० मिलियन गज कपड़ा निर्यात करने का लक्ष्य है।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

हमारे देश में सूती वस्त्र उद्योग बहुत प्राचीन काल से ही उन्नत स्थिति में था। भारतीय सभ्यता के प्राचीन स्मारक मोहनजोदड़ो के अवशेषों में सूती वस्त्र भी प्राप्त हुए हैं प्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉन टर्नर और ए० एन० गुलाटी के मतानुसार ये प्राप्त सूती वस्त्र रुई से बनाये गये होंगे। ग्रीस के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैरोडोटस आश्चर्य चकित होकर कहते हैं कि भारतीय एक ऐसे ऊन के वस्त्र पहनते हैं जो भेड़ बकरियों के शरीर से प्राप्त नहीं होता वरन् पेड़ों पर उगाई जाती है। अजन्ता की कला कृतियाँ भी इस उद्योग के गौरवपूर्ण अतीत की कहानी कहती हैं। भारतीय वस्त्र उद्योग को मुस्लिम काल में बहुत गौरव प्राप्त हुआ। श्री टी० एन० मुकर्जी के मतानुसार मलमल का एक २० गज लम्बा तथा १ गज चौड़ा सुन्दर टुकड़ा अँगूठी के बीच में से सुगमता पूर्वक निकल सकता था इस कपड़े के निर्माण में लगभग ६ ७ माह लगते थे। श्री टैवर्नियर के शब्दों में—"भारतीय मलमल इतना महीन था कि हाथ से वह अनुभव नहीं की जा सकती थी।

सूती कपड़ा बनाने की मिल यद्यपि भारत में सन् १८१८ में हुगली नदी के किनारे घूसरी नामक स्थान पर स्थापित की गई थी परन्तु वास्तविक रूप में इस उद्योग की प्रगति का प्रारम्भ सन् १८५४ में उस समय हुआ जब कि एक पारसी उद्योगी श्री कावस जी नाना भाई दावर ने बाम्बे स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी की स्थापना की और इसके बाद एक अंग्रेज उद्योगपति ने भड़ौच में दूसरी मिल स्थापित किया। इन दोनों कारखानों की प्राप्त सफलता के परिणामस्वरूप सन् १८७५ तक समस्त देश में ४८ वस्त्र मिलें स्थापित हुईं। इन कारखानों की प्रगति से प्रभावित होकर

अहमदाबाद शोलापुर मद्रास कानपुर आदि नगरो म सूती वस्त्र मिलों की स्थापना की गई और सन् १९१४ तक २६४ वस्त्र मिल स्थापित की गई।

प्रथम महायुद्ध काल मे उद्योग की स्थिति—

देशी सूती कपडा मिल की उन्नति और खासकर सन् १९१४ के बाद की प्रगति म पणत नही तो मुख्य रूप स महायुद्ध स्वदेशी आन्दोलन एव इस उद्योग के उत्पादन से विदेशी प्रतियोगिता की समाप्ति आदि का योग रहा। किन्तु इस उद्योग के विकास को सर्वाधिक रूप से देश म बढी हुई कपडे की माग न प्रभावित किया।

प्रथम महायुद्ध काल म इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योंकि इस समय विदेशो से कपड का आयात बन्द हो गया और साथ ही भारतीय सनिको की आवश्यकताओ को पूरा करन क लिए शासन न देश म ही बहुत स सामान खरीदा। युद्धोपरान्त ६ वप तक यह उद्योग निर्बाध रूप से चलता रहा किंतु इसके बाद जापान एव अमरीका स प्रतिस्पर्धा युद्ध के पश्चात् माग म कमी हडताल एव कोयल क मूल्य म वृद्धि होन से उद्योग को भारी क्षति उठाना पडी। इस समय तक सूती वस्त्र मिलो की सख्या बढ कर २७१ हो गई थी। इन परिस्थितियो म जबकि उद्योग का स्थिति अ म त दयनीय थी सरक्षण की माग की गई। सन् १९२७ म स्थापित टरिफ बोड द्वारा आयात मशीनो के कर को सरक्षण दिया गया। सन् १९३० म वस्त्र उद्योग सरक्षण अधिनियम बना इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश आयात पर १५ प्रतिशत तथा अन्य देशो के आयात पर २० प्रतिशत कर लगाया गया। इस कर म सन् १९३४ म ५ प्रतिशत की वृद्धि की गई। सन् १९३४ म एक अधिनियम और पास हुआ जिसके अनुसार सरक्षण की अवधि १९४ तक बढा दी गई।

द्वितीय महायुद्ध काल मे उद्योग की स्थिति

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ म ३८८ सूती वस्त्र मिल थी युद्ध की शङ्ख ध्वनि के साथ ही उद्योग को पुन प्रोत्साहन मिला। युद्ध क कारण विदेशो स आयात बन्द हो गया एव निर्यात को प्रोत्साहन मिला जिसके कारण मूल्यो म वृद्धि हुई। साथ ही ब्रिटिश वस्त्र उद्योग युद्ध की आवश्यकताओ के उत्पादन म लग गया एव जापान से शत्रुता होन के कारण भारत को उपभोक्ताओ एव मित्र देशो की सनाओ का आवश्यकता पूर्ति का एकाधिकार प्राप्त हो गया। उद्योग की स्थिति म विवश होकर सरकार को कपड पर कन्ट्रोल लगाना पडा इसके लिए सरकार न चार आदेश जारी किय। प्रथम आदेश Cotton Clotoh and Yarn Control Order 1943 के अनुसार कपड का उत्पादन वितरण एव कीमत पर सरकार द्वारा नियन्त्रण किया

गया। दूसरे आदेश द्वारा कपड़े का स्थानीय उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न एवं तीसरे आदेश के अनुसार कपड़े के यातायात पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया गया एवं चौथे आदेश का उद्देश्य कपड़े के उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल तथा अन्य साधनों के मूल्यों पर नियन्त्रण करना था। इस नियन्त्रण के प्रभाव से सन् १६४६ में उद्योग की स्थिति में प्रभाव हुआ, अतः सन् १६४७ में वस्त्र उद्योग पर से नियन्त्रण सम्बन्धी सभी आदेश हटा लिए गए। नियन्त्रण से पूर्व सन् १६४२ में कपड़े का मूल्य सन् १६३६ की अपेक्षा चार गुना बढ़ गया, साथ ही भारतीय वस्त्रों का निर्यात भी बढ़ता जा रहा था एवं देश में भी कपड़े की माँग में वृद्धि हो रही थी। किन्तु सन् १६४८ तक उद्योग की स्थिति सामान्य हो गई और इस समय तक कपड़ा मिलों की संख्या बढ़कर ४०७ हो गई।

देश के विभाजन का वस्त्र उद्योग पर प्रभाव—

१५ अगस्त सन् १६४७ को देश स्वतन्त्र होने के साथ साथ भारत एवं पाकिस्तान, दो हिस्सों में विभाजित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सूती वस्त्र उद्योग को गहरा धक्का लगा। ७५ प्रतिशत श्रेष्ठ कपास उत्पन्न करने वाली भूमि तथा १४ सूती वस्त्र कारखाने पाकिस्तान को हस्तांतरित किये गये। इस समय उद्योग के लिए कपास एक समस्या बन गई। भारत एवं पाकिस्तान के मध्य अनेक व्यापारिक समझौते होते हुए भी पाकिस्तान के दुर्व्यवहार से भारत को हानि उठानी पड़ी। अन्त में विवश होकर भारत ने मिश्र, अफ्रीका आदि देशों से समझौते किये एवं देश में 'अधिक कपास आन्दोलन' चलाया गया, परिणामस्वरूप वस्त्र उद्योग पुनः प्रगति के मार्ग पर बढ़ने लगा एवं उत्पादन में वृद्धि हुई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सूती वस्त्र-उद्योग—

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अधीन ४७० करोड़ गज कपड़ा और १६४ करोड़ पौंड सूत पैदा करने का लक्ष्य था और उत्पादन के ये लक्ष्य अपनी योजना की अवधि ३१ मार्च १६५५ के समाप्त होने के बहुत पूर्व ही पूरे कर लिये गये थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत वस्त्र उद्योग हेतु रखे गये एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार लक्ष्य था कि भारत पर्याप्त मात्रा में वस्त्रों का निर्यात करता रहे और देश के आन्तरिक उपभोग के लिए भी आवश्यकता से अधिक कपड़ा प्राप्त हो।

कर्वे कानूनगो समिति की सिफारिशों के अनुसार योजना काल में हस्त करघा उद्योग को विशेष प्रोत्साहन दिया गया, जिसके कारण करघों की संख्या में अपेक्षित वृद्धि से कम वृद्धि हुई। समिति की सिफारिशों के अनुसार हस्त चलित एवं शक्ति-चलित करघों का उद्योग में अधिक उपयोग होना चाहिए, जिससे बेकार बैठे लोग रोजगार पर लग सकें। सरकार ने इस योजना-काल में कपड़े का निर्यात बढ़ाने के लिए एक 'सूती वस्त्र निर्यात प्रवर्तक परिषद' (Cotton Textile Export Promotion

Council) की नियुक्ति की, जिसका कार्य वस्त्र निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए हर सम्भव उपाय करना था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सूती-वस्त्र उद्योग—

द्वितीय आयोजना के अन्त तक ८४० करोड गज के कुल उत्पादन का अनुमान है। इस योजना काल के लिए वस्त्र उद्योग के उत्पादन-लक्ष्य की घोषणा सन् १९५६ में की गई थी, जिसके अनुसार सन् १९६० ६१ तक २४ प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसमे ३,५०० मिलियन गज कपडे का उत्पादन हस्त-करघा उद्योग के लक्ष्य की सीमा है। इस अनुमान के अनुसार योजना के अन्त तक देश में प्रति व्यक्ति कपडे का औसत उपभोग बढकर १८'५ गज हो जायगा एव सारे देश की आवश्यकता पूर्ति के लिए ७४० करोड गज वस्त्र प्रति वर्ष उत्पादन करने का लक्ष्य है, साथ ही १०० करोड गज कपडे के निर्यात करने का लक्ष्य है। उपरोक्त लक्ष्य की प्राप्ति हेतु १४,६०० नये चलित करघे लगाने की व्यवस्था है। वस्त्र उद्योग मे मिल क्षेत्र का जहां तक सम्बन्ध है, इस योजना के अन्तर्गत यह निर्धारित नही किया गया है कि देश की खपत के लिए उस कितना उत्पादन बढाना है। ऐसा करने का उद्देश्य मिलो द्वारा कपडे का उत्पादन ५०० करोड गज के आस-पास ही स्थिर रखने का है, जिससे कपडे की अतिरिक्त माँग को हस्तकरघो एव विद्युत चलित करघो के उत्पादन से पूरा किया जा सके। इस प्रकार द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध मे जो नीति निर्धारित की गई, देश के उद्योगपतियो द्वारा उसका स्वागत किया गया। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि मिल उद्योग एव करघा उद्योग में समन्वय स्थापित किया जावे, जिसमे विशाल उद्योग के साथ साथ ही छोटे पैमाने के करघा उद्योग भी उन्नति कर सकें। इस योजना के अन्तगत इस विषय पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है।

भारत सरकार की नई वस्त्र-नीति—

भारत सरकार द्वारा सूती वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध में घोषित अपनी नई नीति के अनुसार मिलो द्वारा ३५'३ करोड गज, विद्युत चलित कर्घो द्वारा २०'१ करोड गज एव हस्त करघा द्वारा १०० करोड गज अतिरिक्त कपडा बुना जाना चाहिए। सरकार की इस नीति की प्रमुख बातें निम्नलिखित है—

(i) नवीन तकलियो के लाइसेंस केवल उन्ही व्यक्तियो को दिये जाएँ जो उनको शीघ्र चालू करने का प्रबन्ध कर सकें, जिससे बढती हुई माँग को शीघ्रता से पूरा किया जा सके।

(ii) सूती वस्त्र मिलो को १४,६०० नवीन करघो को लगाने की अनुमति इसलिए दी गई है कि उनका समस्त उत्पादन, जो लगभग ३५ करोड गज है प्रति वर्ष निर्यात किया जा सके।

(iii) ३५ ००० विद्युत चलित करघे सहकारी समितियों द्वारा लगाये जाने की व्यवस्था की गई है, और

(iv) इस नीति के अन्तगत अबर चरखा को विशेष महत्त्व दिया गया है। उपरान नीति क अनुसार कुटीर एव ग्रामोद्योगो का काफी विकास हागा। अबर चरखा एव नई सूती मिलो के बीच के राजनीतिक मतभेद भी समाप्त हो जाने की आशा है। अनुमान है कि इससे भारतीय सूती वस्त्र के निर्यात व्यापार पर भी कोई बुरा प्रभाव नही पडगा।

कुछ आलोचको के मतानुसार यह नीति वतमान स्थिति में अनुपयुक्त प्रतीत होती है। राष्ट्रायता क विकास एव प्रतियोगिता की तीव्रता स यह मान लना कि २ वष म उद्योग ३५ करोड गज वस्त्र निर्यात करने लगेगा, सदहास्पद है। इस नीति के अनुसार सरकार ३५ हजार विद्युत चलित करघो की स्थापना का विचार रखती है, अत हस्तकरघा उद्योग पर इसका बुरा प्रभाव पडने की आशका है। वस्त्र जांच समिति (१९५८) के अनुसार भी द्वितीय योजना म प्रति व्यक्ति कपड की खपत १७ ५ गज स अधिक होन की सम्भावना नही है जबकि निर्धारित लक्ष्य १८ ५ गज का है, इसका कारण यह बताया गया है कि देश की आर्थिक प्रगति उस गति स नहीं हो रही, जिसका अनुमान किया गया था।

उद्योग की समस्याएँ और हल—

वतमान म सूती वस्त्र उद्योग की प्रधान समस्याएँ निम्न है :—

(१) **यत्र सामिग्री का आधुनिकीकरण एव स्वचालन**—पिछले दो महायुद्धो म अत्यधिक उत्पादन के कारण यत्र सामिग्री बहुत घिस गई है। युद्ध काल एव उसके पश्चात् यत्रो क मिलने में कठिनाई होने एव उनका अधिक मूल्य होन क कारण उन यत्रो को परिवर्तित नहीं किया गया अत इन पुरानी मशीनो में अत्यधिक टूट फूट एव घिसाई हुई है। साथ ही अन्य देशो की अपेक्षा हमारा उत्पादन व्यय भी उपरोक्त कारणो स अधिक हो गया है। वतमान समय म इस उद्योग मे लगी हुई सभी मशीनें लगभग ४० वष पुरानी है। अत आज इस उद्योग की महत्त्वपूर्ण समस्या यत्र सामिग्री के पुन सस्थापन एव आधुनिकीकरण की है। 'समस्त उद्योग म उपयुक्त आधुनिकीकरण के बिना लागत म कमी अथवा क्वालिटी में कोई बडा सुधार होना सम्भव नहीं है।'

सूती वस्त्र उद्योग मे विश्व न अत्यधिक प्रगति की है। भारत जो कि सूती वस्त्र का सबस बडा उत्पादक है, उस प्रगति क साथ चलना होगा, यह विश्व की बढती प्रतियोगिता में अपना स्थान बनाये रखन क लिय भी नितात आवश्यक है। आज विश्व के अन्य देशो में स्वचालित करघो का उपयोग होता है, हम पुराने यन्त्रो क प्रयोग में इस उद्योग में सूती वस्त्र के उत्पादन में गुण एव सख्या में वृद्धि नही कर

सकने । सूती वस्त्र मिलो मे जिस तेजी के साथ पुरानी यत्र सामिग्री के स्थान पर नवीनतम उपकरणो का प्रतिस्थापन किया जायेगा, वैसे वैसे सूती वस्त्र के उत्पादन में गुण एव सख्या मे वृद्धि सभव होगी । इस समय आधुनिकीकरण की आवश्यकता केवल उद्योग की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नही है अपितु स्वदेश एव विदेश की निरतर बदलती हुई माँग को योग्यता एव सुविधा से पूरा करने के लिये भी आधुनिकीकरण आज की माँग है । वस्त्र-उद्योग में प्रयुक्त होने वाली कुछ मशीने जैसे—रिंग फ्रेम, करघे एव धुनाई इजन आदि का निर्माण अब देश मे ही वृहद परिमाण मे होता है, इसके साथ ही फ्रेम, स्वचालित करघे, फ्लाई फ्रम तथा रीलिंग मशीनों के निर्माण का काय भी प्रारम्भ हो चुका है । फिर भी देश मे निर्मित कपडे की किस्म में सुधार एव माल के समापन के काम मे लायी जान वाली मशीनो का आयात आवश्यक है ।

इस उद्योग मे भारतीय अपन उत्पादन क्षेत्र (निर्यात) म तभी सफलता प्राप्त कर सकते है, जबकि उत्पादन व्यय म कमी आये और यह तभी सभव है, जबकि उद्योग में पुराने यत्रों के स्थान पर नवीनतम यत्रो का उपयोग हो तथा स्वचालित करघो का प्रयोग किया जावे ।

(२) वस्त्र उद्योग के लिये आवश्यक यत्रो का निर्माण—विज्ञान के क्षेत्र म हमारा देश पिछडा होने के कारण, वस्त्र उद्योग देश का प्राचीनतम उद्योग होते हुए भी, उद्योग के लिये आवश्यक यत्र सामिग्री के लिये विगत १०० वर्षो से विदशी आयात पर निभर था इसके अलावा विदेशो में, विशेषकर अवमूल्यन के बाद, यत्र सामिग्री के दाम बहुत ऊँचे हो गये है । अत. विदेशी विनिमय की सुरक्षा एव आत्म-निभरता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हमारे देश में आवश्यक यत्रो का निर्माण हो, जिससे हम विदेशो पर निर्भर नही रहे ।

हमारे देश मे विगत कुछ समय मे वस्त्र उद्योग म प्रयुक्त होने वाले कई यत्र एव उनके हिस्म बनाने की दिशा मे काफी प्रगति हुई है । आज हमारे देश में तकुए, सादा करघे, रिंग फ्रेम इत्यादि का निर्माण पर्याप्त परिमाण में होता है, साथ ही स्वचालित करघो, ड्रा फ्रेम्स, फ्लाई फ्रेम्म आदि यत्रो का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया है । बहुत शीघ्र ही यत्र सामिग्री के अन्य कई भागो का निर्माण देश में ही प्रारम्भ किया जायेगा । वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित यत्रों के निर्माण के लिये नियुक्त की गई काम चलाऊ समिति द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे वस्त्र उद्योग मशीनरी के हिस्सो के तैयार करने के सम्बन्ध में शीघ्र उठाये जाने वाले कदमो पर विचार करेगी । इस दिशा में कुछ उद्योग पतियों द्वारा भी कदम उठाया गया है ।

(३) हस्त-करघा एवं मिलों मे समन्वय—हस्त-करघा एव मिलें स्वस्थ प्रति योगिता के साथ कदम ब-कदम मिलाकर चल सकें, इसके लिए आवश्यक है कि हस्त करघा उद्योग एव मिल उद्योग में समन्वय स्थापित हो सके । द्वितीय पचवर्षीय योजना

क ग्र तगत सूती वस्त्र का उत्पादन बढ़ाने हेतु सरकार न ३५,००० विद्युत चलित करघो के लगान का लक्ष्य निर्धारित किया है इससे निश्चित रूप स उत्पादन म तो वृद्धि होगी, किन्तु सरकार के इस कदम से बेकारी फैलन का भय है। इसलिए ग्राज ग्रावश्यकता इस बात की है कि सरकार हस्त करघा उद्योग का अधिक से अधिक सरंक्षण दे जिससे मिल उद्योग एव हस्त करघा उद्योग म समन्वय स्थापित किया जा सके। हमारी सरकार की नवीन सूती वस्त्र नाति इस दिशा म प्रयत्नशील है।

(४) पर्याप्त कच्चे माल का अभाव—दश के विभाजन स पूव तो यहाँ पर्याप्त मात्रा म कपास उत्पन्न होता था देश की ग्रावश्यकता पूर्ति क साथ साथ विदशो को कपास का निर्यात भी किया जाता था। किन्तु दश के विभाजन क परिणामस्वरूप कपास उत्पादन का एक बहुत बडा क्षेत्र पाकिस्तान म चला गया और हमारे देश में कपास एक महत्वपूर्ण समस्या बन गयी। हमें ग्रपनी ग्रावश्यकता पूर्ति के लिए विदेशो से अधिक मूल्य देकर कपास का ग्रायात करना पडा। यह कठिनाई इस उद्योग मे ग्राज भी है, यद्यपि १९४८ म उत्पन्न १८ लाख गाँठ से बढ़कर १९५८ में उत्पादन ३४ लाख गाठ हो गया।

इस समस्या के समाधान हतु अच्छे किस्म एव लबे रेशे वाली रुई का उत्पादन बढाने हेतु अनुसन्धान होना चाहिए जिससे कच्चे माल के उत्पादन म हम ग्रात्मनिर्भर हो सकें। साथ ही समस्या समाधान हेतु Research Institute for Cotton Industries (वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित ग्रन्वेषण सस्था) खोली जावे, जिससे कच्चे माल के उत्पादन एव गुणो में सुधार हो सके।

(५) विदेशी प्रतियोगिता—विदेशो में भारतीय माल को जापान, ब्रिटेन एव ग्रन्य देशो के मध्य तीव्र प्रतियोगिता का सामना करना पडा है। भारत की वस्त्र मिलें, सरकार की वस्त्र उद्योग सम्बन्धी ग्रनिश्चित नीति क कारण ग्रपने निर्यात के वायदे पूरे नही कर सकी हैं इसके साथ ही भारतीय माल की किस्म एव पैकिंग भी निर्यात शर्तों के अनुरूप नहीं हो सका और इन सब कारणो म हमारे हाथ से निर्यात बाजार निकलते जा रहे है एव विदेशो म भारतीय उद्योग की प्रतियोगिता शक्ति दुर्बल हो गयी है।

सन् १९५८ की प्रथम एव विशेष रूप से द्वितीय तिमाही म भारतीय वस्त्र निर्यात म तीव्रता स कमी ग्राने के ग्रनेक कारणो म से एक कारण भारतीय उद्योग को चीन जापान एव ग्रन्य दशो के उद्योग स होने वाला प्रतियोगिता थी। भारत को विदेशो म ग्रपनी प्रतियोगिता की स्थिति सुधारने की विशेष ग्रावश्यकता है। बदलती हुई माँग को ध्यान म रखते एव विदेशी बाजारो का गहन ग्रध्ययन ही इस समस्या का उचित हल है। ग्रन्तर्राष्ट्रीय बाजार ग्राज ग्राहक प्रधान बाजार है, वहाँ ग्राहक की इच्छा का विशेष रूप म ध्यान रखा जाता है, इसके ग्रलावा वस्त्र उद्योग म नवीनतम

तरीको से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में होने वाली प्रतियोगिता के कारण माल का मूल्य एव उसके गुण ग्राहक को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। जापान की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में दृढ स्थिति का कारण उसके द्वारा माल के गुण एव मूल्य में प्रतियोगिता करने की शक्ति है। अत भारतीय उद्योग को विदेशी प्रतियोगिता में अपना स्थान सर्वोच्च बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यहा भी इन तरीको को अपनाया जाये। इस समस्या के समाधान हेतु हमे उत्पादन बढाना चाहिये, उच्च कोटि का माल निर्माण करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, उत्पादन यन्त्रो मे सुधार होना चाहिये एव श्रमिको की कार्य क्षमता बढाने के लिए हर सम्भव उपाय करना चाहिए। इसके साथ ही करो मे कमी होना भी अति आवश्यक है।

अन्य सुझाव—

वस्त्र मिल उद्योग की समस्याओ को हल करने के लिए राष्ट्रीय योजना आयोग ने निम्न सुझाव दिये है—(i) मशीनो की उत्पादन शक्ति का पूरा उपयोग किया जाये। (ii) वे मिलें जो घाटे पर कार्य कर रही है, उनका विस्तार करके आर्थिक बनाया जाये। (iii) साढे तीन लाख नये तकुए लगाये जाएँ। (iv) केवल श्रेष्ठ माल का निर्यात करके विदेशी बाजार में अपना स्थान बनाने का प्रयत्न किया जाये एव प्रति वर्ष १०० करोड गज कपडा निर्यात करने की अनुमति दी जाए। (v) जहा तक सम्भव हो, धागे का निर्यात नही किया जाये।

मई सन् १९५८ म भारत सरकार द्वारा नियुक्त सूती-वस्त्र उद्योग जाच समिति क अनुसार उद्योग के सभी क्षेत्रो—मिल, विद्युत करघा एव हस्त-करघा—का अभिनवीकरण किया जाये। यह काय १५ वर्षों म तीन खडो में किया जाना चाहिए। मिल उद्योग के कताई विभाग का भी विस्तार किया जाना चाहिये तथा उसको विद्युत करघा एव हस्त-करघा विभाग से मिला दना चाहिये। सिफारिश के अनुसार यह कार्य ६ वष म पूरा किया जाना चाहिये तथा इस पर ५० करोड से अधिक धन राशि के व्यय की व्यवस्था की जानी चाहिय। समिति ने आवश्यक विदेशी विनिमय मुद्रा प्राप्त करन और मिल-उद्योग मे रोजगारी बनाये रखने के लिए १०,००० लाख गज सूती वस्त्र निर्यात करने का भी सुझाव दिया है। समिति के अनुसार महीन और अधिक महीन वस्त्रो के निर्यात से भारत अधिक आय प्राप्त कर सकता है। हस्तकरघा उद्योग के लिए जो कपडे की उत्पादन मात्रा निश्चित की गई है, सिफारिश के अनुसार सन् १९६० तक उसे कायम रखना चाहिए। हस्तकरघा उद्योग को मलमल एव वायल जैसे कपडो के उत्पादन में रोका जाना चाहिये।

उत्पादकता अध्ययन—

उद्योग की उन्नति में उत्पादकता अध्ययन का भी अत्यधिक महत्व है। इसलिए प्रबन्ध एव श्रम दोनो वर्गो क हित में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे अपनी अधिक

शक्ति इस प्रकार के अध्ययन में लगाएँ। निश्चयात्मक रूप से ऐसे अध्ययन प्रबन्ध, श्रम एवं सारे उद्योग के लिए ही लाभप्रद होंगे।

यन्त्र सामग्री की देख रेख—

यन्त्र सामग्री की उचित देख रेख की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिये था, अभी तक नहीं दिया गया। मिल के उत्पादक यन्त्र को सुचारु एवं सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए यन्त्रों के हिस्सों को बदलना उचित निरीक्षण एवं देखभाल बहुत जरूरी है। इस कार्य में तान्त्रिकों को मिल के प्रबन्धकों के साथ ज्यादा से ज्यादा मदद करना चाहिये।

लागत मूल्य मे कमी एव किस्म मे सुधार—

वस्त्र उद्योग में लागत मूल्य में कमी एव किस्म में सुधार लाने के लिए आवश्यक है कि मिल उद्योग के उत्पादन, आधुनिकीकरण एव पुरातन यन्त्रों के स्थान पर नवीनतम यन्त्रों का प्रतिस्थापन किया जाये। इसमें गति लाने के लिए *एक निश्चित कार्य क्रम की आवश्यकता है। उत्पादन कार्यों में दक्ष व्यक्तियों को* मिल के प्रबन्धकों को इस बात की सलाह दी जानी चाहिये कि उद्योग में किस प्रकार से शीघ्र आधुनिकीकरण एव पुनः सस्थापन हो सकता है। इस ओर तान्त्रिकों को भी महत्वपूर्ण कार्य करना है क्योंकि वे प्रबन्ध एव श्रम को मिलाने वाली एक कड़ी है। तृतीय पंचवर्षीय योजना में तीव्र औद्योगीकरण पर बल दिया गया है, इसलिए यह *आवश्यक है कि तान्त्रिक प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था हो।*

निर्यात करना आवश्यक—

भारतीय वस्त्रों का निर्यात न सिर्फ वर्तमान स्तर पर, अपितु उसके बढ़ाये जाने के लिए निरन्तर प्रयत्न अति आवश्यक है। मिल उद्योग में सामान्य आर्थिक स्थिरता एव विदेशों से आयात की जाने वाली ४०-५० करोड़ रुपये की रुई, आवश्यक यन्त्र सामग्री एव अन्य माल के आयात के भुगतान के लिए यह आवश्यक है।

निर्यात बढ़ाने के लिये हम जिन बाजारों में भारतीय वस्त्र की माँग है, वहाँ माँग कायम रखने एव बढ़ाने के लिये तो प्रयत्न करने ही चाहियें, साथ ही साथ उन बाजारों में भी कपड़ा बेचने के प्रयत्न बहुत आवश्यक हैं, जहाँ पर हमारे यहाँ के कपड़े का विक्रय *खास बड़े पैमाने पर नहीं होता। मध्य योरोप व पश्चिमी जर्मनी जैसे देशों में जहाँ* हमारे वस्त्रों की अच्छी खासी बिक्री हो सकती है, बशर्ते कि वहाँ के बाजारों के प्रतिमानों के अनुसार हम माल निर्यात कर सकें। बिक्री बढ़ाने के नये मार्ग निकालने के लिये माल के उत्पादन में विविधता लाना, सम्मोदित माल तैयार करना एव अधिक निर्यात करना जरूरी है। हम देश की भौगोलिक स्थिति एव कुछ अन्य कारणों, जिनमें

देश में पर्याप्त रुई का उत्पादन होता है, ऐसी स्थिति म है कि अन्य देशों को उनकी आवश्यकता का कपड़ा निर्यात कर सकते ह।

उपसंहार—

आज मिलो में कपड़े का स्टॉक पर्याप्त यात्रा मे है। इस दिशा में १९५७–५८ की अपेक्षा काफी परिवर्तन हुए ह। इस समय ३ लाख बेची एवं बिना बेची हुई गांठो का स्टॉक मिलो मे है। निर्यात की दशा म भी गत वर्ष का अपेक्षा काफी सुधार हुआ है।

अन्त म उपरोक्त समस्याओ का समाधान हो जाने क बाद एव सुझावो को वाय क रूप म परिणित किय जान क बाद भारतीय वस्त्र उद्योग का भविष्य निश्चित रूप म और भी उज्जवल होगा। हम विदेशी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने में पूर्ण-रूपए समर्थ होंग एव अधिक स अधिक स्वदेश एव विदेश की माग का पूरा कर सकेंगे और वह दिन दूर नहीं है, जब हम अपने अतीत के गौरव का फिर म प्राप्त कर लेंगे।

भारत की तृतीय पचवर्षीय योजना की जो रूपरेखा ६ जुलाई, १९६० का प्रकाशित हुई है उसमें कपड़े के उत्पादन का लक्ष्य ८,४५,००,००,००० गज रखा गया है। निर्यात के लिये ८५,००,०० ००० गज का लक्ष्य इसमें अलग है। दूसरी योजना के अन्त तक सूती कपड़ का उत्पादन ५ अरब गज तक पहुँच जाने की सम्भावना है। यह आशा है कि तृतीय योजना का लक्ष्य पूर्ण होने पर प्रत्येक व्यक्ति का १७॥ गज कपड़ा प्रति वर्ष उपलब्ध होने लगेगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Trace the history of Indian Cotton Textile Industry since independence uptodate.
2. What are the present problems of our Cotton Textile Industry ? Give suggestions to solve them.

अध्याय ११

भारतीय जूट-उद्योग

(Indian Jute Industry)

प्रारम्भिक—

जूट उद्योग भारत का गौरव है। संसार के आर्थिक इतिहास में भारत के जूट उद्योग का प्रथम एवं महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। देश में उत्पादित विभिन्न प्रकार के रेशों में जो औद्योगिक कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं रूई के बाद केवल जूट का स्थान प्राप्त है। यह उद्योग सुव्यवस्थित सुसंगठित एवं केन्द्रित उद्योग है। इस उद्योग में ८३.४ करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है एवं ३ लाख श्रम जीवियों को कार्य मिला हुआ है। सम्पूर्ण देश में ११३ जूट की मिलें हैं। देश का जूट उद्योग वास्तव में निर्यात उद्योग है। भारत में निर्मित जूट के माल का लगभग ८० प्रतिशत विदेशों को निर्यात किया जाता है। अमरीका भारत के जूट निर्मित माल का सबसे बड़ा ग्राहक है इसलिये यह उद्योग डालर प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है।

भारतीय जूट उद्योग की महत्वपूर्ण दो विशेषतायें हैं—प्रथम यह उद्योग संगठित उद्योगों में एक आदर्श उद्योग है जिसमें प्रबन्ध निर्देशन एवं अन्य व्यवस्था सुनियन्त्रित है। दूसरे यह उद्योग एक स्थान पर व्यावहारिक रूप में केन्द्रित है। केवल ११ मिलों को छोड़कर जो उत्तर प्रदेश बिहार मद्रास एवं मध्य प्रदेश में हैं शेष १०२ मिलें अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियां यातायात के साधन पर्याप्त श्रम एवं सस्ता शक्ति के कारण पश्चिमी बंगाल में स्थित हुगली नदी के किनारे कलकत्ते से २५ मील ऊपर एवं २५ मील नीचे की ओर लगभग २ मील चौड़े एवं ६० मील लम्बे क्षेत्र में स्थित हैं।

विदेशी मुद्रा का उपार्जन करने की दृष्टि से जूट के द्वारा निर्मित वस्तुओं का सर्वोच्च स्थान है। देश में निर्मित समस्त जूट के माल का ८० प्रतिशत निर्यात होने के कारण हमें इसके द्वारा कुल विदेशी विनिमय के लगभग २० प्रतिशत की प्राप्ति

होती है। यद्यपि माल का अधिकांश उत्पादन देश में ही हो जाता है, किन्तु जो माल निर्यात किया जाता है उससे हमें अमूल्य विदेशी विनिमय प्राप्त होता है, जिससे हम विदेशो से आयात की हुई खाद्य एव अन्य वस्तुओ के भुगतान कर सकते है।

उद्योग का अतीत एव विकास—

देश में जूट की खेती अत्यत प्राचीन काल से होती है। पूर्व में यह उद्योग यहाँ पर कुटीर-उद्योग के रूप में सगठित था, किंतु योरोपीय देशो से जूट का व्यापार ईस्ट इ डिया कम्पनी की स्थापना के बाद प्रारम्भ हुआ। पालो से चलने वाले जहाजो के लिए रस्सी की आवश्यकता थी। इसके द्वारा बिछौने, एव बोरो का भी निर्माण होता था। सन् १७९५ से १८३० तक भारत ने भारी मात्रा में टाट के टुकडो का निर्यात किया, किंतु १९३५ में डडी चलित करघे के आविष्कार से कच्चे जूट की मांग बढ गयी। अतः कुटीर-उद्योग नष्ट होने लगा। शनैः-शनैः जूट के उद्योग को प्रोत्साहन मिला, १९वी शताब्दी के पूर्व ही स्काटलैंड का जूट-उद्योग भारत में स्थापित हुआ। प्रारम्भ में उद्योग की धीमी गति से उद्योग के असफल होने का भय था, किन्तु इसके निरतर विकास ने इसे भारत का प्रमुख उद्योग बना दिया। विगत १०० वर्षो मे जूट उद्योग में यत्रो द्वारा निर्माण क्रिया प्रारम्भ हुई है।

हमारे देश में सबसे पहला जूट मिल थी रामपुर में १८५४ में स्थापित हुआ, परन्तु आर्थिक विषम परिस्थितियो के कारण कुछ समय बाद यह मिल बद हो गई। इसके बाद सन् १८१६ में भारत में एक जूट मिल की और स्थापना हुई और सन् १८८२ तक मिलो की सख्या २२ पहुँच गई, जिनमें २०,००० श्रमजीवी कार्य करते थे। इन मिलो को आर्थिक लाभ एव सफलता प्राप्त हुई, इन सभी मिलो के स्वामी अग्रेज थे। मिल-उद्योग की उन्नति से डन्डी के जूट मिलो को काफी हानि हुई। मिल उद्योग की उन्नति के कारण भारत ने अमरीका एव आस्ट्रेलिया को बडी मात्रा में निर्यात प्रारम्भ किया, जिससे जूट-उद्योग को प्रोत्साहन मिला। उपरोक्त २२ जूट कारखानो में से १७ कलकत्ते के ही समीपवर्ती क्षेत्रो में ही थे। विदेशो की बढती हुई मांग से जूट-उद्योग को प्रोत्साहन मिला। परस्पर मिलो में अस्वस्थ्य प्रतिस्पर्धा का वातावरण भी पैदा नही हुआ और सगठन भी अच्छा रहा। पटसन का उत्पादन हमारे देश की मांग की अपेक्षा विदेशो की मांग पर अधिक निर्भर करता था, यत्रो से दबाया हुआ पटसन विदेशो को निर्यात किया जाने लगा। विदेशों में पटसन से निर्मित माल की माग में वृद्धि होने से मिलों की सख्या में वृद्धि हुई। इसमें लगे श्रमजीवियो की सख्या लगभग दुगुनी हो गयी, करघो एव तकुओ की सख्या भी बढकर लगभग ढाई गुनी एव तीन गुनी हो गयी। उत्पादन वृद्धि ने उत्पादन व्यय में कमी की, साथ ही लाभ की मात्रा में वृद्धि हुई। कच्चे माल की समीपता ने उद्योग के विकास में सहयोग दिया।

यद्यपि १८९६ से १९०० के मध्य पड़े दुर्भिक्ष में इस उद्योग को क्षति उठानी पड़ी परन्तु २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कृषि की उन्नति ने पाट के धन्धे में गति प्रदान की। जूट उद्योग की समस्याओं के हल एवं उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए सन् १८८४ में जूट निर्माण संघ की स्थापना प्रतिस्पर्धा माल की खपत के लिये नये बाजारों की खोज के उद्देश्य से की गई। सन् १९०२ में इस उद्योग का नाम जूट मिल संघ रखा गया। सन् १९०५-०६ में विश्वव्यापी मन्दी के कारण पुनः उद्योग में निश्चितता आ गई इसके साथ ही जर्मनी व अमरीका आदि देशों में पटसन की स्थानापन्न वस्तुओं का प्रादुर्भाव किया जा रहा था किन्तु इसके कारण उद्योग को विशेष क्षति नहीं उठानी पड़ी। सन् १९१३-१४ तक जूट मिलों की संख्या बढ़ कर ६४ हो चुकी थी।

प्रथम महायुद्ध काल में उद्योग की दशा—

प्रथम महायुद्ध काल में जूट उद्योग अत्यन्त ही लाभप्रद स्थिति में रहा। एक तो फौजी आवश्यकताओं के लिए जूट की माँग बढ़ गई दूसरे यन्त्र सामिग्री की विदेशों से आयात बन्द हो गया जिससे नई मिलों की स्थापना एवं उनमें प्रतिस्पर्धा का डर नहीं रहा तीसरे विदेशों में भी जूट की माँग बढ़ गई। मिल मालिकों में दृढ़ संगठन था इस लिए जूट का उत्पादन पूर्ण क्षमता से किया गया। कच्चे माल का निर्यात एकदम रोक दिया एवं कारखाना अधिनियम भी ढीला कर दिया गया। सन् १९१५-१८ की इस अवधि में मिल मालिकों ने खूब लाभ कमाया। जूट की खपत भी ५५ लाख गाँठ प्रति वर्ष हो गयी जबकि युद्ध के पूर्व ४४ लाख गाँठें प्रति वर्ष की खपत थी। इसी समय मजदूरी की दर एवं पाट के मूल्य में भी विशेष वृद्धि हुई।

मन्दी के समय उद्योग—

युद्ध समाप्ति के पश्चात मन्दी का एक झोंका आया। सरकारी माँग लुप्त हो गयी किन्तु मजदूरी एवं कच्चे माल के दाम बढ़ गये। युद्धकालीन लाभ से उत्साहित होकर कुछ नई मिलों की स्थापना हुई एवं कुछ पुरानी मिलों ने अपने कार्य क्षेत्र में वृद्धि की। इस प्रकार उत्पादन वृद्धि तो होने लगी किन्तु खपत घटने से मन्दी बढ़ती गई। फसल अच्छी होने से कच्चे जूट की पूर्ति बढ़ गई जिससे मूल्य में कमी हुई। इधर कोयले की भी कमी अनुभव हुई। अस्तु जूट मिल संघ के निर्णयानुसार काम के घन्टे घटा दिये गये एवं किसी भी मिल को और अधिक विस्तार न करने का निश्चय किया गया। सन् १९३१ में काम करने के घंटों की संख्या ४० प्रति सप्ताह कर दी गई एवं १५ प्रतिशत अतिरिक्त करघे भी बन्द कर दिये। यह निर्णय सन् १९३८ तक चलता रहा। यद्यपि इस नियन्त्रण में कुछ मिलों ने सहयोग नहीं दिया फिर भी संगठन अच्छा होने के कारण स्थिति में धीरे धीरे सुधार हुआ।

द्वितीय महायुद्ध मे उद्योग की दशा—

सन् १६३६ में द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ के साथ ही देश के जूट-उद्योग को बहुत प्रोत्साहन मिला। विदेशी माँग में वृद्धि होने से, बोरे और अन्य जूट निर्मित सामान के लिए सरकार की माँग में वृद्धि होने से, उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई, फलतः कार्य अवधि पर से रोक-थाम हटाकर सभी मिलें अपनी पूरी क्षमता से ६० घन्टे प्रति सप्ताह कार्य करने लगी। १६४० तक तो उद्योग की स्थिति ठीक रही, इसके बाद माँग कम हो जाने से उद्योग में सकट की स्थिति दृष्टिगोचर होने लगी, परिणामस्वरूप कार्यावधि ४५ घन्टे प्रति सप्ताह कर दी गई। उद्योग में समय-समय पर इस प्रकार से उतार-चढ़ाव होते रहे। सन् १६४२ में जूट मिल सघ द्वारा उद्योग के विवेकीकरण का सुझाव दिया गया, सन् १६४३ मे तो कोयले की कमी के कारण कुछ मिलों को स्वय ही अपना कार्य बन्द करना पड़ा। यहाँ तक कि जौलाई के अन्तिम सप्ताह में तो सभी मिलें कोयले व विद्युत-शक्ति की कमी, यातायात की कठिनाई एव १६४३ के बगाल के अकाल के कारण बन्द रही और इसके पश्चात् जूट-उद्योग मे विवेकीकरण की नयी योजना लागू की गई, जो सन् १६४४ की जौलाई से १६४६ के मार्च तक लागू रही। इस प्रकार सन् १६४७ तक जूट-उद्योग की ऐसी ही स्थिति रही।

देश के विभाजन का उद्योग पर प्रभाव —

सन् १६४७ में देश का भारत एव पाकिस्तान के दो हिस्सो मे विभाजन होने के बाद उद्योग की स्थिति पर गभीर प्रभाव पड़ा। विभाजन से पूर्व देश मे विश्व का ६७ प्रतिशत जूट उत्पन्न होता था, किंतु विभाजन के परिणामस्वरूप जूट उत्पन्न करने वाली ७५ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान को हस्तातरित कर दी गई। भारत में प्रायः शत प्रतिशत जूट मिलें थी, किन्तु पाकिस्तान द्वारा पाट के निर्यात पर कर लगा देने के कारण, कच्चे माल के अभाव मे देश की जूट मिलें कई माह तक बन्द रही। पाकिस्तान भारत को १६४८ के एक समझौते के अनुसार ५० लाख गाँठे जूट की देता था, परन्तु यह समझौता १६४६ मे टूट गया। सितम्बर १६४६ में भारतीय रुपये का अवमूल्यन हो गया, पाकिस्तान द्वारा ऐसा नही किया गया, फलतः पाकिस्तान से कच्चा माल प्राप्त करने के लिए ४४ प्रतिशत मूल्य अधिक देना पड़ा और १६४६-५१ के बीच तो भारत-पाक के मध्य व्यापार भी रुक गया, इस कारण देश की कुछ मिलें बन्द हो गई एव कुछ की कार्यावधि में कमी करनी पड़ी। उधर पाकिस्तान जूट के निर्यात का चिटगाँव बन्दरगाह को केन्द्र बनाना चाहता है एव पाक सरकार ने ब्रिटिश विशेषज्ञो को जूट-उद्योग के विकसित करने के लिए आमन्त्रित किया है एव वहाँ नई जूट मिलें खोलने के आदेश भी दिये गये है। ऐसी दशा मे देश में जूट-उद्योग के विकास एवं कच्चे माल की आत्मनिभरता के लिए विशेष रूप से प्रयत्न किये गए है। जूट-उद्योग को सहायता प्रदान करने के लिए सन् १६५२ मे निर्यात शुल्क में कमी की जाना शुरू हुई, जो सन्

१९५६ में बिलकुल उठा ली गई। इस प्रकार सन् १९४५ से १९५५ तक के ये १० वर्ष जूट-उद्योग के लिए बहुत नाजुक थे।

विभाजन के फलस्वरूप जूट उद्योग पर आई कठिनाइयों को दूर करने के लिए अब देश को अपने कारखानों की पूर्ति हेतु स्वयं अत्यधिक मात्रा में कच्चा माल उत्पन्न करना होगा। यह हर्ष का विषय है कि बिहार, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश एवं ट्रावनकोर कोचीन आदि राज्यों में जूट की खेती को प्रोत्साहित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। अब एक पृथक विभाग के द्वारा गाँव-गाँव जाकर जूट की खेती का प्रचार किया जाता है, उत्तम बीज बाँटता है एवं खेती सम्बन्धी सभी प्रकार की जानकारी देता है एवं कृषकों को विक्रय सम्बन्धी असुविधाओं से बचाने के लिए स्थान स्थान पर उत्पन्न माल के खरीदने का प्रबन्ध करता है। जूट-उद्योग में सम्बन्धित नवीन अनुसंधान किये जा रहे हैं। इस समय उत्तरप्रदेश ने जूट उत्पादन क्षेत्र से कई सौ मील दूर होते हुए भी जो प्रगति की है, वह सराहनीय है। यहाँ तीन बड़ी जूट की मिलें हैं। कच्चे माल की पर्याप्तता के लिए यहाँ चार क्षेत्र, लखीमपुर, सीतापुर, गोंडा तथा गोरखपुर, "अधिक जूट उत्पादन" के हेतु बनाए हैं। राजकीय प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अब उत्तरप्रदेश में जूट का उत्पादन ६,००० मन पाट से बढ़कर ६,००,००० मन पाट उत्पन्न होता है। यद्यपि यहाँ का पाट घटिया किस्म का "जंगली पाट" है, किंतु अच्छे पाट के उत्पादन के लिए प्रयत्न जारी हैं। इसी प्रकार अन्य राज्यों में भी जूट उद्योग के विकास के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये जा रहे हैं।

प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग की दशा।—

योजना आयोग के द्वारा जूट उद्योग के विकास के लिए भविष्य की कोई योजना नहीं बनायी गई है, अपितु वर्तमान स्थिति को ही दृढ़ एवं ठोस बनाने का निश्चय किया गया है। आयोग द्वारा कच्चे जूट के उत्पादन पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि उसके अनुसार भारतीय जूट मिलों की उत्पादन क्षमता तो अधिक है, किंतु आवश्यकता कच्चे जूट की है। अतः सरकार द्वारा जूट उत्पादन के लिए खेती व फसल के तरीकों में सुधार, सिंचाई की उचित व्यवस्था, उत्तम बीज व खाद के वितरण एवं आर्थिक सहायता प्रदान करके विभिन्न राज्यों में समुचित प्रयत्न किये जा रहे हैं। विभाजन के समय पटसन का वार्षिक उत्पादन १·७ मिलियन गाँठें था, सन् १९५०-५१ में उत्पादन बढ़कर ३·३ मिलियन गाँठें हो गया, १९५५-५६ में ४ मिलियन गाँठों का उत्पादन था और सन् १९६०-६१ तक ५ मिलियन गाँठें उत्पादित करने का लक्ष्य है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सन् १९५५-५६ के लिये १२ लाख टन जूट के उत्पादन का एवं १० लाख टन जूट निर्मित माल के उत्पादन का लक्ष्य था। १९५६ एवं १९५७ में क्रमशः १०६३ हजार टन एवं १०३० हजार टन जूट का उत्पादन

हुआ। द्वितीय पचवर्षीय योजना में जूट के उत्पादन का लक्ष्य १९६०,६१ तक १२ लाख टन स्थिर किया गया है। सन् १९५८ तथा १९५९ में जूट का उत्पादन क्रमशः १०·६२ हजार टन एव १०.५९ हजार टन हुआ।

उद्योग की वर्तमान समस्यायें एव हल—

जूट उद्योग की वर्तमान समस्याओं के हल द्वारा ही उद्योग की उन्नति सभव है। भारतीय जूट मिल एसोसियेशन के प्रधान श्री के० डी० जालान के मतानुसार उद्योग की निम्न समस्यायें है—बढ़िया किस्म के जूट की कमी, जूट के मूल्य में कमी एव प्रतियोगिता आदि।

(१) अच्छी किस्म व सस्ती जूट का अभाव—देश के विभाजन से उद्योग के एकाधिकार की अवस्था छिन्न भिन्न हो गयी है, आज सबसे जटिल समस्या जूट के उत्पादन की है। पाकिस्तान से आने वाली जूट पर देश की मिलें निर्भर नही रह सकती है, क्योंकि न मालूम कब पाकिस्तान भारत को जूट देना बन्द करदे। आवश्यक्ता इस बात की है कि देश मे ही अच्छी किस्म का, सस्ता जूट उत्पन्न किया जावे, इसी उद्योग मे 'अधिक जूट उपजाओ आन्दोलन' प्रारभ किया गया, फलतः १५·८ लाख एकड भूमि पर ४१.४ लाख गाँठें जूट १९५५,५६ में उत्पन्न हुआ, जबकि १९४६,४७ में केवल ५·४ लाख एकड भूमि पर १३·२ लाख गाँठो का उत्पादन हुआ था। प्रथम योजना का जूट उत्पादन का लक्ष्य ५३·९ लाख गाँठे यद्यपि पूरा नहीं हो सका, फिर भी हम अब पाकिस्तान पर अधिक निभर नहीं है। इस समय देश को अपनी आवश्यकता का केवल १० प्रतिशत कच्चा जूट पाकिस्तान से आयात करना पडता है। जूट के उत्पादन के लिए किये गये प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप १९५८,५९ में जूट की फसल देश में बहुत अच्छी रही, अत॰ कच्ची जूट तथा जूट निर्मित माल के भाव गिर गये। सरकार द्वारा जूट उत्पादक विभिन्न राज्यों की गति विधियो का एकीकरण करने के लिये एव केन्द्रीय देख रेख सगठन स्थापित किया गया है। यह सगठन जूट-उत्पादन के कार्यक्रम को कार्य रूप देना है, प्रति एकड अधिक उपज करने एव फसल की किस्म आदि सुधारने का भी ध्यान रखता है। यह सङ्गठन जूट उद्योग से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण कार्यों को करता है। यदि इस वर्ष किसानो को कच्ची जूट का उचित मूल्य नही मिल पाया तो फिर जूट का उत्पादन देश में कम हो सकता है।

यद्यपि पाट उत्पादन के नवीन क्षेत्रो में जलवायु सम्बन्धी (जैसे–सूखा, बाढ, आदि) कठिनाइयाँ भी एक प्रधान समस्या है। फिर भी सरकार कृत्रिम वर्षा, बाढ नियन्त्रण, उन्नत बीज एव खाद द्वारा जूट की फसल प्रति एकड बढाने के लिये प्रयत्न कर रही है।

(२) जूट की स्थानापन्न वस्तु का भय—विज्ञान ने आज के युग में बहुत प्रगति की है अतः विकसित देशों में जूट की स्थानापन्न वस्तुओं का निर्माण किया है। अब उपभोक्ताओं का माल देने के लिये उत्पादन की नई नई प्रणालियों का विकास हुआ है। जूट के स्थान पर अब एक ऐसी वस्तु का उत्पादन किया जाने लगा है जो कपड़े के समान है एवं जूट के बोरों की जगह उपयोग में आती है। अन्य देशों में जूट के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले नये रेशे खोज निकाले गये हैं तथा नवीनतम उपकरणों में पूर्ण जूट मिल खोले जा रहे हैं ऐसी स्थिति में यदि ये जूट की स्थानापन्न वस्तुएँ जूट से सस्ती प्राप्त होने लगीं तो इस उद्योग के नष्ट हो जाने का भय है। अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि जूट निर्मित माल का उत्पादन बढ़ाया जाय उसके गुणों में सुधार किया जाय तथा विभिन्न एवं नवीन क्षेत्रों में उसके प्रयोग के लिये अनुसंधान किये जायं।

(३) प्रतियोगिता—देश के विभाजन के परिणामस्वरूप जूट उत्पन्न करने वाली ७५ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान को सौंप दी गई और वहाँ की सरकार इस उद्योग को हर प्रकार से प्रोत्साहित कर रही है नवीन उपकरणों से सुसज्जित कारखानों का निर्माण किया जा रहा है एवं इस सम्बन्ध में ब्रिटिश विशेषज्ञों द्वारा भी सहायता दी जा रही है। अतः निश्चित है कि वहाँ की मिलें भारत की अपेक्षा अधिक कार्य करेंगी तथा वहाँ जूट की भी अधिकता है। भारत को पाकिस्तान से कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा और हो सकता है कि हानि भी उठाना पड़े। इसलिए सरकार को अधिक मात्रा में जूट उत्पन्न करने के लिये कारखानों में आधुनिकतम उपकरणों के प्रयोग पर बल एवं अच्छी से अच्छी किस्म की जूट उत्पन्न करने के प्रयत्न करना चाहिये।

(४) आधुनिकीकरण—जूट उद्योग में आधुनिकीकरण के प्रयत्न विगत कई वर्षों से हो रहे हैं। सरकार ने उद्योग में आधुनिकीकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया है। इस समय जूट उद्योग को सहायता प्रदान करने में सरकार को ४० करोड़ रुपया की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है एवं ८ हजार श्रमिकों की बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ेगा फिर भी ऐसी यंत्र सामग्री को बदलने की व्यवस्था की गई है जो या तो उत्पादन के बिल्कुल अयोग्य है या जिसके प्रयोग में उत्पादन व्यय अधिक आता है। उद्योग आधुनिकीकरण की ५० प्रतिशत योजना पूर्ण कर चुका है। सरकार द्वारा उद्योग को राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा सहायता प्रदान करने की भी व्यवस्था की है। जूट उद्योग के आधुनिकीकरण के लिये राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा ३१ मार्च १९५९ तक ४.५९ करोड़ रु० का ऋण दिया गया जिससे जूट मिलों में आधुनिकीकरण का कार्य पूरा करने में बहुत सहायता मिली है तथा कई मिलों ने तो भविष्य की योजनाएँ भी बनाली

है। आशा है कि दो या तीन वर्षों में उद्योग आधुनिकीकरण योजना का ७५ प्रतिशत पूर्ण कर लेगा। यद्यपि उद्योग में सम्पूर्ण रूप से आधुनिकीकरण की आवश्यकता है किन्तु मिलों के कताई बुनाई विभाग में नवीनतम उपकरण होना बहुत आवश्यक है क्योंकि इससे उत्पादन लागत में कमी के साथ काम भी अच्छा होगा।

(५) जलवायु सम्बन्धी कठिनाई—देश के विभाजन के बाद जूट का उत्पादन अधिक मात्रा में करना बहुत आवश्यक है। उद्योग में कच्चे माल में आत्म निर्भर होना है, इसके लिये किये गये प्रयत्नों में जूट उत्पादन के जो नये क्षेत्र बनाये गये हैं वहां जलवायु सम्बन्धी (जैसे—सूखा, बाढ़, अनावृष्टि आदि) कठिनाइयों की एक प्रधान समस्या है। इनके हल के लिये कृत्रिम वर्षा, बाढ़ नियन्त्रण, उत्तम बीज एवं खाद का प्रयोग करना बहुत आवश्यक है जिससे प्रति एकड़ फसल अधिक बढ़ाई जा सके।

(६) पाकिस्तान का असंतोषजनक व्यवहार—भारत एवं पाकिस्तान के बीच ठीक सम्बन्ध नहीं होना भी जूट उद्योग की प्रगति में बाधक सिद्ध हुआ है। पाकिस्तान ने दोनों देशों के मध्य हुए समझौता को कभी पूरा नहीं किया। ५ अगस्त १९५२ को नई दिल्ली में हुआ एक समझौता भी पूरा न हो सका जिससे भारतीय व्यापारियों में निराशा छा गई। समझौते के अनुसार भारत की आशा थी कि २½ रु० प्रति मन का विवेचनात्मक लाइसेंस शुल्क (Discriminating License Fee) जोकि पाकिस्तान ने लगा रखा था, हटा दिया जायेगा परन्तु इसके विपरीत पाकिस्तान द्वारा समझौते को तोड़ा गया। यही नहीं पाकिस्तान अन्य देशों को निर्यात को जाने वाला जूट की गांठों पर निर्यात कर ३ रु० प्रति मन प्राप्त करता था और भारत से पौने चार रु० प्रति मन निर्यात कर वसूल करता था। अतः पाकिस्तान के इस असंतोषजनक व्यवहार से पाकिस्तानी जूट का निर्यात करने एवं उसके द्वारा वस्तुएं तैयार करने में बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

(७) मुद्रा सम्बन्धी कठिनाई—२१ सितम्बर १९४९ को भारत ने संयुक्त राज्य अमरिका के डालर के सम्बन्ध में अपने रुपये का अवमूल्यन किया। स्टर्लिंग क्षेत्र के सभी देशों ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया परन्तु पाकिस्तान ने इन सबके विपरीत अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं करने का निश्चय किया। परिणामस्वरूप पाकिस्तान को १०० रु० के स्थान पर भारत द्वारा १४४ रु० दिये गये। इस प्रकार भारत द्वारा पाकिस्तानी माल निर्यात करने के लिये ४४ प्रतिशत मूल्य अधिक दिया गया। भारत अपने जूट के मिल के दाम नहीं बढ़ा सकता, क्योंकि ऐसा करने से भारतीय निर्यात व्यापार पर प्रभाव पड़ता। विवश होकर पाकिस्तानी जूट का निर्यात भारत की जूट मिल एसोसियेशन द्वारा कम कर दिया गया। इससे उद्योग को बड़ी हानि उठानी पड़ी और आज भी हानि उठानी पड़ रही है।

निःसंदेह इस अभाव को पूरा करने के लिये जूट टैक्नालाजिकल इन्स्टिट्यूट ने

कन्नाय जूट समिति के संकेत पर अलसी के छिलके से रेशा निकालने की कला में विकास किया है इस रेशे को जूट में मिलाते हैं। किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता क्योंकि स्थानापन्न रेशे का मूल्य अधिक है।

(८) विदेशी प्रतिस्पर्धा का भय— भारतीय जूट उद्योग की एक बहुत बड़ी समस्या विदेशी माल विशेषकर जूट की स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा की है। विश्व के विभिन्न देशों में जूट की स्थानापन्न वस्तुओं के निर्माण में काफी प्रगति हुई है एवं देश के विभाजन के बाद तो इन देशों को और भी प्रोत्साहन मिला है। भारतीय मिलों की उत्पादन क्षमता भी कम हो गई है अतएव अपेक्षाकृत अन्य देशों का जूट मिल उद्योग काफी उन्नति कर रहा है। पाकिस्तान भी जूट निर्माण के लिये प्रयत्न कर रहा है ऐसी परिस्थितियों में भारत को सावधान होकर कार्य करना चाहिये।

(९) पाट के मूल्य का प्रश्न—जूट के दामों में अन्य स्थानापन्न वस्तुओं के मूल्य की अपेक्षा जो अधिक वृद्धि हुई है उसका एक कारण यह भी है कि पाकिस्तान से आयात किये गये पाट के मूल्य में वृद्धि हो गई है। सन् १९४७ में अंतिम दिनों में पाकिस्तान की सीमा से बाहर जाने वाले पाट पर वहाँ की सरकार द्वारा जूट पर कर लगा दिया तथा पाकिस्तान से आयात की गई जूट पर मौसम के कारण नमी अधिक होने से १६४ लाख रु० की हानि हुई। दूसरे श्रम शक्ति में भी कमी हुई। भारतीय मजदूरों की कार्य करने की शक्ति कम होने के कारण १ मजदूर का कार्य ४ मजदूर करते हैं। अतः इन सब कारणों का उद्योग पर कुप्रभाव पड़ा। अन्य देशों में आधुनिकीकरण की तीव्र गति की अपेक्षा भारत में यह गति बहुत कम हो गई क्योंकि उपरान्त कारणों से उद्योग की आय पर बुरा प्रभाव पड़ा था।

अतः यदि हमने उद्योग के यन्त्रानिवीकरण एवं आधुनिकीकरण के लिए उचित प्रयत्न नहीं किये तो लागत मूल्य में कमी नहीं आ सकती इसके लिये सरकार द्वारा जूट के माल पर निर्यात कर की दर भी कम करना आवश्यक है जो भारतीय रुपये के अवमूल्यन के बाद बहुत बढ़ गई है। साथ ही सरकार निर्यात की कोटा पद्धति को समाप्त करे। हाँ वह अभी बना रहे जो विदेशों से हुए द्विपक्षीय समझौते की पूर्ति के लिये आवश्यक हो।

पटसन जाँच आयोग—

उपर्युक्त समस्याएं सुलझाने के लिए सरकार द्वारा एक पटसन जाँच आयोग नियुक्त किया जिसने उद्योग के विकास के लिये अनेक सुझाव दिये। सरकार द्वारा आयोग की यह सिफारिश मानली गई कि भविष्य में पटसन की पैदावार बढ़ाना व अच्छी किस्म में सुधार करने के लिये प्रयत्न किया जाना अधिक आवश्यक है।

इसके अनुसार सरकार ने नई मिलों को स्थापन की आज्ञा नहीं देने की भी

निश्चय किया है क्योंकि वर्तमान मिलों में ही पूरा काम नहीं है अब हमारा लक्ष्य सब प्रथम यह होना चाहिये कि वर्तमान मिलों को पूरा काम मिले। आयोग का यह सिफारिश भी स्वीकार कर ली गई है कि पटसन के विक्रय के बारे में बम्बई के ईस्ट इंडियन काटन एसोसियेशन की तरह पटसन के लिये भी एक व्यापारिक संगठन कायम किया जाये।

सरकार ने जूट उद्योग का ध्यान भी आयोग के सुझावों की ओर आकर्षित किया है। दूसरी अन्य बातों के साथ इन सुझावों में से कलकत्ते में पटसन के गोदामों का उचित उपयोग काम के घंटे बढ़ाकर सप्ताह में ४८ घंटे करने विविध प्रकार का माल बनाने तथा उद्योग के विकास एवं उन्नति के लिए अपने ही साधनों पर निर्भर रहने के लिए विशेष रूप से जोर दिया गया है। अपने ही साधनों पर निर्भर रहने के लिये उद्योग को कम लाभांश रखने की सलाह दी गई है।

सुझाव—

अच्छे कारखानों में उत्पादन किया जाये—जूट उद्योग के युक्तियुक्त संगठन करने के उद्देश्य से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि जो कारखाने अक्षम हैं जिन में पुराने घिसे हुए यंत्र लगे हैं उनमें होने वाले उत्पादन को ऐसे कारखानों में किया जाये जो आधुनिकतम यंत्र सामिग्री से सुसज्जित हों। इस ओर पिछले दो वर्षों में विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। उपरोक्त विधि के अपनाने से न तो कुल उत्पादन में कोई कमी आई है और न ही श्रमिकों की संख्या को कम करना पड़ा है। इस प्रकार का परिवर्तन भारतीय जूट मिल एसोसियेशन द्वारा निर्धारित कार्य के समय सम्बन्धी समझौते के अनुसार कार्य करके किया गया है। इस समझौते के अनुसार एक मिल के लिये निश्चित किये गये साप्ताहिक करघा घण्टे दूसरे मिल को दिये जा सकते हैं। यह समझौता जूट उत्पादन की विश्वव्यापी माँग पर उत्पादन नियमन कर देता है। उत्पादन का एकीकरण करने एवं अत्यधिक उत्पादन को रोकने में भी यह समझौता विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुआ है।

उद्योग में आधुनिकतम यंत्र सामिग्री से पूर्ण कारखानों में उत्पादन करना कितना महत्वपूर्ण है यह इस बात से प्रकट है कि इससे उत्पादन लागत में कमी आ जायेगी एवं अन्य देशों से प्रतिस्पर्धा करने में उद्योग समर्थ हो जायेगा।

उत्पादनों की विविधता—विश्व के कुछ देशों में जूट उद्योग का अब विकास होने के कारण व अपना कार्य अपने देश की उत्पत्ति से ही चला लेते हैं। अब इन देशों में भारत का जूट निर्यात होना बन्द सा हो गया है। इसके साथ ही जूट की निर्मित वस्तुओं के स्थान पर अन्य चीजों से निर्मित वस्तुओं का प्रयोग होने लगा है। यद्यपि विश्व में अनाज का पैदावार बढ़ी है फिर भी उस अनुपात में जूट निर्मित बोरियों की माँग नहीं बढ़ी। इन सब बातों का ध्यान में रखते हुए आज जूट उत्पादन

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ६५ लाख गांठ कच्चा पटसन पैदा करने का लक्ष्य रखा गया है। इससे हम जूट उद्योग के लिये कच्चे माल की उपलब्धि के बारे में बहुत कुछ निश्चित हो जायेंगे।

इस प्रकार जूट-उद्योग को पूर्णरूपेण प्रोत्साहन दिया जा रहा है और वह दिन दूर नहीं जब भारत को विश्व में जूट-उत्पादन का एकाधिकार पुनः प्राप्त होगा।

STANDARD QUESTION

1. Discuss briefly the effects of partition on India's Jute Mill Industry. How have they been tackled ? What are your suggestions in this connection

---

अध्याय १४

भारतीय लोह एवं इस्पात उद्योग

(Indian Iron And Steel Industry)

प्रारम्भिक—

आज के युग में किसी देश की औद्योगिक उन्नति की कसौटी यह है कि वहां कितना इस्पात बनता है और उपयोग में आता है। विश्व के आधारभूत उद्योगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण लोहा एवं इस्पात उद्योग है। वर्तमान युग यन्त्रीकरण का युग है क्योंकि चाहे कोई भी उद्योग हो सभी में यन्त्रों के प्रयोग द्वारा उत्पादन एवं विकास किया जाता है और यन्त्रीकरण लोहा एवं इस्पात उद्योग पर ही निर्भर है। किसी देश की आर्थिक प्रगति, विकास एवं राजनैतिक सुरक्षा के लिये भी इस उद्योग द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है। लोहे की महिमा के सम्बन्ध में ऐसा कहते हैं कि — सोना महल की रानी के लिये आवश्यक है, चाँदी महल की दासी के लिए और तांबा एक साधारण कारीगर के लिए किन्तु लोहा इन सभी धातुओं का स्वामी है।

इस उद्योग में अमरीका का प्रथम स्थान है जहां १० करोड़ टन से भी अधिक इस्पात बनता है। रूस में ५ करोड़ टन एवं ब्रिटेन तथा जर्मनी में २ करोड़ टन प्रति वर्ष इस्पात का उत्पादन होता है। यह उद्योग भारत में बहुत तीव्र गति से विकास कर रहा है। उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल देश में पर्याप्त मात्रा में है। योरोपीय देशों में स्वीडन को छोड़कर अन्य कोई ऐसा देश नहीं जहां भारत के समान उच्च कोटि का लोहा एवं कोयला मिलता हो। हमारे देश में लोहे के भण्डार साधारण नहीं हैं केवल सिंहभूमि जिले में ही २ हजार करोड़ टन से भी अधिक लोहा है जिसका प्रयोग यदि वर्तमान गति से हो तो भी वह २००० वर्ष तक चल सकता है। भारत ने द्वितीय योजना के अन्त तक ६० लाख टन प्रति वर्ष इस्पात तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

लोहे एवं इस्पात उद्योग भारत का अति प्राचीन उद्योग है। आज से ८७

हजार वष पूर्व भी भारतीय लोह का उपयोग जानते थे। भारतीय इस्पात का माल विदेशो में भी जाता था एवं अपनी सुन्दरता के लिये लोकप्रिय था। दिल्ली का लौह स्तम्भ हमारे देश के प्राचीन इंजीनियरो की कला का जीता जागता उदाहरण है। *इस उद्योग की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए प्रोफेसर विल्सन ने लिखा है कि—* 'लोहे को ढलाई तो इंगलैंड में थोड़े ही वर्षो से प्रारम्भ की गई है परन्तु हिन्दू लोग लोहा गलाने ढालने तथा इस्पात बनाने की कला का ज्ञान अत्यन्त प्राचीन काल से रखते है।

आधुनिक समय में इस उद्योग का इतिहास विगत १५० वर्षो का है। इसके पूर्व कुछ योरोपियो ने इस उद्योग को चलाने का प्रयत्न किया पर वे सफल न हो सके। इन प्रयत्नो में सन् १७७७ में झरिया की कोयले की खान के निकट एक लोहे एवं इस्पात का कारखाना खोला गया जो दो वर्ष के बाद बन्द हो गया। इसके बाद सन् १८ ७ में बारकपुर आयरन स्टील क० की स्थापना की गई ६ वर्षो तक यह कारखाना कार्य करता रहा फिर इसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने खरीद लिया। दो वर्ष के बाद इस कारखाने का नाम बदलकर दी बंगाल आयरन एण्ड स्टील कम्पनी रखा एवं कारखाने का आधुनिकीकरण भी किया गया। यह कारखाना इस्पात उत्पादन में ना असफल रहा किन्तु इसमें आधुनिक पद्धति से पिग आयरन का उत्पादन किया जाने लगा।

आधुनिक काल में लौह एवं इस्पात उद्योग की नींव डालने का श्रेय श्री जमशेद जी नौसरवान जी टाटा को है जिन्होने सन् १९०४ में जर्मनी एवं अमेरिकन विशेषज्ञो द्वारा देश के मध्य प्रान्त की जाच करवाई। सरकारी विभाग से स्वीकृति लेकर विदेशो में भ्रमण करके एवं अन्य अनेकानेक कठिनाइयो को पार करने के पश्चात कारखाना प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया किन्तु यह कारखाना जिस स्थान पर स्थापित करना था वह कोयले एवं लोहे की खानो में समान दूरी पर था अतः अस्वीकार कर दिया गया। तत्पश्चात श्री पी० एन० बसु की सहायता से निरीक्षण आदि करा कर मयूरभंज (उड़ीसा) में सन् १९११ में जिस स्थान पर कारखाने का प्रारम्भ किया गया वही स्थान आज जमशेदपुर के नाम से प्रसिद्ध है। इस कारखाने का नाम दी टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (T sco) रखा गया इस कारखाने में कार्य प्रारम्भ होने के बाद सन् १९१२ में इस्पात तैयार होने लगा। टिस्को (T sco) आज भारत ही नहीं वरन् दुनिया का गौरव है

प्रथम महायुद्ध में उद्योग की स्थिति—

सन् १९१४ में योरोपीय महासमर का प्रारम्भ लौह इस्पात उद्योग के लिए स्वर्ण अवसर लाने वाला सिद्ध हुआ। इस समय देश की मांग में वृद्धि हुई एवं विदेशो से लौह इस्पात का आयात कम हो गया। इस समय टाटा द्वारा अत्यधिक लाभ कमाये

पूर्ति मन्त्रालय द्वारा बताया गया कि वार्षिक उत्पादन २५ लाख टन होना चाहिए, मूल्य पर नियन्त्रण रखा जाना चाहिये एवं उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान करना चाहिये। सरकार ने उद्योग को निम्न रूप में उत्पादन बढ़ाने के लिए सहायता दी— टाटा को १० करोड़ रु०, बंगाल स्टील कार्पोरेशन को ३ करोड़ व इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को १ करोड़ रु० ऋण के रूप में दिया गया।

युद्धोत्तर काल में उद्योग का उत्पादन गिर गया एवम् निर्यात कम हो गया। इसके अनेक कारण है, जैसे—कोयला प्राप्त करने में कठिनाई, मजदूरी बढ़वाने के लिए श्रमिकों द्वारा हड़तालें आदि और यातायात की असुविधा, इत्यादि। फलतः देश में विदेशी विनिमय की हानि उठानी पड़ी। देश के अन्दर प्रान्तीय कोटे कम कर दिये गये, व विकास की योजनाएँ खटाई में पड़ गयीं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में उद्योग—

देश के विभाजन के बाद हमारे देश में बनी राष्ट्रीय सरकार ने लोहा एवम् इस्पात उद्योग की उन्नति एवम् विकास का भार अपने ऊपर ले लिया। प्रथम पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार ने उद्योग को विशेष सहायता देने का यत्न किया। योजनानुसार सरकार ने सन् १९५६ तक सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) में ३० करोड़ रु० खर्च करने एवम् निजी उद्योगपतियों को उनकी विकास योजनायें कार्यान्वित करने के लिए ४६ करोड़ रु० देने का निश्चय किया। सरकार को उद्योग की उत्पत्ति निम्न ढंग से बढ़ने की आशा थी—

सन् १९५०-५१ में उत्पत्ति		सन १९५५-५६ में उत्पत्ति
गला हुआ लोहा—	१७·८ लाख टन	१६.५ लाख टन
तैयार स्पात—	१०·३५ ,, ,,	१२·८ ,,

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सरकार द्वारा ५ लाख टन इस्पात पिंड तैयार करने की क्षमता वाला एक कारखाना स्थापित करने का कार्यक्रम रखा गया था, किन्तु उस समय विदेशी सहयोग प्राप्त करना कठिन था। अन्त सन् १९५३ में दो जर्मनी की क्रुप्प व डेमग फर्मों के सम्मिलित सहयोग से एक कारखाने के निर्माण का समझौता किया गया। यह कारखाना 'हिन्दुस्तान स्टील लि०' के नाम से प्रारम्भ हुआ तथा इस पर १० करोड़ रु० व्यय किया गया। सरकार द्वारा, देश में लोहे एवम् इस्पात का उत्पादन बढ़ाने के लिए १ जनवरी सन् १९५३ को स्टील कार्पोरेशन ऑफ बंगाल तथा इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का एकीकरण (IISCO and SCOB Marger) किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग—

भारत की विकास योजनाओं के साथ ही साथ देश में लोहे एवम् इस्पात की मांग में भी वृद्धि हुई, अतः भारत सरकार ने उद्योग के महत्व को समझकर इस द्वितीय

पंच वर्षीय योजना में महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस उद्योग पर ४३१ करोड़ रुपया व्यय करने का निश्चय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत उद्योगों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने तथा नये कारखाने खुलने का भी निश्चय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत स्वयं सरकार ने तीन नये कारखाने खोले हैं—प्रथम रूरकेला (उड़ीसा) द्वितीय भिलाई (मध्य प्रदेश) एवम् तृतीय दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल)। भिलाई का कारखाना रूस सरकार की सहायता से स्थापित किया गया है। रूरकेला इस्पात कारखाने की प्रथम धमन भट्टी का कार्य ३ फरवरी १९५९ को एवम् भिलाई इस्पात कारखाने की धमन भट्टी का कार्य दिनांक ४ फरवरी १९५९ को प्रारम्भ हो गया। दुर्गापुर इस्पात कारखाने को धातु कर्म सम्बन्धी बढ़िया किस्म का कोयला उपलब्ध कराने के लिये पश्चिमी बंगाल द्वारा स्थापित कोयला भट्टी संयंत्र का मार्च १९५९ में उद्घाटन हुआ।

योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा स्थापित नवीन कारखाने

(१) रूरकेला (उड़ीसा)—

कलकत्ते से ४७ मील दूर नाव और कोयल नदियों के संगम पर स्थित रूरकेला जहाँ से कलकत्ता बम्बई रेल लाइन जाती है एक छोटा सा गाँव है। यहाँ पर सरकार द्वारा इस्पात का कारखाना बनाया जा रहा है जिसमें १० लाख टन इस्पात बनाया जायगा किन्तु इसके पश्चात् में थोड़ा सा विस्तार करके इसका उत्पादन १८ लाख टन तक किया जा सकेगा। योजनानुसार इसकी उत्पादन क्षमता २० लाख टन रखी गई है।

३ फरवरी १९५९ को रूरकेला इस्पात कारखाने की प्रथम धमन भट्टी का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था कि "रूरकेला भिलाई एवम् अन्य योजनाएं हमारी महत्वाकांक्षाओं की प्रतीक हैं। हमने हितकारी राज्य की स्थापना का संकल्प किया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपना घर हो और उसे पर्याप्त भोजन तथा कपड़ा मिले। ये भारी उद्योग उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रथम प्रयास हैं। मुझे आज रूरकेला कारखाने के उद्घाटन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मुझे आशा है कि इस कारखाने से हमें अपने हितकारी राज्य का स्वप्न पूरा करने में बहुत मदद मिलेगी।"

राष्ट्रपति ने आगे कहा कि इस क्षेत्र में खनिज काफी मात्रा में है। रूरकेला और अन्य छोटे कारखानों में इनका उपयोग होगा। राष्ट्रपति ने आशा प्रकट की कि कुछ समय बाद यह जर्मनी के प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र रूर का मुकाबला करने लगेगा। रूरकेला कारखाने एवं हीराकुड बांध से इस क्षेत्र के लोगों की उन्नति होगी। यहां नये बाँध के कारण इस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति भी सुधरेगी

रूरकेला कारखाने के समीप ही पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है । खनिज लोहा प्राप्त करने के लिये यहाँ से ४५ मील दूर बरमुग्रा में नई खान खोदी जा रही है । इस कारखाने के लिये कोयला बिहार की करगली, बोकारो एवं भरिया की खानों से प्राप्त किया जायेगा । करगली में कोयला धोने का कारखाना भी स्थापित किया जायेगा । इसके अलावा कारखाने के लिये चूने के पत्थर की व्यवस्था हाथीबाडी और बीरमित्रपुर में किया जा रहा है, जो कारखाने से १५ मील दूर है ।

वर्तमान में इस्पात दो तरीकों से बनाया जाता है, प्रथम खुली भट्टियों द्वारा, यह तरीका बहुत प्राचीन है एवं दूसरा एल० डी० प्रणाली द्वारा, यह तरीका बिलकुल नया है । इस तरीके के द्वारा कम खर्च होता है, स्थान कम घिरता है, सयन्त्र आदि कम लगते हैं और उत्पादन भी अधिक होता है । साथ ही उत्पादकों से उर्वरक और अन्य रासायनिक पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं, किंतु इस प्रणाली के द्वारा उत्तम किस्म का कार्बन, टेन्साइल और विशेष प्रकार का इस्पात शायद न बनाया जा सके, इसलिये खुली भट्टियों द्वारा भी इस्पात बनाना अति आवश्यक है । रूरकेला कारखाने में पहले तरीके से २,५०,००० हजार टन इस्पात बनाया जायेगा तथा दूसरे एल० डी० तरीके में ७,५०,००० हजार टन इस्पात बनाया जायेगा । इस कारखाने में कुल उत्पादन ७,२०,००० टन प्रतिवर्ष होगा तथा इस कारखाने पर १७० करोड़ रु० के लगभग व्यय किये जायेंगे ।

(२) भिलाई (मध्य प्रदेश)—

दिनांक ४ फरवरी १९५९ को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भिलाई कारखाने की धमन भट्टा का उद्घाटन करते हुए कहा कि—"कारखाने का यह आरम्भ देश की आर्थिक स्थिति को बदलने तथा अपने अनन्त प्राकृतिक साधनों का उपयोग करके लोगों के रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाने की हमारी आशाओं का प्रतीक है । मैं समझता हूँ कि वह दिन दूर नहीं, जब देश के लोगों के ये प्रयत्न फलदायी होंगे । उन्होंने कहा कि यह विशाल कारखाना उज्वल भविष्य के प्रति देश के विश्वास और बाधाओं को पार करके आगे बढ़ने का निश्चय प्रतीक है । भारी उद्योग खड़े करने के हमारे कार्यक्रम में इन इस्पात कारखानों का महत्वपूर्ण स्थान है । कल मैंने रूरकेला का उद्घाटन किया और आज इस भिलाई कारखाने का उद्घाटन कर रहा हूँ । ये दोनों दिन भारत के औद्योगीकरण के इतिहास में अविस्मरणीय रहेंगे ।

नागपुर से १५६ मील दूर बम्बई कलकत्ता की मुख्य रेल्वे लाइन पर स्थित है भिलाई । अभी लगभग १७ माह पूर्व ही इसका कार्य प्रारम्भ किया गया था और इस छोटीसी अवधि में भिलाई कारखाने की योजना ने काफी तरक्की की है । भिलाई कारखाने में ७,७०,००० टन इस्पात की मिलें तैयार की जायेंगी, जिनसे रेल की पटरियाँ और स्लीपरें, इमारतों में काम आने वाला सामान तथा चद्दरें आदि बनाई

जायगा। योजनानुसार कारखाने का विस्तार कर इसकी उत्पादन क्षमता को २५ लाख टन इस्पात की सिल्लों तक बढ़ाया जा सकता है

इस कारखाने के लिये राजहरा की खानों से खनिज लोहा मंगाया जायगा यह भिलाई से ६० मील दूर है। कोयला बिहार की करगली, बुकारा एवं भरिया तथा मध्य प्रदेश की कोयला की खानों से आयगा। चूने का पत्थर भिलाई से १२ मील दूर नन्दनी की खानों से लिया जायगा

भिलाई इस्पात कारखाना रूस के सहयोग से खोला जा रहा है। रूस के द्वारा इस कारखाने को आर्थिक तथा निश्चित सहायता दी जा रही है। वह इसके लिये ६२ करोड़ १० लाख रु० के मूल्य की मुख्य मशीन तथा अन्य यन्त्रादि ढाई प्रतिशत सूद के हिसाब से दे चुका है। इसका भुगतान १२ सालाना किस्तों में किया जायगा। कुछ यन्त्र रूस से नगद भी खरीदे गये हैं। समझौते के अनुसार रूस तथा भारत पर काम का बटवारा इस प्रकार है

रूस—

(१) योजना की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करना, नक्शा बनाना और कारखाना खड़ा करने का कार्यक्रम तैयार करना

(२) मुख्य मशीन तथा अन्य सामान आदि देना

(३) मशीन लगाने तथा चालू करने में निश्चित सहायता देना

(४) रूस में भारतीयों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना तथा भारत में भी इन्जीनियरों तथा कारीगरों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करना।

भारत—

(१) कारखाने के लिये ऊबड़ खाबड़ जमीन को चौरस बनाना

(२) कारखाने के लिये उपयुक्त स्थान की प्रारम्भिक जाँच करना

(३) रूसी विशेषज्ञों की देख रेख में यन्त्र आदि लगाना

(४) रूस से आने वाले सामान को बन्दरगाह से निश्चित स्थान तक लाने की व्यवस्था एवं भारत में मिलने वाले सामान की पूर्ति (Supply) की व्यवस्था करना।

(५) कारखाने के श्रमिकों के लिये बस्तियाँ तथा सड़कें एवं रेल की पटरी बिछाने की व्यवस्था।

(६) कारखाने तक बिजली और पानी पहुँचाने की व्यवस्था और

(७) कच्चे माल की पूर्ति।

इस कारखाने का निर्माण कार्य एक भारतीय मुख्य इन्जीनियर के हाथ में है। इस कारखाने पर लगभग १२० करोड़ रु० व्यय होगा एवं इसका वार्षिक उत्पादन

७ ७० ००० लाख टन होगा। भिलाई इस्पात कारखाने में १२ अक्तूबर १९५९ में इस्पात का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। यहां ११ अप्रैल १९६० तक १ लाख टन इस्पात तयार हो चुका है।

(३) दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल)—

दुर्गापुर का इस्पात कारखाने का निर्माण अन्य दोनों कारखानों के बाद प्रारम्भ हुआ फिर भी काम विधिवत एवं अपेक्षित शीघ्रता से चल रहा है। इस कारखाने के निर्माण में कुछ ब्रिटिश फर्में भी सहयोग दे रहा है। दुर्गापुर कारखाने की लागत के लिये ब्रिटेन के बैंकों का एक सिंडीकेट ११५ लाख पौंड और ब्रिटिश सरकार १५० लाख पौंड दे रहा है।

दुर्गापुर कारखाने के लिये बोकारो तथा झरिया की खानों का कोयला उपयोग में लाया जायेगा। चूने का पत्थर बीरमित्रपुर तथा हाथीबाड़ा क्षेत्र से मंगाया जायगा। दुर्गापुर में दामोदर घाटी निगम १ लाख ५० हजार किलोवाट क्षमता का एक ताप बिजली घर बना रहा है। इसके अलावा कारखाने का अपना १८ हजार किलोवाट की क्षमता का ताप बिजली घर काम करेगा

दुर्गापुर के इस इस्पात कारखाने पर १३८ करोड़ रु० के लगभग व्यय करने का अनुमान है। इस कारखाने का वार्षिक उत्पादन ६ ६० ००० टन होगा।

भारत के केन्द्रीय इस्पात एवं ईंधन मन्त्री सरदार स्वर्णसिंह ने लोकसभा में वक्तव्य देते हुए कहा कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ६० लाख टन इस्पात पिंड बनाने का लक्ष्य है। इन इस्पात पिंडों में से ४५ लाख टन का तैयार सामान बनाया जायेगा। दूसरी योजना के अंतर्गत जमशेदपुर बर्नपुर भद्रावती कारखानों का बढ़ाने की व्यवस्था की गई है। जमशेदपुर में २० लाख टन बर्नपुर में १० लाख टन और भद्रावती में १ लाख टन इस्पात बनाने का लक्ष्य रखा गया है।

इस प्रकार सरकारी एवं निजी दोनों क्षेत्रों का सम्मिलित उत्पादन ६० लाख टन होगा जिसमें से इस्पात का ४५ लाख टन तैयार माल बनाने और बिक्री के लिये ७ लाख ५० हजार टन ढलवां लोहा बनाने का लक्ष्य पूरा हो जायगा।

उद्योग की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य—

देश में लोहे एवं इस्पात के लगभग १३६ कारखाने बिहार बंगाल मद्रास उड़ीसा मध्य प्रदेश आदि राज्यों में केन्द्रित हैं। इस उद्योग में लगभग ८६ हजार श्रमजीवी कार्य करते हैं। इस समय निजी क्षेत्र में हमारे देश में टिस्को इस्को तथा मैसूर की संयुक्त संस्था एवं मैसूर आयरन वर्क्स भद्रावती—तीन प्रमुख कारखाने लोहे एवं इस्पात का उत्पादन कर रहे हैं। इन सब की उत्पादन शक्ति १८ ७८ ००० टन ढलवां लोहा व १७ ५०० टन इस्पात है। इन उत्पादकों

की पूंजी ६४ करोड़ रुपया है। सन् १९५६ तक हमारी माँग २५ लाख टन तक पहुंच चुकी है किन्तु इस समय तक देश में इस्पात का उत्पादन बहुत कम है।

दूसरी योजना के अन्त तक टाटा इस्पात के कारखाने का उत्पादन ८ लाख टन से बढ़कर प्रतिवर्ष १५ लाख टन हो जायगा और इस पर ८४.६ करोड़ रु० व्यय होगा। इसी प्रकार इण्डियन आयरन एण्ड स्टील वर्क्स की उत्पादन क्षमता भी ३ लाख टन से बढ़ कर ८ लाख टन हो जायगी और इस पर ४२.५ करोड़ रु० व्यय होगा। रूरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर के नवीन स्थापित कारखानों में १९६०-६१ तक २० लाख टन तैयार इस्पात तथा ४.४ लाख टन कच्चा लोहा उत्पन्न होने लगेगा।

देश मे लौह एव इस्पात का उत्पादन

	वर्तमान उत्पादन (टनों में)	१९६०-६१ का लक्ष्य (टनों में)
१—वर्तमान कारखानों की बढ़ान में		
टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	७ लाख ८० हजार	१५ लाख
इण्डियन आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	३ लाख ३० हजार	८ लाख
मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	३० हजार	१ लाख
२—सरकारी क्षेत्र के नये कारखानों में—		
रूरकेला	—	७ लाख २० हजार
भिलाई	—	७ लाख ७० हजार
दुर्गापुर	—	८ लाख
कुल उत्पादन	११ लाख ४० हजार	४६ लाख ९० हजार

उद्योग की समस्याएँ—

भारतीय लौह एवं इस्पात उद्योग की निम्नलिखित मुख्य समस्याएँ हैं—

(१) वित्त—इस उद्योग को नए कारखाने लगाने तथा पुराने कारखानों को ठीक करने के लिए बहुत धन की आवश्यकता है। इस कार्य के लिये ३.१५ करोड़ डालर का एक ऋण विश्व बैंक से प्राप्त किया गया है।

(२) श्रम—उद्योग के सम्मुख दूसरी मुख्य समस्या श्रम की है। श्रमिक कार्य तो करना चाहते हैं, परन्तु वे ऊंची मजदूरी लेकर कार्य करने को तैयार होते हैं। श्रम की कार्य क्षमता में भी कोई वृद्धि नहीं हुई है।

(३) सरकारी नीति—सरकार की इस उद्योग के प्रति कोई सन्तोषजनक नीति नहीं है। सरकार निजी पूँजी को अधिक प्रोत्साहित नहीं करना चाहती, वह उसको शंका की दृष्टि से देखती है। इस कारण से उद्योगपति अपना धन उद्योग में लगाने से डरते हैं।

(४) **श्रेष्ठ कोयले का अभाव**—उद्योग के लिये आवश्यक श्रेष्ठ कोयले का अभाव है। भारत में श्रेष्ठ कोयला (कोकिंग) बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है। साथ ही यहाँ पर अच्छे कोयले का प्रयोग रेलगाडियो को चलाने में भी किया जाता है।

(५) **कर्मचारियो का प्रशिक्षण**—नव निर्मित इस्पात के प्रत्येक कारखाने के लिये ६७० इन्जीनियर तथा अन्य उच्च निरीक्षक एव कर्मचारियों की आवश्यकता होगी, इसके साथ ही ६३०० कारीगर एवं शिक्षित मजदूर भी चाहिये। भारत में योग्य कारीगरो, इन्जीनियरो, श्रमिकों, कर्मचारियो का अभाव है, क्योंकि इस उद्योग का विकास हुए यहाँ अधिक समय नही हुआ है। अतः उद्योग के लिये कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने की भी महत्वपूर्ण समस्या है।

इस समस्या के हल के लिये निजी क्षेत्र में प्रयत्न जारी हे। सरकार की ओर से २४१ इन्जीनियर रूस में प्रशिक्षण प्राप्त करने भेजे गये है, कुल ६८३ इन्जीनियरो को प्रशिक्षण देना है। रूरकेला एव दुर्गापुर कारखानो के लिये फोर्ड फाउन्डेशन की सहायता से अमरिका में बहुत से इन्जीनियरों को प्रशिक्षण दिया जायेगा। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत बिटेन में भी ३०० इन्जीनियरो को दुर्गापुर कारखाने के लिये प्रशिक्षण किया जायगा।

जमशेदपुर में भी प्रशिक्षण का एक विशाल केन्द्र चल रहा है, जिसमें विदेशों को जाने के पूर्व इन्जीनियरो को प्रशिक्षण दिया जायेगा। इस प्रकार सरकार इस समस्या की ओर पूरा ध्यान दे रही है।

(६) **उत्पादन की लागत**—इन कारखानो में निर्माण पर जो अधिक खर्च पड रहा है, उससे तैयार इस्पात की लागत भी अधिक पड़ेगी। इन कारखानो में पूँजी अधिक लगने के कारण उत्पादन लागत अधिक पडेगी। किन्तु इस समस्या को सचालन लागत कम करके हल किया जा सकता है। नये कारखानों में नये यन्त्रो को चलाने से कम मनुष्यो की आवश्यकता होगी। इनका अच्छा सगठन होने की आशा है, फलतः पूँजीगत लागत अधिक होने पर भी उत्पादन लागत के बराबर ही पडेगी।

(७) **विवेकीकरण एव आधुनिकीकरण**—उत्पादन की लागत की समस्या को सुलझाने के लिये उद्योग का विस्तार एव नवीनीकरण किया जाना चाहिये। उत्पादन व्ययों मे अभिनवीकरण एव वैज्ञानिक प्रबन्ध के द्वारा भी कमी की जा सकती है। हमारी औद्योगिक नीति भी ऐसी होनी चाहिये, जिससे उद्योग का पर्याप्त विकास हो सके। फोर्ड फाउन्डेशन की रिपोर्ट के अनुसार बिना विवेकीकरण के भारतीय श्रमिकों की कार्य-क्षमता एव दक्षता का अनावश्यक रूप स ह्रास होता है। आधुनिकीकरण

के अभाव में वे वर्तमान टेक्नोलाजी का सदुपयोग नहीं कर पाते। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में भी टिकना कठिन हो सकता है। आधुनिकीकरण के विरोध में श्रम संघों की जो दलील है वे पुरानी थोथी प्रतीत होती है और उनका दृढ़ता के साथ सामना किया जाना चाहिये। हाँ यह अवश्य है कि विवेकीकरण के परिणामस्वरूप जिन श्रमिकों की छटनी की जाये उनको रोजगार देने की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिये।

(८) कर की समस्या—गणतन्त्र की करारोपण नीति भी भारतीय उद्योगपतियों को निरोत्साहित किया है। सन् १९४८ की अपेक्षा आज भारत सरकार ने सम्पत्तियों पर मूल्य ह्रास की दर को काफी बढ़ा दिया है और इसके लिये भारत सरकार बधाई की पात्र है परन्तु फिर भी हमारे उद्योगपति यह अनुभव करते हैं कि आय कर व सुपर टैक्स की दर बहुत ऊंची है जिसके कारण वे विस्तार व आधुनिकीकरण से सम्बन्धित योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में पूंजी का संचय नहीं कर पाते।

लोह इस्पात परामर्शदाता समिति—

६ फरवरी सन् १९६० को लौह एवं इस्पात परामर्शदाता समिति का प्रथम बैठक हुई जिसमें देश के विभिन्न इस्पात उद्योगपतियों ने इस उद्योग से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार विमर्श किया। एसोसियटेड चैम्बर आफ कामर्स के सरवाल्टर मिचिल मोरा (Sir Walter Michelmora) ने श्रेष्ठ किस्म के कोयले एवम् विद्युत के अभाव पर प्रकाश डाला। उन्होंने संकेत किया कि रेलों के विद्युतिकरण से लौह एवम् इस्पात उद्योग के लिये शक्ति की समस्या अत्यन्त गहन हो जायगी क्योंकि उत्पादित विद्युत शक्ति का उपयोग रेलों में अधिक किया जायेगा। टिस्को के श्री स्लीटस (Mr sleetus) ने यह सुझाव दिया कि इस्पात के मूल्यों में कुछ कमी की जानी चाहिये। इन्होंने इस बात की भी सिफारिश की कि देश में इस्पात उद्योग की उचित प्रगति के लिये एक उच्च स्तरीय वैधानिक बोर्ड स्थापित किया जाये। इण्डियन आयरन एण्ड स्टील के श्री कपूर (Mr Kapoor) ने सुझाव दिया कि देश में इस्पात के उपभोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन करने से भी बहुत लाभ हो सकता है। मद्रास के स्वामी एम० एल० ए० ने बतलाया कि भारत के देहातों में इस्पात की बहुत कमी है अतएव इसके उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। फैडरेशन आफ इण्डियन चैम्बर एण्ड कामर्स इन्डस्ट्रीज के श्री जी० एल० बंसल (Mr G L Bansal) ने इस्पात के वितरण पर से नियन्त्रण हटाने का सुझाव दिया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग—

जुलाई १९६० में प्रकाशित तृतीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार ऐसी आशा है कि सन् १९६५-६६ तक तैयार इस्पात का उत्पादन ६.७ मिलियन टन हो जायेगा। यद्यपि इंगोट का उत्पादन (Ingot Prodouction) लगभग ४.५ मिलियन टन हो

जायेगा । इसके अतिरिक्त १॥ मिलियन टन पिग आयरन के उत्पादन की आशा है जिसका उपयोग विक्रय के लिए किया जायेगा ।

उपसंहार—

६ फरवरी १९६० को हुई लौह इस्पात परामर्शदाता समिति की प्रथम बैठक में केन्द्रीय इस्पात एवम् ईंधन मन्त्री सरदार स्वर्णसिंह ने बतलाया कि देश में लौह एवम् इस्पात उद्योग का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है । उन्होंने यह संकेत किया कि निकट भविष्य में एक ऐसी संस्था का निर्माण किया जायेगा जो निजी व राजकीय क्षेत्र के इस्पात के कारखानों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं (विशेषतः कच्चे माल की पूर्ति से सम्बन्धित) की सन्तुष्टि का ध्यान रखेगा ।

उसी अवसर पर उद्योग मन्त्री श्री मनुभाई शाह ने बतलाया कि अभी तक दो वर्ष तक हमारे पास इस्पात का आधिक्य नहीं होगा क्योंकि हमारी निजी आवश्यकताएँ ही बहुत हैं । यदि थोड़ा बहुत आधिक्य होगा भी तो उसके लिए हमको निश्चय बाजार मिल जायेगा । जिन जिन देशों से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध हैं उनमें से अनेक ने ५ से ७ वर्ष के लौह इस्पात आयात करने की इच्छा प्रकट की है । इससे उद्योग के उज्जवल भविष्य का आभास मिलता है ।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the origin progress present position and problems of the Iron and Steel Industry
2. Discuss the principal problems of the Indian Iron and Steel Industry and suggest remedies to solve them

अध्याय १३

भारतीय चीनी उद्योग

(Indian Sugar Industry)

प्रारम्भिक—

भारत के संगठित उद्योगों में सूती कपड़े के बाद चीनी उद्योग ही प्रमुख उद्योग है। यह उद्योग भारत का प्राचीन उद्योग है। जब विश्व के अन्य देश इस वस्तु के नाम से अनभिज्ञ थे, उस समय भारत इससे परिचित था। ईसा से चार शताब्दी पहले कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में गन्ने के द्वारा चीनी बनाने तथा शीरे से मध्य-सार निकालने की विधियों का उल्लेख किया है। १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सूरत व कालीकट से बहुतसी सफेद चीनी और खाँड निर्यात की जाती थी। बनारस की निर्मित चीनी विदेशों में बड़ी प्रसिद्ध थी और देश की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी इससे होती थी। आज भी हमारे देश में संसार की कुल गन्ने की उपज का २६% भाग होता है। सरकार को इस उद्योग से लगभग ८५ करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है। उद्योग की कार्यशील पूँजी भी १०० करोड़ रुपये से अधिक है।

उद्योग का विकास—

भारत में आधुनिक चीनी उद्योग की नींव सन् १८९९ में पड़ी, जबकि सरकार ने चीनी के आयात पर कर लगा दिया। इस प्रतिबन्ध की आड़ में चीनी के आधुनिक कारखाने उत्तरी भारत में खोले गये, परन्तु शताब्दी के आरम्भ में प्रायः यह कुटीर उद्योग अवनति कर रहा था। उत्पादन के ढंग अवैज्ञानिक थे, जिससे कीमत अधिक होती थी और भारत अन्य देशों की स्पर्धा में लड़खड़ा रहा था। प्रथम युद्ध तक आते-आते भारत इसके उपभोग के लिये आयात पर निर्भर हो गया। सन् १९०१-१९२० के मध्य भारतीय गन्ने की नस्ल सुधारने तथा उत्पादन में वृद्धि करने के प्रयत्न किये गये। सन् १९०१ में गन्ने के सुधार के लिये एक अनुसन्धान केन्द्र खोला गया। सन् १९१९,२० में एक चीनी समिति भी स्थापित की गई। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप गन्ने का उत्पादन बढ़ा।

उद्योग को संरक्षण—

सन् १९२९ में चीनी समिति ने सिफारिश की कि आधुनिक ढंग के चीनी के कारखाने खोलने पर विचार किया जाय और विदेशों से चीनी आयात करने में करोड़ों,

रुपयों की हानि को रोका जाय। फलतः भारत सरकार ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये टैरिफ बोर्ड नियुक्त किया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर सरकार ने इस उद्योग को सन् १९३१ से १५ वर्ष के लिए संरक्षण देना स्वीकार किया। संरक्षण के लिए चीनी के आयातों पर पहले सात वर्षों के लिए ७½ प्रति हन्डरवेट के हिसाब से संरक्षण कर लगाया। सन् १९३१ में चीनी का आयात १० लाख टन था, जो सन् १९३६,३७ में १९ हजार टन रह गया। आयात के कम होने से जो हानि हुई उसकी पूर्ति के लिए आबकारी कानून के अन्तर्गत २।) प्रति हन्डरवेट की दर से कर लगाया गया। गन्ने के क्षेत्र में भी वृद्धि की गई। सन् १९३१,३२ में भारत में कुल ३२ चीनी मिलें थीं, किन्तु अगले पाँच वर्षों में ही संख्या ३२ से बढ़कर १३० हो गई। निम्न-लिखित तालिका से चीनी उद्योग का आभास मिलता है—

चीनी उद्योग का विकास*

वर्ष	मिलों की संख्या	गन्ने का उत्पादन (हजार टनों में)
१९३१ ३२	३२	१,६०
१९३८-३९	१३२	६,४२
१९४५ ४६	१३८	९,२३
१९५०-५१	१३९	११,१६
१९५५-५६	१४३	१८,५६
१९५६-५७	१६६	२०,३९
१९५७ ५८	—	२०,०६
१९५९	—	२०,८४

उत्पादन बढ़ते ही चीनी का मूल्य बहुत बढ़ गया तथा पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा बहुत बढ़ने लगी।

सन् १९३७ में भारतीय चीनी संघ की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य पारस्परिक प्रतिस्पर्धा दूर करना, बिक्री का नियमन एवं उद्योगों को सङ्गठित करना था। इसके प्रयत्नों से चीनी बाजार की दशा में सुधार हुआ। सरकार ने कुछ कानून बनाये, जिससे सब मिलें इस संघ की सदस्य बन जायें। जब मूल्य अनुचित रूप से बढ़ने लगे, तो सरकार ने इससे मान्यता हटा ली। फलतः अधिकांश मिलें इस संघ से हट गईं और पारस्परिक प्रतिस्पर्धा फिर बढ़ गई। सन् १९४० में उद्योगपतियों की प्रार्थना पर सरकार ने संघ को फिर मान्यता दे दी, किन्तु निम्न शर्तों का पालन आवश्यक कर दिया—संघ केवल बिक्री एजेन्ट का कार्य करेगा, प्रत्येक मिल के लिए

* India 1960, Page 313.

और मद्रास म अनक मह्कारा चाना मिल स्थापित हान का आशा ^ । सन् १९६० ६१ तक चीनी मिना क विस्तार पर २^ करा^ रुपया मगानो क आधुनिकाकरण पर ८० करोड रुपया तथा नई चाना मिला पर २४ करा^ रुपया यय हागा । क^द्रीय सरकार प्रदेशीय सरकारा का गन्न का उ पा^न व^ न व किस्म सुधारन क लिए ४० लाख रुपये का ऋण व ३० लाख रुपय का अनुदान दगा । भवि य म मिठास के आधार पर हा गन्न का श्रणीकरण एव मू^य नर्धारित किया जावेगा जिसम किसान अच्छी कोटि का गन्ना पदा कर । द्वितीय याजना काल म इस उद्योग क विस्तार क कारण २१ ००० अतिरिक्त व्यक्तिया को रोजगार मिल जावगा । यह आशा का जाती है कि द्वितीय याजना की पूर्ति होन तक भारत चीना क सम्बन्ध म स्वय ता आ म निभर होगा हा साथ ही निर्यात भा क^ा सकेगा और देशवासिया का सस्ता चीनी मिल सकेगी । सन् १९५० ५१ म ग न का उत्पादन ५ ६ मि० टन था जो ६० ६१ म ७ २ मि० टन हो जायगा । प्रस्तावित तृतीय याजना क अनुसार सन् १९^६ तक गन्न का उत्पा^न ९ २ मि० टन हान की आशा है तथा चीनी का उत्पा^न लगभग ३ मि० टन हो जायगा ।

चीनी उद्योग की विशेष समस्याए—

चीनी उद्योग के सामन निम्न समस्याय हैं जा इसकी प्रगति म बाधक हैं—

(१) **प्रति एकड पदावार मे कमी**—उत्तरा भारत म प्रति एकड लगभग १४ १५ टन और दक्षिणी भारत म २० टन गन्ना उगाया जाता है जबकि जावा तथा हवाई द्वीपो म यह क्रमश ५६ और ^२ टन है । इसके अतिरिक्त ग्रामीण भाई देश के अधिकतर गन्न का गुड बना लेते हैं । इससे चीनी उद्योग को पर्याप्त क्षति होती है ।

(२) **गन्ने की निम्न कोटि**—भारतीय गन्न की किस्म भी बहुत खराब है । ग न म चीनी की मात्रा कम होती है । सन् १९४७ ४८ म ग न से केवल ८ ८५% चीनी निकलती थी जबकि जावा फारमूसा और क्वीसलैंड म क्रमश ^१ ४६ १२ ०५ और १४ २२% निकलता है।

(३) **गन्ने का अधिक मूल्य**—भारत म सरकार ग न का मू^य निश्चित करती है जो चीनी की कुल लागत का ६०% होता है अत मिल मालिको का कथन है कि उनको कुछ भी बचत नही होती । ग न का इतना अधिक मूल्य इसलिए है कि भारत म चीनी मिला क पास अपन ब ब^ खत नहा हैं वरन् किसाना पर निर्भर रहना पडता है जो उसे छोट छोटे अनार्थिक खतो पर उगाते हैं । मूल्यों के सम्बन्ध म एक समस्या यह भी है कि गन्न का मूल्य केवल तौल के आधार पर तय किया जाता है किस्म से उसका कोई सम्बन्ध नही होता । इसस मिलो को काफी हानि होती है ।

(४) **त्रुटिपूर्ण स्थानीयकरण**—दश का अधिकाश मिल उत्तरा भ रत म स्थित

चानी उद्य ग की विकास सभा के सुझाव पर भारत सरकार न एक प्रतिनिधि मडल श्रास्ट्रेलिया व इडोनेशिया भेजा था जिसकी रिपोर्ट सन् १९५६ म प्रस्तुत हुई। इसम चानी उद्योग का उन्नति के लिये निम्न सुझाव दिये गये है—

(१) चानी के मू य पर कन्ट्रोल न लगाया जाय क्योकि भारत तथा श्रास्ट्रेलिया का अनुभव है कि इसक कारण उद्योग के विकास म बाधा पडती है। (२) चीनी व गुड का बिक्री के लिये कोई केन्द्रीय सभा नियुक्त न की जाय। (३) चानी के मूल्य तथा बटवारे पर जा नियत्रण है तथा सरकार जो २५ % चीनी को नियत्रित मूल्य पर बेचन का अधिकार रखता है श्रार चीनी को विदेशा मे भगाकर उसका निश्चित मू य पर बेचती है उस नीति का वतमान म कायम रखा जाय। (४) सरकार को चाहिए कि हर वष गुड की न्यूनतम कीमत निश्चित कर जिससे गुड व चीनी क मू य तथा उ पत्ति म समतोल रहे। यदि गुड का मू य बाजार म निश्चित मूल्य स कम हो तो स्वय उस खरीद तथा गुड क खरीदन क लिय गुड के मुख्य उ पादन क्षत्रो म सहकारी समितिया स्थापित करे। (५) ग न का मू य निश्चित करन म परामश देन क लिय सरकार को एक स्थायी सलाहकार समिति नियुक्त करनी चाहिये जिसम गन्ना उग न वालो व मिला के बराबर बराबर प्रतिनिधि हो श्रौर जिसका सभापति एक जज हो। ( ) गन्ना उगान वालो का ग न का मूल्य उसक गुण के अनुसार दिया जाय। (७) ग न की प्रति एकड उपज को बढान क लिए निम्न उपाय किय जाय— (अ) गन्न का उन्नत बीज बाना तथा गन्न को बामारिया स बचाना (आ) श्रास्ट्रेलिया तथा जावा मे बढिया ग न का आयात करना श्रौर उस भारत म उत्पन्न करन का प्रय न करना। गन्न के विभिन्न प्रकारा को अलग अलग मिट्टियो तथा जलवायु म उगा कर रखना व किसाना को उगान क लिये देना (इ) चीनी उत्पन्न करन क विषय म एक अखिल भारतीय पत्रिका चालू करना (ई) एक से अधिक मिलो वाले क्षत्रो म गन्न क कीडो तथा रोगो को रोकन वाले बोड स्थापित करना। (८) शीरे पर अनुभव करके देखना कि वह कहाँ तक पशुश्रो क उपभोग म काम आ सकता है उसम शक्ति उत्पादन की सम्भावनाय देखना व खोई मे पट्टा बनाना। शीरे का उचित बटवारा करन क लिये उसे केन्द्रीय सरकार के आधान लाना। (९) ग न के भाग को साफ करन क लिय अनुसधान करना जिससे वह बहुत से उद्योगो के काम आ सक। (१०) श्रास्ट्रेलिया की भाति गन्ना उगान तथा चीना बनान वालों की सस्थाय स्थापित करना। (११) भारतीय ट्रेड मिशनो तथा दूतावासा द्वारा विदेशा म गुड के बाजार तलाश करना। (१२) चीनी अनुसधान का स्थापना करना व अनुसधान करन वाले लोगो का विदेशा म भेजना। (१३) फल वाला वस्तुश्रा तथा दूध वाले उद्योगा का कम मूल्य पर चाना देना। (१४) वतमान मिलो का बढाना न कि नई मिल स्थापित

करना। (१५) विदेशों से खनी के औजार तथा चीनी उत्पन्न करने वाली मशीनों का बिना किसी आयात कर लगाये मँगाना।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the origion, progress, present position and problems of the Indian Sugar Industry
2. Discuss the principal problems of the Indian Sugar Industry and suggest remedies to solve them.

अध्याय १८

भारतीय कोयला उद्योग

(Indian Coal Industry)

प्रारम्भिक—

काला हीरा अर्थात् कोयला आधुनिक उद्योग का जन्मदाता है। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण औद्योगिक ईंधनों में से एक है। सारे ब्रिटिश कामनवेल्थ में भारत दूसरे नम्बर का एवं विश्व में आठवें नम्बर का उत्पादक है। कोयला निकालने के सम्बन्ध में सबसे पहला अधिकृत वर्णन सन् १७७४ का है जबकि वारेन हेस्टिंग्ज ने मेसर्स सुमनर एण्ड हीटले को बंगाल में कोयले की खानों से कोयला निकालने की आज्ञा प्रदान की। यह प्रयत्न असफल रहा और इसके बाद सन् १८१४ तक अन्य कोई प्रयत्न न हुआ। इसी वर्ष रानीगंज के निकट कोयला निकालने का काम पुनः आरम्भ किया गया। सन् १८६० तक वार्षिक उत्पादन ३,००,००० टन हो गया। सन् १८५५ में कलकत्ते की ई० आई० रेल्वे ने इस क्षेत्र का उपभोग किया और इस प्रकार उद्योग का भविष्य सुरक्षित हो गया। सन् १८६८ के बाद कोयले के उत्पादन में प्रशंसनीय प्रगति हुई। निम्नलिखित आंकड़े इस बात के साक्षी हैं —

कोयले का उत्पादन*

वर्ष	उत्पादन (लाख टनों में)
१८६८	५
१८८०	१०
१८९०	[illegible]
१९००	[illegible]१
१९१०	१२०
१९[illegible]०	१८०
१९३०	२[illegible]८
१९४०	२५१
१९४६	२६०
१९५०	३२०
१९५५	३८[illegible]
१९५६	३९४
१९५७	४३४
१९५८	४५[illegible]
१९५९	[illegible]६४

* India 1960 Page 3[illegible]0

सन् १८७१ मे रेल्वे ने गिरडीह क्षेत्र में प्रवेश किया और शताब्दी के आरम्भ से इस क्षेत्र का उत्पादन ३० लाख टन हो गया। भरिया के क्षेत्र में भी विकास हुआ डाल्टन गज क्षेत्र, रीवा राज्य, मध्य प्रान्त, हैदराबाद, आसाम और बिलोचिस्तान के क्षेत्र भी विकसित हुए १९००,०१ में आयात १,४२,४६७ टन० निर्यात ५,४२,०-२३ टन और उत्पादन ६१,१८,६९२ टन था, जिसका लगभग ९०% बगाल व बिहार मे प्राप्त हुआ। सन् १९१४ तक कुल उत्पादन बढकर २६० लाख टन हो गया।

प्रथम महायुद्ध और उद्योग—

बढी हुई औद्योगिक कार्यवाहियों के दबाव म कोयले की माग उसकी पूर्ति से अधिक हो गई और इस अवधि भर उद्योग का यह प्रयत्न रहा कि यह बढती हुई माँग के साथ अपनी गति कायम रखे। उत्पादन तेजी से सन् १९१८ में २०० लाख टन हो गया। इसका ८५% उत्पादन रानीगज और भरिया क्षेत्र मे प्राप्त हुआ। कोकिंग कोल की माँग एक दम बढ गयी थी, अतः बोकारो के कोयला क्षेत्र का अत्यधिक विकास किया गया। कोक के यन्त्र कुन्टी में और भरिया क्षेत्र की लोदना कोयला खान के पास लगाये गये। यही नही, कोयला-क्षेत्रों का विद्युतीकरण तेजी से किया गया और दो केन्द्रीय विद्युत स्टेशन बनाये गये।

लेकिन युद्ध काल का यह विकास सीमित था और मशीन एव यन्त्र मिलने की कठिनाई के कारण जारी न रह सका। वृद्धि का क्रम सन् १९१९ में अपने सर्वोच्च बिन्दु पर पहुच गया और इसके बाद उत्पादन में कमी आरम्भ हुई। आशावादी प्रबन्धको ने अपने लाभो को भी उद्योगो मे ही विनियोग कर दिया। युद्धोत्तर काल की अन्य घटना इडियन आयरन एण्ड कम्पनी द्वारा भट्टिया बनाना था, जिन्होंने सन् १९२२ मे काम प्रारम्भ किया। माँग में कमी होने क साथ यह कठिनाई भी हुई कि श्रम सघर्ष हुये और निर्यात व्यापार में तेजी से कमी आई। सरकार की नीति के कारण स्थिति में सन् १९३६ तक कोई सुधार नही हो सका। आर्थिक मन्दी का तत्कालीन प्रभाव मूल्य गिराना था और वास्तव में इस गिरावट के कारण ही उत्पादन में अधिक कमी हुई। सन् १९३६ के बाद औद्योगिक कार्यों म तीव्रता से वृद्धि हुई, जिनका प्रभाव यह हुआ कि कोयले की माँग पुन. बढने लगी।

द्वितीय महायुद्ध के बाद—

द्वितीय महायुद्ध ने, जो सितम्बर सन् १९३९ में आरम्भ हुआ कोयला उद्योग को पिछले दो दशा में हुई गम्भीर निराशा से उभरने की सामर्थ्य प्रदान की। माँग बढने से मूल्यो में सुधार हुआ। कोयले की कमी घटती हुई यातायात सम्बन्धी कठिनाइयों और कोयले के गिरते हुये आयात के कारण और भी अधिक अनुभव होने लगी। फिर सैनिक योजनाओं में श्रमिकों को अधिक अच्छा काम मिलने लगा, अतः उत्पादन में बडी कमी आगई। अन्त में, सन् १९४४ के मध्य तक मूल्यो पर कडा नियन्त्रण रखना

आवश्यक हो गया। इस बात का भी प्रबन्ध किया गया कि आवश्यक उपभोक्ताओं को कोयला एक योजनाबद्ध क्रम से ही प्राप्त हो। सरकार ने उत्पादन बढ़ाने के लिये कोयला क्षेत्रों में बाहर श्रमिकों की भरती करके बोनस, इनाम और अतिरिक्त लाभ-कर के सबंध में रियायतों के रूप में आर्थिक प्रलोभन देकर उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न भी किया। इन उपायों से उत्पादन में वृद्धि हुई। सन् १९५८ में लगभग ४.५२ करोड़ टन कोयले की उत्पत्ति हुई।

सन् १९५२ में भारत सरकार ने कोयला खान (संरक्षण व सुरक्षा) कानून पास किया जिसके द्वारा सरकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हो गये—

(१) कोयले की खानों की सुरक्षा व संरक्षण के लिये कार्यक्रम बनाना और उनको कार्यान्वित करना।

(२) कोयला परिषद (Coal Board) को कोयला उद्योग की समस्याओं को को सुलझाने का अधिकार देना।

(३) कोयला तथा कोक के उत्पादन पर कर लगाना

(४) कोयला उद्योग को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए तथा उसे नियन्त्रित करने के लिए नियम बनाना।

सन् १९५४ में सरकार ने एक कोयला समिति नियुक्त की थी, जिसका उद्देश्य कोयले खानों की लगान के विषय में सरकार को सलाह देना था। इस प्रकार कोयले के उत्पादन, वितरण, मूल्य निर्धारण तथा श्रमिकों के वेतन आदि पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण है।

पंचवर्षीय योजना में कोयला उद्योग—

पंच वर्षीय योजना में कोकिंग कोल के सुरक्षित रखने और नान कोकिंग कोल में भण्डार की विस्तृत जाँच करने की आवश्यकता पर बड़ा बल दिया गया है। उसमें कोयले के प्रादेशिक उत्पादन और वितरण को जिसमें कोयले की गतिविधि के पुनर्संगठन को भी शामिल किया गया है पेश किया गया है। इसमें कैलोरिक मूल्य, राख और नमी तथा कोकिंग विशेषताओं के अनुसार वैज्ञानिक आधार पर कोयले के वर्गीकरण पर पुनर्विचार करने का सुझाव दिया गया। उसमें यह भी सुझाव दिया गया है कि ईंधन अनुसंधान संस्था कोक के कार्बनीकरण एवं उत्पादन, कोक ओविन के डिजायन कोयले को धोने और मिश्रित करने तथा गंधक दूर करने के सम्बन्ध में अनुसंधान करें।

द्वितीय योजना के अन्त तक ६ करोड़ टन कोयले के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। २.२० करोड़ टन कोयले के अतिरिक्त उत्पादन में से १ करोड़ टन कोयला निजी क्षेत्र में पैदा होगा। सार्वजनिक क्षेत्र में कोयले के उत्पादन की देखभाल करने के लिए अक्टूबर सन् १९५६ में स्थापित राष्ट्रीय कोयला विकास निगम (प्राइवेट) लिमि

कोयला उत्पादक सक्रिय रूप से उन व्यावहारिक उपायों के सम्बन्ध में भी सोचने लगे हैं जिससे दूसरी योजना का लक्ष्य पूरा हो सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये २.२ करोड़ टन कोयला प्रति वर्ष अधिक निकालना होगा। अतिरिक्त उत्पादन बढ़ाने के लिये विभिन्न कोयला क्षेत्रों में निम्न मात्रा में उत्पादन बढ़ाने की योजना है—

(लाख टनों में)

कोयला क्षेत्र का नाम	*सरकारी क्षेत्र*	*निजी क्षेत्र*	*योग*
रानीगंज	३६	२६.८	६२.८
झरिया		३५.०	३५.०
करनपुरा	४०	५.६	४५.६
बोकारो	१४		४.०
कोरबा	४०		४०.०
कोरिया और रीवा	२०	५.०	३[illegible].०
सिंगरैनी		१०.७	१०.७
	१५०	८३.१	२३३.१

(३) **रेलों की व्यवस्था**—यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि अतिरिक्त वार्षिक उत्पादन में से १.८ करोड़ टन कोयला इधर से उधर जाने की व्यवस्था रेल कर भी सकेंगी या नहीं। २.३ करोड़ टन कोयले में से शेष ५० लाख टन कोयले का कुछ भाग कोयला खानों पर प्रयुक्त होगा और कुछ भाग ट्रकों द्वारा ढोया जायगा। इस समय जो ३.७ करोड़ टन कोयला खानों से निकाला जाता है उसमें से रेलें ३.२ करोड़ टन कोयला ही ढोती है। वर्तमान उत्पादन में से बचा ५० लाख टन और अतिरिक्त उत्पादन में १८० लाख टन कोयला रेलों को सन् १९६० तक अधिक ढोना होगा। इस तरह २३० लाख टन कोयला अधिक ढोने की सामर्थ्य बढ़ा लेना कोई खिलवाड़ नहीं है। रेल प्रशासन की एक कठिनाई यह भी है कि जब किसी उद्योग को देश के दुर्गम भाग में स्थापित करने की योजना बनाई जाती है तो रेल विभाग से यह सलाह नहीं ली जाती कि रेल आवश्यक परिमाण में बिना कठिनाई के उस उद्योग के लिये कोयला आदि पहुंचा भी सकेगा या नहीं।

(४) **कोयला उद्योग का युक्तियुक्त संगठन**—द्वितीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य है कि कोयले का चिर प्रतीक्षित युक्तियुक्त संगठन करना, जिसकी आवश्यकता एक तो कोयले के प्रादेशिक वितरण की दृष्टि से भी है और दूसरे धातु शोधन के लिए श्रेष्ठ कोयले को सुरक्षित रखने की भी दृष्टि से है। कोयले के प्रादेशिक उत्पादन

में वृद्धि होने से रेलें निकटस्थ कोयला क्षेत्र में माल को निर्दिष्ट स्थान तक जल्दी पहुंचा सकेगी, और रेलें कोल बनान का बढ़िया कोयला बचा सकेंगी क्योकि रेल बढ़िया कोयला या तो लम्बे सफर म भाप बनान क लिय प्रयोग करती ह अथवा दुगम प्रदेशा में जान पर। जब कम दूर माल ढोना होगा तो वे योजनानुसार घटिया कोयला ही जलान लगगी। इस प्रकार कोयला उत्पादन की द्वितीय याजना क अनुसार भले ही निर्दिष्ट लक्ष्यो की पूर्ति म एक या दो वर्षों का विलम्ब हो जाये, फिर भी इससे कोयला उद्योग का काफी सीमा तक युक्तियुक्त पुनगठन हा सकेगा।

(५) **कोयला उद्योग का यन्त्रीकरण**—भारत म प्रति व्यक्ति पाली उत्पादन २ ७ टन है, जब कि सयुक्त राज्य में ६ २६ टन, जमनी म ८ ६६ टन और अमेरिका म २१ ६८ टन है। इसस प्रगट होता है कि प्रति पाली उत्पादन भारत में बहुत कम है। कोयले के मूल्य का ७५ % श्रमिका को, १५ से २०% करो को और केवल ५ १०% मालिकों का प्राप्त होता है। इसका कारण ढूंढन के लिय दूर जान की आवश्यकता नहीं है। उद्योग इस बात की बडी आवश्यकता म है कि उत्पादन का यन्त्रीकरण के विस्तृत प्रयोग से विवेकीकरण किया जाय। सन् १६५० म कोयला समिति न सुझाव दिया था कि भारत म कोयले के उत्पादन में वृद्धि करने के लिये मशीनों का प्रयोग करना परम आवश्यक है। यह भी सिफारिश की गई थी कि यन्त्रीकरण का काम एक अवधि पर फला दिया जाय और एक कोयला खान से दूसरी कोयला खान में धीरे धीरे किया जाय जिससे परिवतन एव सुधार सरल हो जाय। भारत सरकार न सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और कोल बोड को यह पता लगान का आदेश दिया है कि विद्यमान कोयला खाना म बिना अधिक बेकारी उत्पन्न किये विद्युनीकरण कि स सीमा तक किया जा सकता है। साथ ही, एक एसी शत भी लगा दी गई जिसस मालिका का यह अनिवाय हो गया है कि जब नई खान खोलन की आज्ञा मिले, तो समस्त नये विकास कायक्रम कोयला खोदन और ले जान म मशीनो का अधिक स अधिक प्रयोग करेंगे।

(६) **राष्ट्रीयकरण का प्रश्न**—राष्ट्रीयकरण क बारे में भी बहुत सा हाहल्ला मचाया गया है। हमें विश्वास है कि सरकार कवल राष्ट्रीयकरण की ही खातिर वतमान कोयला खानो का राष्ट्रीयकरण नही करगा किन्तु जब सरकार यह दख कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से काक बनान के कोयले क भण्डारा को सुरक्षित रखन के लिये क्षति पूर्ति करके कोयला खाना का अधिग्रहण आवश्यक है अथवा ५०० टन प्रति घन्टा घोन वाल विशाल कारखाना में जिसकी लागत एक करोड रुपये स अधिक होगा और जिस स्थापित करना निजी पूंजीपतिया के वश की बात न होगी प्रयोग करन के लिये कोयले का उत्पादन बढाना आवश्यक है अथवा जब सरकार बेचा जान वाली

एसी भूमि खरीदे जिसमें बढिया कोयल की खानें हा ग्रोर जिन्हे उसके मालिक प्रति योगितापूवक न खोद सकें या उन्हे खोदने में इतना खर्चा हो जा उनके साधनो से बाहर हो तो सरकार द्वारा खानें ग्रपन ग्रधिकार में लेन में किसी को कोई ग्रापत्ति नही होनी चाहिए।

(७) श्रमिको की समस्या—खानो में काम करन वाले श्रमिको की दशा भी खराब है जिसक सुधार के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। एक नये ग्रधिनियम के ग्रनुसार ग्रब कोयला खानो में काम करन वाले श्रमिको से ४८ घण्टे प्रति सप्ताह से ग्रधिक काय नही लिया जा सकता। इसमें भूमि के ऊपर काय करन वालो क लिये ६ घण्टे प्रति दिन तथा भूमि के नीचे काय करन वाला क लिए ८ घण्टे प्रति दिन का काय निर्धारित किया गया है।

STANDARD QUESTINSO

1 *Briefly trace the origin progress present position and* problems of the Indian Coal Industry

2 D scuss the *principal* problems of the Indian coal Industry and suggest remedies to solve them

---

अध्याय १५

औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन की समस्याएँ

(Problems of Industrial Finance)

प्रारम्भिक—

देश के जनसाधारण का जीवन स्तर ऊँचा करने के लिए औद्योगीकरण नितान्त आवश्यक है। औद्योगीकरण के बिना देश के आर्थिक कलेवर में सन्तुलन नहीं आ सकता। परन्तु औद्योगीकरण का मार्ग कोई पुष्पों की शैय्या नहीं है, इसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं, जिनमें से एक महत्वपूर्ण कठिनाई उद्योगों के लिए पूँजी प्राप्त करने की है। नए-नए उद्योग स्थापित करने के लिए, पुराने उद्योगों का पुनर्सङ्गठन तथा पुनर्निर्माण करने के लिए तथा युद्ध एवं मन्दी जैसे आर्थिक सङ्कटों से उद्योगों को निकाल कर उन्नत बनाने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है।

किसी भी व्यापार को, चाहे वह अल्प परिमाण पर हो अथवा वहुपरिमाण पर हो, प्रारम्भ करने एवं भविष्य में उसके विस्तार के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। पूँजी के बिना कोई व्यापार चल नहीं सकता। यह आधुनिक औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थाओं का जीवन है। पूँजी की ही कमी के कारण अनेक औद्योगिक संस्थाएँ असफल हो जाती हैं तथा व्यापार भी शिथिल हो जाता है। प्रत्येक औद्योगिक संस्था को मुख्यत: दो कामों के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है—(१) स्थाई सम्पत्तियाँ, जैसे—भूमि, मशीन, यन्त्र आदि के क्रय के लिए, जिसे अस्थाई अथवा अचल पूँजी कहते हैं और (२) अस्थायी सम्पत्तियाँ, जैसे कच्चा माल खरीदने, उसे निर्मित करने, विज्ञापन आदि दैनिक खर्चों के लिए, जिसे कार्यशील अथवा चल पूँजी कहते हैं।

भारत में सर्व प्रथम तो पूँजी का अभाव है और जो पूँजी है भी उसे औद्योगिक विकास में लगाने के लिए कोई सङ्गठित संस्थायें नहीं हैं। हमारे देश में औद्योगिक बैंकों का विकास नहीं हुआ है और देश के व्यापारिक बैंक न तो इतने साधन रखते हैं कि उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा कर सकें और न ही उन्हें इस कार्य में कोई रुचि है। यह समस्या केवल बड़े पैमाने के उद्योगों के सामने ही नहीं है वरन्

मध्यम तथा छोटे पैमाने के उद्योग भी इससे पीड़ित है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे पैमाने के उत्पादकों को कच्चा माल खरीदने के लिए वस्तु के उत्पादन व्यय को पूरा करने के लिए तथा अपने जीवन निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिये उन्हें गाँव के महाजन का सहारा लेना पड़ता है जोकि बहुत ऊँची दर से ब्याज वसूल करता है। मध्यम आकार के उद्योगों को भी अपनी आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए साहूकारों अथवा व्यापारिक बैंकों पर निर्भर रहना पड़ता है। उनकी दशा भी उतनी ही दयनीय है जितनी छोटे उत्पादकों की। बड़े पैमाने के उद्योगों की हालत भी पूर्णत सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती।

औद्योगिक संस्थाओं के लिए पूंजी के श्रोत--

भारतवर्ष में उद्योगों को निम्न साधनों से आर्थिक सहायता प्राप्त होती है —

स्थायी पूंजी—

(१) अंश निर्गमन द्वारा।

(२) ऋण पत्र निर्गमन द्वारा।

कार्यशील पूंजी—

(३) जन निक्षेप अथवा जनता की धरोहर द्वारा।

(४) बैंक से ऋण लेकर।

(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं से ऋण लेकर।

(६) विशिष्ट अर्थ संस्थाओं से ऋण लेकर।

(१) अंश निर्गमन द्वारा

अधिकांशत अंशों द्वारा ही पूंजी प्राप्त की जाती है। स्थायी पूंजी प्राप्त करने का यह अत्यन्त लोकप्रिय साधन है। स्थायी सम्पत्तियों के क्रय के लिए जो पूंजी लगाई जाती है वह स्थायी रूप से उद्योगों में फंस जाती है इसलिये उसे ऐसे साधनों से प्राप्त किया जाता है जो स्थायी रूप से उस उद्योग में लगाए रहें और वापिस निकालने पर आग्रह न करें। स्पष्टत ऐसी पूंजी अंश निर्गमन द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अंशों के निर्गमन की दशा में उद्योगों को अपनी सम्पत्ति पर बिना किसी प्रकार का भार डाले स्थायी पूंजी प्राप्त हो जाती है, अस्तु यदि उद्योग आवश्यक समझें ऋण द्वारा आवश्यकता के समय अतिरिक्त अर्थ का भी प्रबन्ध कर सकते हैं। अंशों पर लाभांश भी उसी दशा में दिए जाते हैं जब पर्याप्त लाभ होता है अन्यथा लाभांश देना अनिवार्य नहीं होता। परन्तु इतने लाभ होने हुए भी पूंजी के इस स्रोत में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अंश पूंजी एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। इसी प्रकार

यदि अशों के अधिकारो में कुछ परिवर्तन करना हो, तो कम्पनी ऐसे अशधारियों की सम्मति के बिना जिनके अधिकार प्रभावित होने हे, उनके अधिकारो में परिवर्तन नही कर सकती।

(२) ऋण-पत्र निर्गमन द्वारा

बढ़ते हुए व्यापार की पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए कभी कभी औद्योगिक सस्थाओ को ऋण लेने की आवश्यकता पड जाती है। दीर्घकालीन ऋण की प्राप्ति अधिकांशतः बन्ध (Bonds) तथा ऋण पत्रो द्वारा की जाती है। ऋण-पत्र एक प्रकार का अनुबन्धात्मक प्रलेख होना है, जिसके द्वारा ऋण प्राप्त किया जाता है तथा जिसमें मूलधन का भुगतान होने तक किसी निश्चित सामयिक अवधि में प्रतिशत ब्याज देने की प्रतिज्ञा होती है। ऋण-पत्रो के निर्गमन द्वारा उन रूढिवादी व्यक्तियो से पर्याप्त पूँजी प्राप्त की जा सकती है, जो बिना अधिक जोखिम उठाए निश्चित आय चाहते हे। अशो के निर्गमन की अपेक्षा यह साधन मितव्ययी भी है, क्योकि इस प्रकार का ऋण यदि अन्य किसी रीति से लिया जाय, तो अधिक ब्याज देना पडता है, किन्तु ऋण पत्रो पर निश्चित रूप से कम ब्याज चुकाना पडता है। इतना होते हुए भी ऋण पत्र भारत में अभी लोकप्रिय नही हुए हैं। सन् १९२७-२८ में भारत की कुल औद्योगिक पूँजी का ६०% भाग पूर्वाधिकार अशो में, ७५% साधारण अशो में और शेष ६% ऋण पत्रों के रूप में प्राप्त किया जाता है। हमारे देश में ऋण-पत्रो की अप्रियता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हे :—

भारत मे ऋण पत्र अप्रिय क्यो ?—

(१) **स्वतन्त्र बाजार का अभाव**—ऋण पत्रो के लिए हमारे देश में अन्य देशो की भांति स्वतन्त्र बाजार नही है। भारतीय विनियोगक तब तक अपना धन किसी उद्योग म नहीं लगाते जब तक उन्हे लाभ का पूर्ण आश्वासन नही होता। वे प्रायः भूमि क्रय में अथवा कृषि कार्य म रुपया लगाना अधिक उपयुक्त समझते हे। यही कारण है कि निश्चित लाभ या ब्याज वाले ऋण पत्र भी उन्हे आकर्षित नही करते। फिर भारतीय ऋण पत्र अधिक ऊँचे अधिमान के होते है, इसलिए साधारण विनियोजक की पहुंच के बाहर है। बीमा कम्पनियाँ बीमा अधिनियम की धारा २७ के कारण औद्योगिक ऋण पत्रों का क्रय नही कर सकती। भारतीय बैंक भी इस विषय में स्टेट बैंक की नीति का अनुसरण करते हे तथा विनियोग प्रन्यासो (Invest ment Trusts) का तो अभी उदय ही हुआ है, इसलिए वे औद्योगिक व्यवसायो में धन विनियोग करने में असमर्थ रहते हैं।

ऋण पत्रो पर तथा उनके हस्तान्तरण पर मुद्राक-कर भी अधिक देना पडता है, जिससे ऋण पत्रो का हस्तान्तरण स्वतन्त्र रूप से नही हो सकता। उदाहरणार्थ,

बम्बई में पृष्ठाकित होकर अथवा अन्य किसी प्रलेख द्वारा हस्तान्तरित होने वाले ऋण पत्रो पर ७ रु० ८ आ० प्रति हजार रुपया मुद्राक कर (Stamp Duty) लिया जाता है। प्रत्येक हस्तान्तरण पर इतना ही और अतिरिक्त शुल्क लगता है। वाहक ऋण-पत्रो पर निगमन के समय ही १५ रु० प्रारम्भिक शुल्क लगता है। य कम्पनी के लिए अत्यन्त भार रूप ह। इसके साथ ही विनियोक्ताओं का भी प्रत्येक हस्तान्तरण पर काफी व्यय देना पड़ता है, इसलिए भी जनता विनियोग के ऐसे खर्चीले साधन को अपनाना नही चाहती। इसके अतिरिक्त ऋण पत्रो का कम सख्या म निगमन होना भी उनके स्वतन्त्र बाजार हान में बाधक है। अभी तक केवल जूट मिला के ऋण पत्रो को छोडकर अन्य सभी कम्पनियो के ऋण पत्र जनता तक पहुँच ही नही पाये हे, क्योकि जैसे ही उनका निर्गमन होता है वैसे ही कतिपय धनी लोग उन्ह खरीद लते ह। यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी के ६० लाख रुपये के सम्पूर्ण ऋण पत्र मध्य भारत के राजप्रमुख न ही खरीद लिये थे। भारतीय ऋण पत्र अधिक मूल्य वाले होते हे, जैसे—५००), १,०००), १०,०००) के इत्यादि, अतएव सब साधारण जनता की पहुँच के बाहर होते ह।

(२) बेंकों की प्रवृत्ति—ऋण पत्रो की लोकप्रियता में बैंका का व्यवहार भी अधिक बाधक हुआ है। ऋण पत्र भी निगमित करन वाले प्रमण्डल भारतीय बैंको की दृष्टि म गिर जाते ह और उन्हे वे फिर वैसी साख सुविधायें प्रदान नहीं करते जैसे अन्य दशाओ म करते हे, क्योकि कम्पनी की सम्पत्ति पर ऋण पत्रो का पहला प्रवरण होता है, इसलिए बैंक द्वारा लिए हुए ऋण के लिए प्रतिभूति कम रहती है।

(३) निर्गमन की अनाकर्षक शर्तें—भारतीय ऋण पत्रो मे वे विशषतायें नही होती, जिनसे जनता स्वय लालायित होकर उन्ह खरीदन के लिए दौड। भारतीय विनियोगकों को उनकी विभिन्न रुचियो के अनुकूल विभिन्न विशेषता वाल ऋण पत्र उपलब्ध नही ह। अन्य देशा में ऋण पत्र विभिन्न आकर्षक सुविधाओ वाले होते हे, जैसे—वहा कुछ ऋण-पत्र प्रत्याभूतित होते है, कुछ के लिए भुगतान होने पर अधिक प्रव्याजि देने का प्रलोभन दिया जाता है, कुछ ऋण पत्रधारियो को एक या अधिक सचालक नियुक्त करने का अधिकार होता है तथा कुछ ऋण पत्र एस होते है जो साधारण अशो को रियायती दर पर खरीद सकते है, किन्तु भारत में जहाँ मुद्रा-मण्डी भी सुसगठित नही है वहाँ यह नितान्त आवश्यक है कि ऋण पत्रो के निर्गमन की शर्ते उदार एव आकर्षक हो।

(४) राजकीय अर्थनीति मे उदारता का अभाव—ऋण पत्रो की अप्रियता का कारण यह भी है कि यहा सरकार की सार्वजनिक अर्थ एव प्रशुल्क नीति उदार नही रही। भारत में विदेशी शासन की नीति यहाँ के उद्योग धन्धो को विदेशी स्पर्धा मे पर्याप्त और उचित सरक्षण प्रदान नही कर सकी। जब कभी कोई उद्योग प्रारम्भ हुआ,

भारतीय विनियोगक निश्चित लाभ अथवा सफलता के आश्वासन के अभाव म उसम पू जी लगान म हिचकते रहे । सरक्षण के प्रश्न के अतिरिक्त अन्य भी कई चीजें है जो उद्योगों म पू जी के प्रवाह को रोकता रही ह जसे—उ पादन करो का लगाना उपभोग की वस्तुग्रा के सम्बन्ध म अराष्ट्रीय ग्रायात नीति का ग्रनुसरण करना इत्यादि । ये बातें एसी है कि जिनसे यहा का ग्रौद्योगिक व्यापार प्रगतिशील नही होता ग्रौर फिर न यहा के विनियोक्ता ऋण पत्रो म धन लगाना उचित ही समझते है ।

(५) ग्रत्यधिक निगमन व्यय—ऋण-पत्रा के निगमन म व्यय भी बहुत पडता है । निगमन करते समय हा व्याज की दर भा निश्चित कर दी जाती है । ग्रभा तक ५ से ६ प्रतिशत तक यह व्याज की दर प्रचलित है । भारत म इन पर भारी व्याज के ग्रतिरिक्त जिसकी दर केवल प्रमण्डल की साख पर ही नहा वरन् निगमन के समय निगमन की मात्रा तथा ग्रभिगापन की ख्याति पर भी निभर करती है प्रारम्भिक वधानिक एव मुद्राक व्यय व ग्रभिगापन कमीशन भी देन पडते ह ग्रत कभी-कभी तो ऋण पत्र निगमन म इतना ग्रधिक व्यय हो जाता है कि कम्पनी उनका निगमन करना भी उचित नहा समझती ।

(६) सलाह देने वाली सस्थाग्रों का ग्रभाव—भारतवष म एसी कोई मान्य सस्था नही है जहा विनियोगक ऋण पत्रा के विषय म ग्रावश्यक जानकारी प्राप्त कर सक । बक ग्रवश्य ग्रपन ग्राहको को इस विषय म उचित सम्मति प्रदान करती है पर दुर्भाग्य से भारत म ग्राज भी एसे नगर है जहाँ बक नही है । स्कन्ध विनिमय विपणि (Stock Exchanges) भा केवल बन्दरगाह के शहरो म ही है ग्रतएव दूर दूर तक फले हुए विनियोगका को इनके विश्वसनीय एव स्वीकृत सदस्यो से सम्पर्क स्थापित करन के बहुत थोड ग्रवसर है ।

(३) जन-निक्षेप

भारतीय कम्पनियो की ग्रथ पूर्ति के लिए जन निक्षेप स्वीकार करना भी इस देश की ग्रौद्योगिक ग्रथ व्यवस्था की एक ग्रनोखी विशेषता रही है । जनता द्वारा कम्पनिया म निक्षेप इसलिए रख जाते थ कि बकिंग विकास की प्रारम्भिक स्थिति म जनता का विश्वास बका म इतना नही था जितना कि कम्पनियो म । ग्रथ पूर्ति की यह पद्धति बम्बई ग्रौर ग्रहमदाबाद की सूती वस्त्र मिल कम्पनिया म ग्रधिकता से पाई जाती है जिनकी कुल पूँजी का क्रमश ११% तथा ३९% जन निक्षेपा से ग्राते थ ।*
बात यह है कि जिन लोगा न इन स्थाना म उद्योग प्रारम्भ किए वे महाजन ग्रादि थ जिनम जनता का बडा विश्वास था इसलिए वे ग्रपनी बचत की राशि उन्हे व्याज

* Report of the Central Banking Enquiry Committee 1931

पर सौंप देते थ। एक बडा ग्राप्यण तो उह (नमा करन वाली को) प्रव ध ग्रभिकर्त्तत्व वतन म भाग मिलन का था। यदि प्रवन्ध ग्रभिकर्त्तागण ग्रच्छा ख्याति क हुए तो वे केवल ब्याज पर ही निक्षेप प्राप्त कर मकने हे। इस प्रकार प्राप्त की हुई पूँजी की लागत ऋण पत्रा पर प्राप्त की हुड पूँजी से कही अधिक मितव्ययी बैठता है और सबमे बडा बात तो यह है कि किसी प्रकार का प्रभाव इसम उदय नही होता क्योकि निक्षेपको का ग्र य ग्रल्पकालान ऋणदाताग्रा के समान ग्रधिकार होते हे। बम्बई राज्य के प्रमण्डल केवल ग्रपनी कायशील पूजी का भाग ही नही वरन् विस्तार एव विकास योजना की ग्रथ पूर्ति भा जन निक्षेपा क द्वारा करते हे। निम्नलिखित ग्राकडो स स्पष्ट है कि ग्रहमदाबाद का सूता वस्त्र व्यवसाय जन निक्षेपा पर काफी सीमा तक निभर है।

पूँजी का स्रोत	कुल पूजी का प्रतिशत	
	बम्बई	ग्रहमदाबाद
ग्रश पूजी	(१२१४ ला० रु०) ४६°	३१% (३४० ला० रु०)
ऋण पत्र	(२३८ ला० रु०) १०%	१% (८ ला० रु०)
प्रव ध ग्रभिकर्त्तांग्रो से	(५३२ रु०) २१%	२४% (२६४ ला० रु०)
जन निक्षेपो म	(२७३ रु०) ११%	३६% (४ ६ ला० रु०)
वको स	(२२६ रु०) ६%	४% (४२ ला० रु०)

उपर्युक्त ग्राकडो म यह स्पष्ट है कि बम्बई का वस्त्र व्यवसाय जन निक्षेपो पर कम ग्रनुपात म निभर रहता है। भारत क ग्र य ग्रौद्योगिक केन्द्रो म यह पद्धति नही पाई जाती है।

जन निक्षपो को ब्याज की दर कम्पनिया एव प्रव ध ग्रभिकर्त्ताग्रा का साख एव स्थायित्व की दृष्टि से भिन भिन्न कम्पनिया म भिन्न भिन्न होता है। शुरू में निक्षप ६ मे १२ माह की ग्रवधि के लिये रख जात थ किन्तु बाद म उनका नवकरण होता रहता था। साधारणत व्याज का दर ४½% म ६½% तक रहती है। जिन कम्पनिया का साख ग्रच्छा होती है वे कम ब्याज पर भा निक्षप ग्राकर्षित करन म सफल हो जाते हे किन्तु म दा के समय निक्षेप कम हो जाते हे। जन निक्षेप क द्वारा ग्रौद्योगिक सस्था का पूजी का कलेवर लचीला रहता है क्योकि वह निक्षेप जन क कारण बन्धक ग्रादि से मुक्त रहती है। यदि जन निक्षेप लम्बी ग्रवधि क लिए हो तो फिर कम्पनी को ऋण पत्र निगमन करन की ग्रावश्यकता नही पडती। यही नही यदि

कम्पनी को अधिक लाभ हो रहे हो, तो लाभाय न बढाते हुए लाभो का कुछ भाग सचित कोष में रखा जा सकता है, जिससे उसकी भावी विस्तार योजनाओं को बिना नवीन पूँजी के कार्यान्वित किया जा सकता है।

इतने लाभो के होते हुए भी निक्षेपों की सबसे बडी हानि यह है कि मन्दी अथवा आपत्ति के समय मे जनता भयभीत होकर उनको वापस माँग लेती है और ऐसी परिस्थिति में कम्पनी को बडी हानि उठानी पडती है तथा अर्थ सकट का सामना करना पडता है, अतएव इन्हे कभी-कभी 'अच्छे समय का साथी' कहा जाता है। यह आवश्यकता के समय के साथी '(Friends in need)' नहीं है और इसलिए इन पर पूर्णतः निभर नहीं रहा जा सकता। दूसरे सरलता एव न्यून ब्याज पर ऋण-प्राप्त किये जाने की सुविधा से पारिकाल्पनिक व्यापार का प्रोत्साहन मिलता है। इसी से औद्योगिक सस्थाये अनि व्यवसाय के प्रलोभन में फँस जाते हैं, जिससे कम्पनियो एव निक्षेपको तथा अशधारियो, सभी को हानि उठानी पडती है।

(४) बैंको से ऋण लेकर

सामान्यत. कम्पनी को प्रारम्भिक स्थायी पूँजी अश एव ऋण पत्रों के निर्गमन से ही प्राप्त करनी चाहिये। आदर्श व्यवस्था तो वह है, जिसमें न्यूनतम कार्यशील पूँजी भी इन्ही साधनो द्वारा प्राप्त की जाय। हाँ, न्यूनतम कार्यशील पूँजी के अतिरिक्त भावी पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओ को बैंक से ऋण लेकर पूरा किया जा सकता है। कम्पनी जिन बैंकों से आर्थिक सहायता प्राप्त करती है, ये प्रायः दो प्रकार के होते है—(क) व्यापारिक बैंक और (ख) औद्योगिक बैंक। भारत में जितने भी सयुक्त स्कन्ध बैंक हैं, ये सभी व्यापारिक कार्यो के लिए ही ऋण देते हैं, औद्योगिक कार्यों के लिये नही। भारत में अभी तक ऐसा कोई भी औद्योगिक बैंक नही है जो इस अर्थ की पूर्ति कर सके, अतः औद्योगिक कार्यो के हेतु औद्योगिक बैंक की स्थापना अति आवश्यक है। इस बात की सिफारिश औद्योगिक कमीशन तथा 'बैंक इन्क्वायरी कमेटी' ने भी की है।

व्यापारिक बैंक लम्बी अवधि के लिए उद्योगो को ऋण दे भी नही सकते, क्योंकि अल्पकालीन निक्षेपों से दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना सुदृढ बैंकिंग सिद्धान्तो के विरुद्ध होता है, अतएव भारतीय बैंक कम्पनियो को केवल कार्यशील पूँजी अल्पकालीन ऋणो द्वारा देते रहे है, किन्तु अल्पकालीन ऋण भी विचित्र शर्तों पर दिया जाता है। वे शर्तें निम्नलिखित है :—

बैंक ऋण की कठिन शर्तें –

(१) बैंक कम्पनी के व्यापार में लगे हुए स्टॉक का अधिकाश भाग रहन या बन्धक के रूप में रखकर ऋण दिया करते है। रहन तथा बन्धक (Pledge

and Hypothecation) में अन्तर है। जब किसी कम्पनी का स्टॉक रहन किया जाता है तो वह ऋण लेने वाली कम्पनी के गोदामों में ही एकत्रित रहता है। कम्पनी को अपने स्टॉक का विवरण निश्चित अवधि पर बैंक को भेजना पड़ता है। बन्धक रखने की दशा में स्टाक बैंक की सुरक्षा में रखना पड़ता है और जिन गोदामों में वह एकत्रित होता है, उन पर बैंक का नाम डाल दिया जाता है तथा कम्पनी का उससे कोई सरोकार नहीं रहता। स्पष्ट है कि बन्धक की शर्तें कितनी कठिन है, अतः कोई भी कम्पनी अपने स्टाक को रहन अथवा बन्धक के रूप में रखना पसन्द नहीं करती क्योंकि इससे कम्पनी की साख एवं प्रतिष्ठा पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(२) *जब किसी कम्पनी के स्टाक का रहन करके कोई बैंक ऋण दिया* करती है तो वह ऋण लेने वाली कम्पनी से एक प्रतिज्ञा पत्र लिखवाती है, जिस पर कम्पनी तथा उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता के हस्ताक्षर होते हैं। अगर कम्पनी का स्टॉक बैंक के पास बन्धक के रूप में रखा जाता है तो प्रबन्धक अभिकर्त्ता की वैयक्तिक प्रतिभूति नहीं ली जाती है।

(३) ये ऋण प्रारम्भ में प्रायः १२ माह के लिए ही दिए जाते हैं, बाद में उनका नवकरण करना बैंक की इच्छा पर निर्भर करता है।

(४) ब्याज की दर ऋण लेने वाले प्रमण्डल की साख के अनुसार कम अथवा अधिक होती है। जो कम्पनी सुव्यवस्थित होती है, उससे तो इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया की दर पर ही ब्याज लिया जाता है, किन्तु यदि किसी कम्पनी की दशा अच्छी नहीं होती तो उससे ये बैंकें १% या २% अधिक ब्याज लिया करती हैं।

(५) अगर कोई रोकड़ ऋण (Cash Credit) लेता है तो ये बैंकें दिये हुए ऋण का लगभग आधा भाग ब्याज के रूप में देने के लिए विवश करती हैं जोकि अत्यन्त कठिन शर्त है।

(६) ये बैंकें बिना किसी प्रतिभूति के ऋण नहीं देती। यदि प्रतिभूति के रूप में रखा हुआ माल निर्मित माल है तो लगभग ३०% का अन्तर ऋण राशि एवं माल के मूल्य में रखते हैं किन्तु निर्मित माल न होने की दशा में यह अन्तर और भी अधिक हो जाता है।

अस्तु स्पष्ट है कि बैंकों से ऋण प्राप्त करने में भारतीय प्रमण्डलों को कितनी असुविधाओं एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। निम्न रीति से बैंक उनकी सहायता कर सकती है —

बैंक सहायक कैसे हो ?—

(१) **जर्मन बैंक का आदर्श—**वर्तमान व्यापारिक बैंक जर्मनी के व्यापारी अधिकोषों की तरह उद्योगों की आर्थिक सहायता कर सकती हैं। जर्मनी में कम्पनी

तथा बैंक के बीच चल लेखा (Current A/c) द्वारा व्यापार होता है, जिसका सन्तुलन दैनिक न होकर सामयिक, विशेषत षटमासिक होता है, किन्तु इन चल लेखों में तथा भारतीय बैंको में पाये जाने वाले प्रचलित चल लेखो में काफी अन्तर है। वहा दोनो के बीच पहले से ही निश्चित हो जाता है कि—(अ) उद्योग अधिक से अधिक कितना ऋण बैंक से ले सकेगा, (ब) लिया हुआ ऋण कितनी अवधि के भीतर वापस करना होगा, (स) लिए हुए ऋण की प्रतिभूति क्या होगी, तथा (द) अन्य शर्तें क्या होगी। जो राशि बैंक से मिलती है वह कार्यशील पूँजी के रूप में ही प्रयोग की जानी चाहिए ऐसा अनिवार्य नहीं होता। उस ऋण राशि का उपयोग उद्योग के विकास के लिए भी किया जा सकता है। नवीन उद्योग को प्रारम्भ करने के लिए जिस अश पूँजी की आवश्यकता होती है, उसका अधिकाश भाग भी उन्ही अधिकोषो द्वारा दिया जाता है। यदि कोई एक सस्था सम्पूर्ण भार को नही सभाल पाती तो इस प्रकार की अनेक सस्थाए मिलकर उत्तरदायित्व का अपने ऊपर ले लेती है। उनके इस प्रकार के सगठन को कन्सोरट पद्धति (Consortium Model) कहते है। इस कार्य को करने के लिए बैंक अपना एक पृथक उद्योग विभाग रखती थी, जिसकी विनियोग पूँजी भी पृथक रखी जाती थी। इस विभाग के सचालन के लिए तान्त्रिक सलाह देने के हेतु एव औद्योगिक सम्पत्ति का मूल्याकन करने के लिये विशेषज्ञो की नियुक्ति की जाती थी।

उद्योगो के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखने के लिए बैंक अपने प्रबन्धक अथवा उनके अन्य प्रतिनिधि औद्योगिक प्रमण्डल की सचालन समिति में भेजती थी, जिससे उनके कार्यो का नियन्त्रण होता था तथा बैंक भी निश्चित हो जाती थी कि उनका ऋण राशि का अपव्यय नहीं हो रहा है।

(२) व्यापारिक बैंक कुछ ऐसी निश्चित राशि के अशो का निगमन करें, जिसकी पूँजी में केवल उद्योगो को ही आर्थिक सहायता दी जाय।

(३) उदार नीति का पालन हो—यद्यपि प्रतिभूति की प्रकृति एव उसकी यथेष्टता के निर्णय करने का अधिकार पूर्ण रूप से बैंको का ही है, फिर भी उन्हे कुछ उदार नीति का पालन करना चाहिए। यह जर्मन बैंको की नीति का रहस्य था, जिसे वे औद्योगिक कम्पनियो के लिये उपयोग में लाती थीं। बैंको को चाहिए कि वे औद्योगिक प्रमण्डलो को आर्थिक सुविधाएँ वैयक्तिक साख पर भी दिया करें, जिससे उनको कार्यशील पूँजी मिलती रहे, क्योकि वे तरल सम्पत्ति की प्रतिभूति नहीं दे सकते।

(४) जिन बैंको का औद्योगिक प्रमण्डलो से सम्बन्ध रहता है, वे अपनी प्रबन्ध व्यवस्था में ऐसे व्यक्ति रखें जो सामान्य औद्योगिक प्रबन्धन में पूर्ण ज्ञान रखने हो। इससे औद्योगिक सस्थाओ से व्यवहार रखने में सरलता रहेगी।

(५) जर्मन बैंकों की भांति अपने ग्राहक प्रमण्डलों से निकट सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वे अपनी प्रबन्ध समिति का एक सदस्य उनकी पर्यवेक्षण समिति (Board of Supervisors) में अपने प्रतिनिधि के रूप में रखें। अर्थ प्रबन्धन के विषय में अनुभव के कारण ये प्रतिनिधि प्रमण्डलों के लिए तो हितकर सिद्ध होंगे ही सम्बन्धित बैंक को भी प्रमण्डल की वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराने और इस प्रकार आशङ्काजनित हानि की सम्भावनायें कम करने में सहायक होंगे।

(६) बैंक प्रमण्डलों को उनके नवीन पूंजी प्राप्त किए जाने वाले अंश एवं अभिगोपन ऋण पत्रों के निर्गमन में जर्मन बैंकों की भांति निर्गमन के कुल अथवा कुछ भाग को स्वयं स्वीकार करके और बाद में सुअवसर उपस्थित होने पर उन्हें जनता को सौंप करके सहायता कर सकती हैं। इसमें अपनी हानि के भय को कम करने के लिए कई बैंक परस्पर संयुक्त रूप से कार्य का बीड़ा उठा सकती हैं। ऐसी बैंकों में सामान्य बैंकिंग विभाग के अतिरिक्त एक विनियोग विभाग और हो जिसमें उनके निजी अर्थ साधनों का कुछ सीमित भाग समय समय पर ऐसे कार्यों के लिए जाने पर लगाया जाय। निश्चय ही इन कार्यों को करने में बड़ी विशाल पूंजी एवं औद्योगिक अनुभव की आवश्यकता होगी। प्रायः बड़ी बड़ी बैंक भी इस कार्य को करने में हिचकती हैं। कनाडा आदि देशों में तो केवल यही काम करने वाला बैंक पृथक् स्थापित हो गई हैं।

(७) प्रत्येक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र में बैंकों की एक एक स्थानीय सलाह समिति होनी चाहिए। ये समितियाँ केवल अपनी सम्बन्धित कम्पनियों की अर्थ पूर्ति करने में सहायता प्रदान ही करतीं वरन् बैंकों के अनुदार एवं व्यवहार बर्ताव के संशय को भी अपने ऋण लेने वालों के मस्तिष्क से निकाल देती हैं।

दूसरा सुझाव औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना—

यह तो निश्चय है कि उदार नीति के उपरान्त भी व्यापारिक बैंक ही अकेले कम्पनियों की अर्थ पूर्ति नहीं कर सकते क्योंकि उनका औद्योगिक क्षेत्र का ज्ञान सीमित होता है तथा औद्योगिक सहायता के लिए एक बड़ी मात्रा में स्थाई पूंजी की आवश्यकता होती है। व्यापारिक बैंकों में इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि वे देश की औद्योगिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकें अतएव अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की समस्यायें भिन्न भिन्न होने से कार्य क्षमता की दृष्टि से यह उत्तम होगा कि पृथक् रूप से औद्योगिक बैंकों की स्थापना की जाय। आजकल भारत में इस प्रकार का केवल एक ही संस्था है जो गत २५ वर्षों से काम कर रही है और वह है कनाडा इण्डस्ट्रियल एण्ड बैंकिंग सिण्डीकेट लिमिटेड उडीपी। यह भी स्पष्ट है कि केवल एक अधिकोष से सम्पूर्ण देश की औद्योगिक अर्थ आवश्यकतायें कैसे पूरी हो सकती हैं अतः नवीन औद्योगिक अधिकोषों की आवश्यकता है जिनके पास दीर्घकालीन विनियोग के

लिए पर्याप्त साधन हो। इन अधिकोषो को केवल औद्योगिक अर्थ सुविधायें ही देनी चाहिए, जिससे व्यापारिक बैंकिङ्ग क्षेत्र औद्योगिक बैंकिङ्ग क्षेत्र से भिन्न हो एव उनकी क्रियायें भी पृथक पृथक हो।

(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली

(Managing Agency System)

भारतवर्ष के प्रत्येक महत्वपूर्ण उद्योग म प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का बहुत बडा भाग रहा है। भारतीय प्रशुल्क मण्डल ने सूती वस्त्र उद्योग के विषय में जा रिपोर्ट १९३१ मे प्रकाशित की थी, उसमे यह स्वीकार किया गया था कि "केवल उन बडे उद्योगो को छोड कर जिन्हे भारत में राज्य ने सङ्गठित किया अथवा जो उसकी देख-रेख मे स्थापित किए गये, लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण उद्योग इन्ही प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के साहस के कारण जन्म पा सका है।" अब भी अधिकतर औद्योगिक सस्थायें, विशेषकर सीमित उत्तरदायित्त्व वाली पब्लिक कम्पनिया इन्ही के हाथ में हैं। उदाहरण के लिए, जमशेदपुर का लोह व इस्पात का उद्योग, बम्बई व अहमदाबाद का सूती वस्त्र उद्योग, बगाल व बिहार का जूट उद्योग देश के सबसे अधिक सङ्गठित उद्योगो मे से हैं, परन्तु इन उद्योगो में ऐसा शायद ही कोई मिल हो जो किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता के परोक्ष नियन्त्रण में नही है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता देश के औद्योगिक क्षेत्र में यह स्थिति कैसे प्राप्त कर सके, इस प्रश्न का उत्तर हमें उन परिस्थितियों में मिलेगा जो भारत की अपनी अनोखी विशेषता रही है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का उदय—

वास्तव में प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का उदय भारत के औद्योगिक विकास के साथ-साथ हुआ। यहाँ उद्योग के प्रारम्भिक प्रमुख विकासकर्त्ता अंग्रेज व्यवसायी थे, जो पहले यहा कुछ व्यापारिक सस्थाओ के प्रतिनिधियो की भाँति आये। पहिले तो इन्होने सामान्य व्यापार का काम किया, परन्तु बाद मे अन्य कामो की ओर भी आकर्षित हुए। इन्होंने देखा कि भारत एक विशाल कृषि देश है, जहाँ भरपूर प्राकृतिक साधन है, जोकि विशाल आबादी, पर्याप्त श्रम की सुलभता होते हुए भी औद्योगिक दृष्टि से बिल्कुल पिछडा हुआ है, क्योकि जनता दूसरो को उद्योग में लगाने के लिए द्रव्य देने म सकोच करती है। पूँजी के अतिरिक्त और सब साधन यहाँ है, जिनका कि होना औद्योगिक उन्नति के लिए आवश्यक है।

अस्तु अपने लाभ के लिए उन्होंने आवश्यक पूँजी स्वय प्रदान करने का निश्चय किया एव अपने मित्रो को भी इसके लिए तैयार किया। उद्योग स्थापित कर दिये गए, साझेदारी बन गई और उद्योग चलाने के लिए आवश्यक पूँजी दे

दी गई। हानि एवं अन्य आपत्तियों के समय में भी उन्होंने उद्योग को बचाने के लिए आर्थिक मदद दी, क्योंकि बाहरी जनता से तब ही पूंजी प्राप्त करने की आशा की जा सकती थी जबकि यह उद्योग स्पष्टतः सफल होता प्रतीत हो। जब यह दशा पहुँच जाती थी तो वे उसे कम्पनी में परिवर्तित कर देते और अपनी पूंजी का बड़ा भाग वापिस लेकर उसे फिर किन्हीं अन्य प्रयत्नों में लगा देते थे। कम्पनी के जन्मदाता तथा प्रमुख पूंजी प्रदान करने वालो एवं अनुभवी प्रबन्धकर्त्ता होने के रूप में उनका उस कम्पनी के नियन्त्रण में काफी हाथ रहता था। एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह के आधीन कई प्रमण्डल नियन्त्रित रहते थे। प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति बंगाल में शुरू हुई और फिर अन्य भागों में भी फैल गई। कुछ भारतीय पूंजीपतियों ने भी उनकी देखा देखी उनकी सफलता से प्रेरित हो इस प्रकार का कार्य करना प्रारम्भ किया और इसमें उन्हें विदेशियों से बड़ी सहायता मिली।

एक दूसरी बात जो इस पद्धति के जन्म का कारण बनी वह थी बैंकों की यह हठ कि प्रमण्डलों को तब ही ऋण दिया जाय (वह भी लम्बे समय के लिये नहीं, थोड़ी ही अवधि के लिये) जबकि उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता इस ऋण की गारन्टी दें। उनका यह आग्रह इस कारण था कि वे प्रमण्डलों की आन्तरिक स्थिति से तो परिचित होते नहीं थे, परन्तु प्रबन्ध अभिकर्त्ता सब कुछ जानते थे, अस्तु यह स्वाभाविक ही था कि बैंक उनकी गारन्टी की मांग करें। ऊँची आर्थिक स्थिति के प्रमण्डल भी बैंकों से तब ही ऋण प्राप्त कर सकते थे जबकि उनके प्रबन्ध अभिकर्त्ता गारन्टी देने को तैयार हों।

तीसरे, उस समय के भारतीय कम्पनी अधिनियम की दुर्बलताओं ने भी प्रबन्ध अभिकर्त्तत्व पद्धति को प्रोत्साहित किया। सन् १९१३ तक कम्पनियों के लिए संचालकों की नियुक्ति करना अनिवार्य न था, अतः जो भी व्यक्ति किसी कम्पनी के निर्माण में हित रखते थे, वे स्वयं उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता बन जाते थे। जब सन् १९१३ के अधिनियम ने पब्लिक कम्पनियों के लिए संचालकों की नियुक्ति अनिवार्य कर दी, फिर भी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के लिये कोई कठिनाई पैदा न हुई क्योंकि अपने व्यापारिक सहयोगियों एवं मित्रों में से ही वे कुछ लोगों को चुन कर संचालक नियुक्त कर देते थे और इस प्रकार नियन्त्रण की बागडोर वास्तव में उन्हीं के हाथ में रहती थी।

अस्तु इन परिस्थितियों में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का औद्योगिक संगठन में प्रमुख स्थान पा लेना स्वाभाविक ही था।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रथा के लाभ—

भारत के औद्योगीकरण के इतिहास में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का महत्वपूर्ण स्थान

रहा है, क्योकि इनकी विभिन्न सेवाओ द्वारा ही देश की औद्योगिक प्रगति सम्भव हो सकी। इस प्रणाली के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं—

(१) प्रवर्तन एव निर्माण—जैसा हम ऊपर सकेत कर चुके है, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने प्रारम्भिक अनुसन्धान करके एव असुविधाओ तथा असफलताओ का सामना करते हुए अनेक सफल उद्योगो की नीव डाली थी। इनकी सहायता के बिना चाय, जूट, कपास, कोयला आदि बडे बडे व्यवसाय न तो स्थापित ही किये जाते और न उनकी शीघ्र उन्नति ही होती। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का कम्पनियो से घनिष्ट सम्बन्ध होता है, अत वे सुदृढ कम्पनियो की ही स्थापना करते है। यही नही, कम्पनी की स्थापना के लिए समस्त वैधानिक कार्यवाही करते है और योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो को सचालक पद के लिए चुनते हैं।

(२) आर्थिक सहायता—प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न रीतियो से, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं, कम्पनी को आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं। इनके व्यावसायिक जीवन और वाणिज्य जगत म ख्याति के बल पर जनता को नव निर्मित कम्पनिया स सम्पर्क स्थापित करने मे सुविधा रहती है।

(३) वैज्ञानीकरण एव सूचीकरण—इन सेवाओ के अतिरिक्त प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने अन्तगत कम्पनियो की व्यवस्था म एकसूत्रता लाते है, जिसस उनमे मितव्ययिता होती है और कार्यक्षमता बढती है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक सस्थायें होती है, जिनके विशिष्टीकरण के लिए वे अपन कार्यालय म अलग अलग विभाग रखते है, जिससे उनके अन्तगत जितनी कम्पनियाँ हैं उनको उनकी विशेष योग्यता का लाभ हो सके। व्यक्तिगत रूप में कम्पनिया के लिए यह सम्भव नहीं होता कि विशिष्ट योग्यता वाले अनुभवी व्यक्तियो की नियुक्ति कर सकें, किन्तु प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के माध्यम स न्यूनतम व्यय पर उन्हे विशेषज्ञो की सेवा का लाभ प्राप्त हो जाता है। दूसरे, पूरक व्यवसायो की दशा में एक व्यवसाय का माल दूसरे व्यवसाय में सुविधा से खप जाता है। उदाहरण के लिए सूती वस्त्र, यातायात तथा कोयला ये तीन उद्योग एक दूसरे के पूरक होने के कारण कोयले की खपत वस्त्र मिल उद्योगो में हो सकती है एव वस्त्र व्यवसाय का यातायात की सुविधाय मिल जाती है तथा यातायात उद्योग का स्थाई ग्राहक मिल जाते है। यदि ये तीन उद्योग अलग अलग प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के नियन्त्रण म है तो सम्भवत यह लाभ न होगा। तीसरे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपना क्रय विक्रय विभाग भी रखते है, जिसस उनके प्रबन्ध में जो व्यवसाय है उनकी आवश्यकताओ का क्रय तथा विक्रय इसी विभाग के द्वारा सुगमता से हो जाता है।

(४) विशेषज्ञो द्वारा सहायता—प्रत्येक प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने यहा कुशल एव अनुभवी विशेषज्ञ रखता है। इस प्रकार थोडे से व्यय म ही सरलतापूर्वक इन विशेषज्ञो

का परामर्श प्राप्त हो जाता है जिससे समय समय पर व्यवसाय को अत्यन्त लाभ होता है।

(५) विनियोगो की सुरक्षा—प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी ख्याति का बड़ा ध्यान रखते है और जहा तक बन पडता है इस पर कलक नही लगने देते इसलिए जनता तथा विनियोगकर्ताओ का यह विश्वास हो जाता है कि प्रतिष्ठित प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के प्रबन्ध मे जो कम्पनिया है उनमे उनका धन सुरक्षित रहेगा।

(६) प्रतिभूतियो का अभिगोपन—अन्य देशो की भाति हमारे देश मे औद्योगिक प्रतिभूतियो का अभिगोपन करने के लिए विशेष सस्थाओ का अभाव है अत परिस्थितिवश यह कार्य बिचारे प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ही करना पडता है, इसलिए इनकी इन सेवाओ के परिणामस्वरूप कम्पनी के अश ऋणपत्रादि शीघ्र बिक कर उन्हे पूजी की प्राप्ति हो जाती है तथा जनता के निष्क्रिय धन का भी उद्योगो मे सदुपयोग हो जाता है।

(७) प्रतिस्पर्धा का अन्त—एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता के नियन्त्रण मे रहने से कम्पनियो की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का उन्मूलन हो जाता है अत उनमे सहयोग की भावना बढती है जिसमे प्रबन्ध एव व्यवस्था मे मितव्ययिता आती है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के दोष—

उपरोक्त गुणो के होते हुए भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति को दोष रहित नही कहा जा सकता। यही कारण है कि इसके दोषो का उन्मूलन करने के लिए समय समय पर कम्पनी अधिनियम मे सशोधन किये गये एव सन् १९५६ के कम्पनी अधिनियम मे तो कायापलट ही कर दिया गया है। इस प्रणाली के प्रमुख दोष निम्नलिखित है —

(१) आर्थिक प्रभुत्व—प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति मे प्राय सभी उद्योगो के अन्तर्गत औद्योगिक प्रतिफल की अपेक्षा आर्थिक प्रभुत्व को ही महत्ता दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि इन सस्थाओ मे मुख्यत पूँजीपति ही होते है जो तात्रिक योग्यता उतनी नही रखते जितनी की आर्थिक सहायता प्रदान कर सकते है। रोते हुए बच्चे को चुप करने की भाति ये लोग सकट की अवस्था मे कम्पनी को केवल आर्थिक सहायता देकर उनमे पुनर्जीवन का सचार कर देते है परन्तु उस कम्पनी की सच्ची प्रगति के लिए जिस तात्रिक एव व्यापारिक योग्यता की आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति ये नही कर पाते। फलत कम्पनी की व्यवस्था मे अनेक दोष आ जाते है। इस आर्थिक प्रभुत्व का यह परिणाम होता है कि यदि किसी समय कम्पनी अधिक सकट के दलदल मे फस जाती है और इन लोगो के पास भी पर्याप्त धन नही होता तो ऐसी कष्टपूर्ण परिस्थिति मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने अधिकार दूसरे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को जिनके अच्छे आर्थिक साधन होते है सौंपकर स्वय अलग हो जाते है। ऐसा करते समय वे अंशधारियो के हितो की लेशमात्र भी चिन्ता नही करते।

(२) अंशों की अधिक परिकल्पना—इस प्रणाली के अनुसार अनेक स्कन्ध विपणियों में, विशेषकर बम्बई में कम्पनियों के अंशों में अत्यधिक परिकल्पना (Speculation) पाई जाती है। ये लोग प्रायः कम्पनी या अंशधारियों के हितों की ओर ध्यान न देते हुए सट्टेबाजी में व्यस्त हो जाते हैं। अपने हित के लिए कम्पनी के धन की बलि चढ़ा देते हैं, जिससे कभी-कभी कम्पनी को महान आर्थिक सङ्कट का सामना करना पड़ता है। आर्थिक स्थिति बिगड़ने पर अंशों का मूल्य दिन पर दिन गिरने लगता है। यही नहीं, ये लोग एक प्रकार के अंशों को दूसरे प्रकार के अंशों में परिणित करके भी उनके मूल्यों को प्रभावित करते हैं। जिन अंशों को वे स्वयं खरीदना चाहते हैं उन पर लाभांश की दर कम कर देते हैं, जिससे उनका मूल्य गिर जाए तथा गिरे हुए मूल्य पर वे उन्हें खरीद लें। इसके विपरीत जिन अंशों को ये बेचना चाहते हैं उन पर लाभांश की दर बढ़ा देते हैं। इन दूषित कार्यवाहियों से विनियोक्ताओं को बड़ी हानि होती है।

(३) सचालकीय नियन्त्रण की शिथिलता—अभी तक सचालकों की नियुक्ति में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का बहुत बड़ा हाथ रहता है, अतः यद्यपि कम्पनी की व्यवस्था का समस्त भार सचालकों पर ही होता है और उन्हीं को प्रबन्ध नीति का निर्धारण करना चाहिए, किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि सचालकगण कठपुतली की भांति नाचते हैं और इनको नचाने वाले हैं परदे के पीछे कार्य करने वाले प्रबन्ध अभिकर्त्ता। नये अधिनियम में इस सम्बन्ध में काफी सुधार कर दिये गये हैं।

(४) अन्तर्विनियोग—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने अपने नियन्त्रण के अन्तर्गत आधिक्य राशि को दूसरी कम्पनियों को ऋण देने में भी लगाया। यदि दोनों ही कम्पनियों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती तब तो इसमें कोई हानि नहीं थी, किन्तु विपरीत परिस्थिति में यदि अच्छी स्थिति की कम्पनी का कोष एक दुर्बल कम्पनी को दे दिया जाय तो इससे अच्छी स्थिति वाली कम्पनी को हानि उठानी पड़ती है। नये अधिनियम के अन्तर्गत अन्तर्विनियोग पर रोक लगा दी गई है।

(५) अयोग्य व्यवस्था—प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के अन्तर्गत कौटुम्बिक अनुशासन के कारण व्यावसायिक सगठन में स्थिरता आ जाती है। व्यवसाय में कार्यकुशल व्यक्तियों का प्रवेश रुक जाता है। पिता के बाद पुत्र को, पुत्र के बाद प्रपौत्र को तथा इसी प्रकार अनेक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को पैत्रिक अधिकार मिलते हैं। इससे यह आशंका रहती है कि पुत्र अथवा प्रपौत्र उतने कार्य कुशल न हों जितने कि उनके पूर्वज थे।

(६) शोषण—प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न ढङ्गों से कम्पनियों का शोषण करते रहते हैं। प्रथम तो, इन लोगों को कम्पनी की व्यवस्था सम्बन्धी समस्त आन्तरिक बातों

का ज्ञान रहता है, जोकि अंशधारियों को नहीं होता, अत. वे आन्तरिक व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन करते है कि जिससे केवल इनको ही लाभ होता है, अन्य अंशधारियों को तो उसकी हवा भी नहीं लगती। अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए ही वे लाभांश की दर कम या अधिक करते रहते हैं। दूसरे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पारिश्रमिक के लिए जो अनुभव करते हैं वे अनुचित एवं न्यायविरुद्ध होते हैं। ये निम्न प्रकार के विभिन्न रूपों में पारिश्रमिक लेते रहते है —व्यक्तिगत भत्ता, उत्पादन पर कमीशन, कच्चे माल के क्रय पर कमीशन, निर्मित माल के विक्रय पर कमीशन, लाभ पर कमीशन, अन्य विशेष कमीशन तथा कार्यालय भत्ता आदि। इस प्रकार कम्पनी के लाभ का एक बहुत बड़ा भाग जिसे 'शेर का भाग' (Lion's Share) कह सकते है प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की जेब में जाता है एवं भूखन जाठन बिचारे अंशधारियों को जाती है। तीसरे, कभी कभी ये लोग कम्पनी के धन को भी व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग कर लेते हैं। चल लेख (Current A/c.) की चाल द्वारा ये लोग कम्पनी का धन पर्याप्त मात्रा में ऋण लेकर अपना काम चलाया करते हैं। चौथे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता बहुधा कम्पनी के लाभ को लाभांश के रूप में वितरण न करके कम्पनी के कार्यों में लगा देते हैं और अन्य लोगों को दिखाने के लिए कम्पनी की कार्यशीलता बढ़ जाती है। कभी कभी भवन निर्माण और मशीनरी के क्रय में रुपया लगा देते हैं। यह विस्तार चाहे अनुचित भले ही हो, किन्तु ये कार्यक्षमता का आडम्बर करने के लिये ऐसी रचना करते रहते हैं।

(७) किन्हीं किन्हीं प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने अपने दिये हुए ऋण को ऋण-पत्रों में परिवर्तित कर लिया और इस प्रकार सस्थायें उनके हाथ में पहुँच गईं। बेचारे अंशधारियों की वह पूँजी जो उन्होंने कम्पनी में लगाई थी, उनके हाथ में चली गई।

(८) कम्पनियों की संख्या में लगातार वृद्धि से प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की संख्या में भी बरसाती नदी के पानी की भांति वृद्धि होने लगी है। नये प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह पुराने की भांति अनुभवी, योग्य और साधन सम्पन्न भी नहीं है, जो सुन्दर सेवायें कर सकें, जैसी कि इस पद्धति के अन्तर्गत अब तक होती रही है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं पर वैधानिक नियन्त्रण—

सन् १९१३ के कम्पनी अधिनियम में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की स्थिति के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं की गई थी। तत्पश्चात् इस प्रणाली का इतना पतन हुआ और प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की शक्तियों का इतना दुरुपयोग किया गया कि सन् १९३६ के कम्पनी (संशोधन) अधिनियम में विशेष व्यवस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की गई। सन् १९३६ के संशोधन ने आरम्भ में ही कुछ ऐसी व्यवस्थायें की हैं, जिससे अंशधारी अधिक सतर्क तथा सावधान रह सकें। इस सम्बन्ध में निम्न व्यवस्थायें की

गई—(अ) कम्पनी के प्रविवरण में प्रबन्ध अभिकर्त्ता के साथ किए गए समझौते की शर्तों का दिखाना अनिवार्य किया गया, प्रबन्ध अभिकर्त्ता के साझेदारों के नाम तथा उस हित की प्रकृति, जो कम्पनी के सचालकों को मैनेजिंग एजेन्सी में है, साफ-साफ दिखाना आवश्यक कर दिया गया और (आ) प्रबन्ध अभिकर्त्ता के लिए समुचित लेखों का रखना तथा विस्तृत चिट्ठे एव लाभ-हानि खातों का प्रकाशन आवश्यक कर दिया गया। किन्तु फिर भी स्थिति में कोई सन्तोषजनक सुधार नहीं हुआ। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने शोषण का मार्ग निकाल लिया, अतः विवश होकर सरकार को सन् १९५१ मे एक ऑर्डीनेन्स जारी करना पड़ा। ऑर्डीनेन्स के द्वारा भारतीय कम्पनी अधिनियम सन् १९१३ की धारा ८७ में सशोधन किया गया और यह व्यवस्था की गई कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता द्वारा अपने अधिकारों को सौंपना उस समय तक वैध न होगा, जब तक कि कम्पनी तथा केन्द्रीय सरकार उसे स्वीकार न कर लें। सन् १९४९ से बैंकिंग कम्पनियों के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति करना अवैध घोषित कर दिया गया हैं।

वर्त्तमान स्थिति—

कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ के अनुसार 'प्रबन्ध अभिकर्त्ता से आशय उस व्यक्ति, फर्म या समामेलित सस्था से है, जो किसी कम्पनी के साथ हुए ठहराव या उसके पार्षद सीमानियम अथवा अन्तर्नियमों के अन्तर्गत् कम्पनी के सम्पूर्ण या अधिकाश कार्यों के प्रबन्ध करने का इस अधिनियम के आदेशों के आधीन अधिकारी है, अर्थात् अब प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचालक सभा के प्रशासनिक नियन्त्रण तथा निरीक्षण के आधीन कार्य करता है। नए कम्पनी अधिनियम द्वारा इस पद्धति पर निम्न नियन्त्रण लगा दिए गए हैं :—

(१) नियुक्ति एव अवधि—कोई भी कम्पनी, केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना अपना कार्य प्रबन्ध चलाने के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति अथवा पुनर्नियुक्ति नहीं कर सकती। १ अप्रैल सन् १९५६ को विद्यमान सभी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पद १५ अगस्त सन् १९६० तक अवश्य समाप्त हो जाएँगे, जब तक उनकी पुनर्नियुक्ति न हो जाय। १५ अगस्त सन् १९६० के बाद कोई व्यक्ति एक समय में १० से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध अभिकर्त्ता नहीं रह सकता। जिस अवधि के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त किए जा सकते हैं, वह प्रथम नियुक्ति की दशा में १५ वर्ष से और बाद की नियुक्तियों के लिए १० वर्ष से अधिक नहीं हो सकती।

(२) पारिश्रमिक—मैनेजिंग एजेन्टों को निम्नलिखित दर से कमीशन दिया जाता है—

पहले १० लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	१० प्रतिशत
अगले १० लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	९ प्रतिशत

अगले १० लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	८ प्रतिशत्
अगले १० लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	७ प्रतिशत्
अगले १० लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	६ प्रतिशत्
अगले २५ लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	५½ प्रतिशत्
अगले २५ लाख रुपये अथवा इसके प्रभाग पर	५ प्रतिशत्
और १ करोड रुपये से ऊपर कितनी भी रकम पर	४ प्रतिशत्

अभिकर्त्ता को कोई भी कार्यालय भत्ता नही दिया जाएगा। हां, उसके द्वारा कम्पनी के निमित्त किए गए खर्चों का भुगतान अवश्य होगा।

(३) **कोषो का अन्तर्विनियोग**—कोई कम्पनी (जिसे यहां विनियोगिता कम्पनी कहा गया है), एक ग्रूप के अन्तर्गत किसी सम्मिलित सस्था के अश या ऋण-पत्रो को नही खरीद सकती।

(४) **अन्य आदेश**—कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पद का तभी हस्तान्तरण कर सकता है जबकि कम्पनी की साधारण सभा तथा केन्द्रीय सरकार दोनों ही की अनुमति प्राप्त हो जाय। अब प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद पैतृक नही है। कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने द्वारा व्यवस्थित अन्य कम्पनियो को ऋण नही दे सकता। प्रबन्ध अभिकर्त्ता अब दो (यदि कुल सचालक ५ से अधिक है) अथवा एक (यदि सचालकों की कुल सख्या ५ से कम है) सचालक से अधिक की नियुक्ति नही कर सकता। कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी प्रबन्धित कम्पनी के समान और उससे प्रत्यक्ष स्पर्धा करने वाला कोई अपना व्यापार नही कर सकेगा, जब तक कि वह प्रबन्धित कम्पनी विशेष प्रस्ताव द्वारा उसे ऐसा करने की आज्ञा न दे।

प्रबन्ध-अभिकर्त्तत्व पद्धति के पक्ष मे विचार—

अगस्त सन् १९५५ में लोक सभा में कम्पनी लॉ बिल पर बडी बहस हुई और अधिकाश वक्ताओ ने प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति की कडी आलोचना की थी। स्वय काग्रेस दल के आलोचको ने इस पद्धति के उन्मूलन की माँग की और इस सम्बन्ध में एक निश्चित समय निर्धारित कराने का प्रयास किया। वे 'सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष' की नई व्यवस्था से भी सन्तुष्ट नही थे, क्योकि उनके विचार में इसमे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नही रुक सकता। दूसरे शब्दो में, वे कम्पनियो के प्रबन्ध पर अधिक नियन्त्रण रखना चाहते थे, किन्तु सरकार ऐसा नही करना चाहती थी, क्योकि इससे व्यक्तिगत उपक्रम को धक्का पहुँचता और पच वर्षीय योजना की सफलता खटाई में पड जाती। तत्कालीन वित्तमन्त्री श्री देशमुख ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के पक्ष में निम्न दलीलें प्रस्तुत की—

(१) द्वितीय पच वर्षीय योजना में औद्योगिक विकास के लिए व्यक्तिगत उपक्रमों पर बहुत सीमा तक निर्भरता रखी गई है। अब बीच में ही प्रबन्ध

अभिकर्त्ता पद्धति को किसी उद्योग विशेष में रखने की घोषणा से व्यक्तिगत उपक्रम को बड़ा धक्का लगेगा और वह अपने दायित्व ठीक तरह से नहीं निभा सकेगा।

(२) स्वतन्त्रता के पूर्व जब प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के विरोध में आवाज उठाई गई थी तो अधिकांश व्यापार विदेशियों के हाथ में था, किन्तु अब परिस्थिति बदल गई और व्यापार देशवासियों के हाथ में आ गया है। फिर अनेक दोष प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के ऐसे हैं जोकि उन्हीं परिस्थितियों में, सचालक सभा या सेक्रेटरी एवं कोषाध्यक्ष अथवा अन्य प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत भी उत्पन्न हो सकते हैं। यही नहीं, आज अनेक ऐसे प्रबन्ध अभिकर्त्ता भी है जो अपने ज्ञान और अनुभव से देश को लाभ पहुँचाना चाहते है।

(३) हमें प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के कार्यों का लेखा-जोखा केवल समापित कम्पनियो की सख्या से ही नहीं लगाना चाहिए, वरन् नई रजिस्टर्ड कम्पनियो को भी विचार में लेना चाहिये। युद्धोत्तर काल में कम्पनियो की सख्या दुगुनी से अधिक हो गई है और प्राप्त पूँजी भी पहले से तिगुनी हो गई है, जोकि देश के हित में है।

(४) यह कहना असत्य है कि कम्पनियो के प्रवर्तन और अर्थ प्रबन्धन में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का अधिक भाग नहीं। १,७२० कम्पनियों की परीक्षा से यह पता लगा है कि लगभग १३·६% अश पूँजी एव २६·६५% ऋण एव अग्रिम प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा प्राप्त हुआ था। यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को हटा दिया जाय तो इतने वित्त की व्यवस्था सरकार कहाँ तक करेगी?

(५) जहाँ तक आर्थिक सत्ता के कतिपय हाथो में केन्द्रीयकरण का प्रश्न है, यह दोष केवल प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का ही हो, ऐसी बात नहीं। उदाहरण के लिये, अमेरिका में भी, जहाँ कि ऐसी पद्धति प्रचलित नही है, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की समस्या पाई जाती है। फिर थोड़े ही (लगभग ३३) प्रबन्ध अभिकर्त्ता देश में ऐसे हैं जिनके पास १० या अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध है।

(६) प्रबन्ध अभिकर्त्ता देश की व्यवसायिक वृद्धि के प्रतीक हैं। यदि केवल नियन्त्रण द्वारा इनका सहयोग देश के अधिक आर्थिक विकास में प्राप्त हो सकता है तो फिर इनके उन्मूलन की हिंसात्मक नीति अपनाने से क्या लाभ?

(७) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का पुरस्कार शुद्ध लाभ का १०% निर्धारित किया गया है, जोकि अधिक नहीं है। प्रबन्ध सचालकों का वेतन के अतिरिक्त शुद्ध लाभ का ५% मिलता है और सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष का ७½% निश्चित किया गया है। इनकी तुलना में प्रबन्ध अभिकर्त्ता का १०% पुरस्कार अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न प्रकार का अनुभव रखते हैं और वित्त की व्यवस्था भी

करते है, जबकि सचालक और सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष इतनी चहुँमुखी योग्यता नही रखते और न ही उनको वित्त व्यवस्था का भार उठाना पडता है। अभी तक प्रबन्ध अभिकर्ताओ को मिलने वाला पुरस्कार औसतन शुद्ध लाभ का २७% था, अत: पुरस्कार में इतनी बडी कमी करना वास्तव मे भारी सफलता है, जोकि समाज के समाजवादी ढाचे के अनुकूल है।

(८) यदि किसी विशेष उद्योग या व्यापार में प्रबन्ध अभिकर्त्ता रखना उचित न समझा जाय तो भी अन्य क्षेत्रो में, जहा प्रवर्तन एव अर्थ प्रबन्धन की आवश्यकता है, उस पद्धति का लाभ क्यो न उठाया जाय, जोकि भूतकाल में उपयोगी थी और भविष्य मे उपयोगी होगी।

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता पद्धति का भविष्य—

कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ का उद्देश्य प्रबन्ध अभिकर्ता पद्धति को निम्न लिखित ढग से धीरे धीरे खतम करना है —

(१) १५ अगस्त सन् १९६० तक तो इस पद्धति में कोई परिवर्तन नही होगा, किन्तु तत्पश्चात् इसका महत्व कम होने लगेगा। कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता १० से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध नही कर सकेगा। १ अप्रैल सन् १९५६ के बाद किसी भी समय केन्द्रीय सरकार यह सूचित करने का अधिकार रखती है कि एक विशेष उद्योग या व्यापार में सलग्न सभी कम्पनियाँ कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही रख सकेंगी। इस सूचना का प्रभाव यह होगा कि जिन कम्पनियो में सूचना की तिथि पर प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही थे वे भविष्य में प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही रख सकेंगे और जिन कम्पनियो में प्रबन्ध अभिकर्त्ता हैं उनका कार्यकाल निर्दिष्ट तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर या १५ अगस्त सन् १९६० मे, जो भी तिथि बाद में पडे, समाप्त हो जायगा।

(२) वे कम्पनियाँ जो उपरोक्त नियम में नही आती, तब तक प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त नही कर सकेंगी जब तक केन्द्रीय सरकार से विशेष स्वीकृति प्राप्त न हो जाय और केन्द्रीय सरकार ऐसी स्वीकृति निम्न बातो का सतोष प्राप्त होने पर ही देगी :—

(अ) कि कम्पनी को प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त करने की अनुमति देने मे जन-हित को नुकसान नही पहुँचेगा।
(आ) कि प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक उपयुक्त एव योग्य व्यक्ति है।
(इ) कि उसके ठहराव की शर्तें उचित है, और
(ई) कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने उन तीन शर्तों को पूरा कर दिया है जो केन्द्रीय सरकार ने उसके लिए निश्चित की हो।

इस प्रकार सन् १९६० के पश्चात् प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का भविष्य बडा अनिश्चित है और बहुत कुछ इस बात पर निभर करेगा कि इन पाच वर्षों की अवधि क भीतर प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का आचरण कसा रहता है। यदि उनका आचरण समाजवादी ढाचे के अनुसार रहता है यदि उन पर लगाये प्रतिबन्धो के फलस्वरूप इस पद्धति के सब मुख्य दोष दूर हो जाते है और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नही होता तो उनके बने रहने की सम्भावनायें बढ जायेंगी यद्यपि सिद्धान्तत प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का उन्मूलन उचित है किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से उनके उन्मूलन की समय-सीमा निश्चित कर देना बुद्धिमानी नही होगी।

मनेजिंग एजन्सी पद्धति की उपयोगिता पर अनुसन्धान परिषद का मत—

भारतीय उद्योग एव वाणिज्य मण्डल के आग्रह पर राष्ट्रीय आर्थिक अनुसन्धान परिषद न मैनेजिंग एजन्सी पद्धति के विभिन्न पहलुओ एव उसकी उपयोगिता का अध्ययन करके सम्मति प्रकट की है कि देश के आर्थिक विकास म मैनेजिंग एजन्सी पद्धति महत्वपूर्ण भाग अदा कर रही है इसलिये इस पद्धति को समाप्त करन के लिये कोई वास्तविक कारण नही दिखाई देता है।

परिषद् का कहना है कि देश की बदलती हुई परिस्थितियो का दृष्टि मे रखते हुए इस पद्धति में समय समय पर आवश्यक परिवतन परिवद्ध न एव सुधार किए जा सकते हे। कुछ बेईमान व्यक्तियो द्वारा इस पद्धति का दुरुपयोग करके अनुचित लाभ उठाना इस बात का प्रमाण नही है कि यह पद्धति ठोस नही है इसलिए इसे समाप्त कर दिया जाय।

परिषद् के महासचालक डा० पी० एस० लोकनाथन न परिषद् द्वारा किए गए शोध के परिणाम को पत्र प्रतिनिधियों को बताया और कहा—यह पद्धति निजी क्षेत्र को विशेषत दो दिशाओ म सक्रिय योगदान दे रही है।

(१) यह अपन आय स्रोतो तथा बचत से प्रबन्धकृत कम्पनियो की पूँजी की व्यवस्था करती है और

(२) अपन प्रबन्ध में कम्पनियो के उद्योगो का बहुमुखी विस्तार कर रही है।

शोध में कहा गया है कि भारतीय पूँजी बाजार में जो कमी है वह मैनेजिंग एजन्ट औद्योगिक वित्तीय योगदान कर पूरा करत है क्योकि भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रगति के साथ साथ वित्तीय संस्थाओं का विकास नहीं हुआ है। उस कमी को मैनेजिंग एजन्ट पूरा कर रहे हे। जबकि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशो के साथ भारत में पूँजी विनियोजन ट्रस्ट नही हे, जो अल्प बचत की प्राप्त राशि को उद्योगो में लगाय, कम्पनी कानून में सरकार को यह अधिकार मिल जान से औद्योगिक क्षेत्र में एक

अनिश्चितता फैल गई है कि सरकार किसी भी उद्योग एवं व्यवस्था में मैनेजिंग एजेन्सी पर रोक लगा सकती है। सरकार एक नीति बनाकर उसे दूर कर सकती है। शोध में सरकार द्वारा मैनेजिंग एजेन्सियों के पारिश्रमिक की दर घटा देने पर सहमति एवं उनके कार्य काल के विषय में विमति प्रकट की गई है। मैनेजिंग एजेन्सी पद्धति पर सबसे बड़ा आरोप अधिकार एवं सत्ता के केन्द्रीयकरण का है। परन्तु अध्ययन से पता चलता है कि यूरोप के देशों में यह पद्धति बहुत अधिक प्रचलित है और वहाँ इस प्रकार का केन्द्रीयकरण नहीं हुआ। भारत में एकाधिकार की ओर प्रवृत्ति नहीं है, क्योंकि बहुत से उद्योग धन्धे इस पद्धति के दायरे के बाहर स्थापित हो रहे हैं।

(६) विशिष्ट अर्थ-संस्थायें

विशिष्ट अर्थ संस्थाओं का विस्तृत परिचय अगले अध्यायों में दिया गया है।

STANDARD QUESTIONS

1. Describe the existing system of Industrial Finance in India. Offer your own suggestions for improving it and say what is at present being done in this connection
2. Write critical notes on (a) Issue of Shares, (b) Public Deposits and (c) Issue of debentures as sources of industrial finance.
3. Discuss carefully the reasons for the unpopularity of debentures in India
4. Discuss the defects of the Indian Commercial Banks in providing finance to Indian industries. How can they be made more useful ?
5. Discuss the services of the Managing Agents in providing finance to Indian industries Are there any defects in this system ?
6. What provisions have been made in the Indian Companies Act, 1956, to remedy the defects of the Managing Agency System ?
7. Write an essay on the present position and future of the Managing Agency system.

अध्याय १६

औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन के लिए विशिष्ट संस्थाये (I)

(Special Institutions for the financing of Industries)

औद्योगिक अर्थ-निगम

औद्योगिक अय निगम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

प्रथम महायुद्ध के बाद भारत सरकार का ध्यान देश में उद्योगो की उन्नति की ओर गय और तब से पूंजी की कमी बहुत खटकने लगी। पिछली ३० ३५ वर्षों से (और विशेषत सन् १६१८ के बाद) जब औद्योगिक कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में देश के उद्योगों की आर्थिक सहायता प्रदान करन की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया तो इस कठिनाई को हल करने के लिये गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा। औद्योगिक कमीशन का भी यही मत था कि उद्योगो को आर्थिक सहायता देने के लिये विशेष सस्थाओ का आवश्यकता है। सन् १६३१ म केन्द्रीय महाजनी जाच समिति ने भी देश म बढते हुए औद्योगीकरण के लिए जिससे भविष्य में देश का विकास होने की आशा है पूंजी की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया। इन उद्योगो म लगने वाली आवश्यक पूंजी को अवधि की दृष्टि से तीन भागो में बाटा जा सकता है—(अ) दीर्घकालीन, (आ) अल्पकालीन और (इ) मध्यकालीन, अत इस कमी को पूरा करने के लिये जल्दी ही आवश्यक कदम उठाने की सिफारिश की गई किन्तु खेद की बात है कि इन सिफारिशो का कोई भी सन्तोषजनक परिणाम नही निकला। इसी प्रकार वैदेशिक पूंजी कमेटी (External Capital Committee) ने सन् १६२४ म देश की औद्योगिक वित्त समस्याओं को हल करने के लिए विशिष्ट सस्थाओ की स्थापना की सिफारिश की थी किन्तु कई राजनैतिक व आर्थिक कारणो से उक्त प्रस्तावो को उस समय कार्यान्वित नही किया जा सका।

विदेशो में उद्योगो की आर्थिक सहायता करने के लिये कई विशिष्ट सस्थायें है। उदाहरणार्थ, जर्मनी म औद्योगिक सस्थाओं की अर्थ पूर्ति के लिए औद्योगिक बैंक है। योरुप के अन्य देशो म भी (जैसे—बेल्जियम फ्रांस इटली आदि म) इस प्रकार की सस्थाओ ने उन देशो के उद्योगो को आर्थिक सहायता पहुँचाकर उन्नति के पथ पर अग्रसरित किया है। जापान की आर्थिक स्थिति भी हमारे देश के समान ही थी। वहा की

जनता भी गरीब थी, अत. वहाँ पूँजी की कमी रहा करती थी, किन्तु सन् १६०२ में औद्योगिक बैंक स्थापित की गई, जो आज तक उस देश के उद्योगो को आर्थिक सहायता पहुँचा रही है। सन् १६२६ ३० में, जबकि सारे ससार मे मन्दी का प्रभाव था, यदि इन सस्थाओ ने जापान के उद्योगो को आर्थिक सहायता न दी होती तो ये छोटे छोटे सभी उद्योग उस समय समाप्त हो जाते।

अमेरिका के बडे-बडे प्रमण्डलो को आर्थिक सहायता देकर उनकी उन्नति करने का श्रेय उस देश के अधिकोषों को है। सन् १६३४ के पश्चात् इन सस्थाओ के कार्य म और भी अधिक उन्नति पाई जाती है। ये सस्थायें न केवल सक्रिय पूँजी की ही सहायता करती हैं अपितु अग्रिम राशि देकर उनकी अन्य आर्थिक कठिनाइयो को भी दूर करती हैं।

इङ्गलैंड में भी वहाँ के अधिकोषो ने अपनी पुरानी परिपाटी 'व्यापारिक दृष्टिकोण' त्याग कर अपना सकुचित कार्य क्षेत्र व्यापक बना कर उद्योगो की प्रत्यक्ष सहायता करने का श्रेय प्राप्त किया है। आज हम देखते हैं कि वहाँ के लोहे तथा फौलाद सूत तथा वस्त्र इत्यादि के उद्योगो को काफी आर्थिक सहायता पहुँचाई जा रही है। सन् १६३० में 'बैंकर्स इण्डस्ट्रियल डेवलपमेन्ट कम्पनी' की स्थापना उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से ही की गई थी। इसी प्रकार 'फाइनेंस कॉरपोरेशन फॉर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड' एव 'इण्डस्ट्रियल फाइनेन्स कॉरपोरेशन लिमिटेड' नामक दो सस्थाओ की स्थापना भी लघुमाप तथा दीर्घमाप उद्योगों की आर्थिक सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से की गई है।

आस्ट्रेलिया में भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वहाँ के 'कॉमनवेल्थ बैंक' ने औद्योगिक अर्थ प्रबन्ध का एक स्वतन्त्र विभाग बैंक के आधीन ही खोल दिया है। इस विभाग का मुख्य उद्देश्य उस देश के उद्योगो की सहायता के लिए दीर्घकालीन ऋण देना है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि विदेशो में उद्योगो को आर्थिक सहायता के हेतु नई नई सस्थायें स्थापित की गई हैं, किन्तु हमारे देश में ऐसे प्रयत्नो की कमी रही है। भूतपूर्व प्रस्तावो से प्रेरित होकर व वर्तमान परिस्थितियों से विवश हो, माननीय आर० के० षणमुख चैट्टी ने भारतीय ससद में औद्योगिक अर्थ-प्रमन्डल की स्थापना के लिए एक बिल प्रस्तुत किया। २७ मार्च सन् १६४८ को गवर्नर जनरल ने इस बिल पर स्वीकृति दी तथा १ जुलाई सन् १६४८ से इस कॉरपोरेशन का कार्य प्रारम्भ हुआ।

औद्योगिक अर्थ-निगम के उद्देश्य तथा अधिकार—

कॉरपोरेशन का मुख्य उद्देश्य उद्योगों को दीर्घ एव मध्यकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करना है। हमारे देश के अधिकोष भी इस प्रकार की सहायता प्रदान

करते है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि प्रमन्डल अधिकोषो से प्रतियोगिता करना चाहता है अथवा उनको इस कार्य से विचलित करना चाहता है। प्रमन्डल का उद्देश्य *आर्थिक क्षेत्र में अधिकोषा की सहायता करना है, जिससे ये दोनो सस्थायें मिलकर देश* में पूँजी की कमी को दूर कर उद्योगो की उन्नति में सहायक हो। अधिकोषो का मुख्य कार्य तो उद्योग को अल्पकालीन सहायता और प्रमन्डल का कार्य लम्बी अवधि के लिए या मध्यम समय के लिए आर्थिक सहायता देना है। विकास का अर्थ केवल नवीन उद्योगशालायें खोलना नही है। नई उद्योगशालाओ के स्थापन के साथ साथ आज भारत में चालू उद्योगो के युक्तिसगत विवेकीकरण की आवश्यकता भी है। औद्योगिक सस्थाओं की प्राप्त पूँजी का लगभग सारा भाग मशीन, भूमि व अन्य औजारो के खरीदने मे ही चला जाना है और समय पर कार्यशील पूँजी की बडी भारी कमी पड जाती है जिसका परिणाम उद्योग की सफलता के लिए घातक सिद्ध हो सकता है, इसलिए कॉरपोरेशन का प्रधान उद्देश्य चालू व नवीन सावजनिक कम्पनियो को मध्यकालीन व दीर्घकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करना है, किन्तु वे उद्योग जो बुनियादी उद्योगों की श्रेणी में है अथवा जिनका राष्ट्रीयकरण हो चुका है, इस साख सहायता के भागीदार नही बन सकते। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि *प्रमन्डल केवल उन्ही उद्योगो को आर्थिक सहायता देगा,* जो सावजनिक अथवा लोक सीमित होंगे अथवा जो सहकारिता के सिद्धान्तानुसार काय कर रहे है। यह आर्थिक सहायता केवल उन क्षेत्रो तक सीमित रहेगी जिनमें प्रमण्डल सन्नियम लागू होता है, अतएव स्पष्ट है कि अलोक सीमित प्रमण्डल तथा साभेदारी सस्थाएँ प्रमण्डल द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का लाभ न उठा सकेंगी। प्रमण्डल ने अपन द्वितीय तथा तृतीय वार्षिक वृत्त लेख में सूचित किया है कि जनता प्रमण्डल क उपर्युक्त कार्य क्षेत्र को भली प्रकार नहीं समझ सकी है, अत. अनेक प्रार्थना पत्रो को बिना विचारे ही वापस करना पडता है।

औद्योगिक अर्थ निगम के कार्य (Functions of I. F. C)—

(१) किसी भी सीमित प्रमन्डल को एव सहकारी समितियो को वस्तुओ का उत्पादन अथवा क्रिया कलाप (Processing) करता है, खान, बिजली अथवा अन्य किसी शक्ति का उत्पादन एव वितरण करता है। अधिक से अधिक २५ वष की अवधि के लिए निगम ऋण दे सकता है।

(२) औद्योगिक कम्पनी के अश तथा ऋण पत्रों का अभिगोपन करना, किन्तु अभिगोपन समझौते के अनुसार निगम को चाहिए कि ७ वर्ष की अवधि में उन अशो अथवा ऋण पत्रों को जनता को बेच दे।

(३) अर्थ निगम औद्योगिक कम्पनियों के ऋण पत्रो के ब्याज तथा मूल

राशि के भुगतान की गारन्टी दे सकता है यदि ऋण पत्र खुले बाजार म बेचे गये हो और उनकी अवधि २५ वष से अधिक न हो। इस काय के लिए अथ निगम कमीशन लेन का भी अधिकारी है।

(४) यदि किसी उद्योग को विदेशी मुद्रा म ऋण लेन की आवश्यकता हो तो अथ निगम केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बाद पुनसङ्गठन और विकास की अन्तराष्ट्रीय बक (I B R D) से अथवा अन्य विदेशी श्रोता से ऋण ले सकता है और इस प्रकार सुविधा के लिए अथ निगम के पास जो भी सम्पत्ति जमानत के लिए हो उसे वह देशी लेनदारो के पास रहन रख सकता है।

(५) अथ निगम को ऋण लेन वाले उद्योग की सचालक सभा म अपना प्रतिनिधि मनोनीत करन का तथा ऋण की शर्तों को भङ्ग करन पर उद्योग को अपन नियत्रण म लेन का अधिकार है।

(६) अथ निगम ऋण लेन वाल उद्योग को तान्त्रिक सलाह देन के लिये तान्त्रिक सलाहकार समिति नियुक्त कर सकता है।

(७) अथ निगम का सचित कोप (Reserve Fuud) जब तक दत्त पूजी के बराबर न हो जाय एव लाभ पूर्ति के लिए केन्द्रीय सरकार से प्राप्त राशि का भुगतान न हो जाय तब तक यह २३% से अधिक लाभांश नहीं दे सकता परन्तु किसी भी वष ५% स अधिक लाभाश नहीं दे सकता और यह लाभ दन के बाद जो राशि बचेगी उस पर केन्द्रीय सरकार का भाग होगा।

(८) अथ निगम को अन्य कम्पनियों की भाँति आय कर तथा अतिरिक्त कर (Super tax) भी देना होगा किन्तु केन्द्रीय सरकार से गारन्टी लाभ को पूरा करन के लिए जो राशि मिलेगी वह कर मुक्त होगी।

(९) केन्द्रीय सरकार की पूव अनुमति के बिना अथ निगम को अपना समापन करन का अधिकार नहा है।

(१०) अपन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए निगम अन्य काय भी कर सकता है।

(११) अथ निगम किसी एक उद्योग को अपना दत्त पूजी के १०% या ५० लाख रुपये (जो राशि कम हो) स अधिक ऋण नहा द सकता और न किसी उद्योग के अश को ही खरीद सकता है।

ऋण देने की शर्तें—

अपन उद्देश्यानुसार अथ निगम किसी सीमित पब्लिक कम्पनी तथा सहकारी समिति को निम्न शर्तों पर ऋण दे सकता है —

(१) ऋण मुख्यत स्थायी एव अचल सम्पत्ति खरीदन के लिय अचल सम्पत्ति जसे—भू गृहादि यन्त्र औजार आदि, की प्रथम रहन (First Mortgage) पर

दिया जाता है। यह कम्पनी कार्यशील पूँजी के लिए कच्चे पक्के माल के आधीन ऋण न देगी, *क्योंकि यह काम व्यापारिक बेंकों का है। अर्थ निगम उनके साथ प्रतियोगिता* नहीं करना चाहता।

(२) दिये हुए ऋण का समुचित प्रबन्ध एवं व्यय हो रहा है या नहीं इस बात को निश्चित करने के लिये ऋण लेने वाली कम्पनी के सचालकों से उनकी व्यक्तिगत स्थिति में वैयक्तिक तथा सामूहिक जमानत ली जाती है, जिससे उद्योग का प्रबन्ध समुचित रीति से हो सकें।

(३) अर्थ निगम को उद्योग की सचालक सभा में दो सचालकों की नियुक्ति करने का अधिकार है, जिससे वे सचालक उद्योग के प्रबन्ध का निरीक्षण करते हैं तथा यह भी देखते हैं कि उसका प्रबन्ध अर्थ निगम के हित में हो रहा है या नहीं।

(४) औद्योगिक कम्पनी को उन्नतिशील वर्षों में होने वाला लाभ लाभांश देने में ही न बाँटा जाय, इसलिए जब तक ऋण का भुगतान न हो तब तक वह उद्योग ६% से अधिक लाभांश न दे सकेगा। हाँ, दोनों की सहमति से इस दर में परिवर्तन सम्भव है।

(५) ऋण भुगतान की अवधि साधारणतः १२ वर्ष है, परन्तु अभी तक जो अधिकतम अवधि दी गई है वह १५ वर्ष है। इस शर्त के अतिरिक्त ऋण भुगतान की अवधि ऋण लेने वाली कम्पनी के व्यापारिक स्वरूप और उसके भविष्य के अनुसार निश्चित की जाती है।

(६) ऋण का भुगतान सामान्यतः समान प्रभागों (Equal Instalment) में होना चाहिये, परन्तु ये प्रभाग कितने होंगे, यह दोनों की सहमति से निश्चित होता है।

(७) अर्थ निगम के पास रहन रखी हुई सम्पत्ति का आग, साम्प्रदायिक कलह, विद्रोह आदि की सुरक्षा के लिए किसी अच्छे बीमा प्रमण्डल से बीमा कराना अनिवार्य है।

(८) जब उद्योग को ऋण दे दिया जाता है तो उसका उपयोग जिस कार्य के लिये ऋण लिया गया है उसी कार्य के लिये हो रहा है अथवा नहीं, यह देखने के लिये अर्थ निगम आवश्यक कदम उठाता है।

निगम का प्रबन्ध—

निगम का प्रबन्ध एक सचालक समिति द्वारा होता है, जिसकी सहायता के *लिये एक शासकीय समिति (Executive Committee)* और एक जनरल मैनेजर भी होता है। सचालक समिति में कुल १२ सदस्य हैं, जो निम्नलिखित पद्धति से निर्वाचित अथवा मनोनीत होते हैं :—

(अ) केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत— ३
(आ) रिजर्व बैंक द्वारा मनोनीत— २
(इ) अनुसूचित अधिकोषों द्वारा निर्वाचित— २
(ई) सरकारी अधिकोषों द्वारा निर्वाचित— २
(उ) उपर्युक्त अधिकारियों के अलावा अंशधारियों द्वारा निर्वाचित— २
(ऊ) प्रबन्ध संचालक, जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार ने की है— १

प्रबन्ध अथवा शासकीय समिति में ५ सदस्य हैं, जिनमें से प्रबन्ध संचालक तथा निर्वाचित संचालकों के निर्वाचित २ तथा मनोनीत संचालकों द्वारा निर्वाचित २ संचालकगण उद्योग, व्यापार तथा जनहित को सामने रखते हुए व्यापारिक सिद्धान्तों का पालन करेंगे, ऐसी उनसे आशा की जाती है। यदि संचालक समिति उचित समझे तो विभिन्न बातों के विचारार्थ सलाहकार समितियाँ नियुक्त कर सकती है। कॉरपोरेशन की सामान्य नीति का संचालन केन्द्रीय सरकार करेगी। केन्द्रीय सरकार को अन्य अंशधारियों के अंशों को खरीदने का भी अधिकार है। ऐसे क्रय पर वह १०% से अधिक प्रव्याजि न देगी। केन्द्रीय सरकार को कॉरपोरेशन के ऋणों का, विनियोग का, प्रत्याभूतित (Guaranteed) ऋणों का तथा अभिगोपन के अनुबन्धों का परीक्षण करने का भी अधिकार है। इस प्रकार प्रमण्डल की कार्य प्रणाली पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण नियन्त्रण है।

पूँजी का कलेवर—

कॉरपोरेशन की अधिकृत पूँजी १० करोड़ रुपये है जो ५,००० रु० के २०,००० अंशों में विभाजित है। अंशों की मूल राशि तथा २½ लाभांश की प्रत्याभूति केन्द्रीय सरकार ने दी है। इनमें से केवल १०,००० अंशों का ही निर्गमन किया गया है, शेष आवश्यकता के समय निर्गमित किये जायेंगे। इन अंशों का क्रय करने का अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनी, पूँजी लगाने वाले ट्रस्ट तथा इसी प्रकार की वित्त संस्थाओं को है, अतएव यह स्पष्ट है कि कॉर्पोरेशन के शेयर खरीदने व पूँजी में योग देने का अधिकार किसी व्यक्ति विशेष को नहीं है।

लाभ वितरण—

प्रमण्डल के नियमों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कॉरपोरेशन एक बचत कोष रखेगा। सन्देहास्पद ऋण, सम्पत्ति का मूल्य ह्रास तथा इस प्रकार के अन्य व्यापारिक घाटों के लिए निश्चित करने के बाद यदि कुछ लाभ शेष बचे तो उसे कॉरपोरेशन अंशधारियों में बाँट देगा, किन्तु इस भाग की दर उस समय तक सरकारी गारन्टी से अधिक नहीं हो सकती, जब तक कि उस बचत कोष का धन कॉरपोरेशन की प्रदत्त पूँजी के बराबर न हो जाय।

निगम द्वारा किए गये कामों का ब्यौरा—

औद्योगिक अर्थ निगम ने ३० जून सन् १९५९ को ११ वर्ष पूर्ण किए और इन ११ वर्षों में निगम ने अनेक प्रकार की औद्योगिक संस्थाओं को ऋण दिए हैं। निगम के पास इन ११ वर्षों में जितने आवेदन पत्र आए एवं जिन्हें ऋण स्वीकृत किये गए तथा जिन आवेदन-पत्रों को अस्वीकार किया गया, उसका ब्यौरा इस प्रकार है .—

तालिका I

(हजार रुपयों में)

क्रमांक	विवरण	संख्या	३० जून सन् १९५७ तक	संख्या	३० जून सन् १९५८ तक	संख्या	३० जून सन् १९५९ तक
१.	प्राप्त आवेदन-पत्र	६७	२१,३६,२५	४८	१४,८८,५०	२६	११,१६,५७
२	स्वीकृत आवेदन पत्र	५१	११,९०,७५	२२	७,७८,५०	१९	३,७९,००
३.	भुगतान किए गए ऋण	—	९,७७,५०	—	८,३३,३५	—	७,४७,७१
४.	अस्वीकृत प्रार्थना पत्र	१४	४,८७,५०	१	१०,००	३	३१,५०
५.	वापस लिए हुए अथवा लैप्स्ड(lapsed) प्रार्थना पत्र	१०	?,७३,१०	१०	२,११,५०	२२	९,७९,५०
६.	वर्ष के अन्त में विचाराधीन प्रार्थना पत्र	२६	११,३७,००	४१	१४,९८,४०	२३	११,७०,९७

इस वर्ष ऋण सम्बन्धी प्रार्थना पत्र गत वर्ष की तुलना में कुछ कम रकम के लिए प्राप्त हुए। प्रार्थना-पत्रों की संख्या भी कम थी। इसी प्रकार स्वीकृत कुल रकम भी पहले की अपेक्षा कुछ कम है। इन कमियों का प्रमुख कारण विदेशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाइयाँ है जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक संस्थायें पूँजीगत सामान आयात नहीं कर पा रही हैं।

औद्योगिक अर्थ निगम (संशोधन) अधिनियम सन् १९५७ के अंतर्गत् निगम को स्थगित चुकारों (Deferred Payments) की गारन्टी करने का भी अधिकार मिल गया है। औद्योगिक संस्थाओं द्वारा विदेशों से पूँजीकृत माल (Capital Goods) आयात करने के सम्बन्ध में जो स्थगित भुगतान थे, उनकी गारन्टी अर्थ निगम ने दी। इसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

तालिका II

क्रमाक	विवरण	संख्या	२१ जून सन् १९५७ से ३० जून सन् १९५८ तक रु०	संख्या	३० जून सन् १९५९ तक रु०
१.	स्थगित भुगतान के हेतु गारन्टी के लिए प्राप्त प्रार्थना पत्र	६	५,२४,००,०००	११	१६,५०,८०,५००
२	स्वीकृत प्रार्थना पत्र ..	३	३,९६,००,०००	२	३५,००,०००
३.	अस्वीकृत " " ..	—	—		—
४.	वापस ले लिए गए प्रार्थना पत्र ..	—	—	५	५,१४,१७,७००
५.	विचाराधीन प्रार्थना-पत्र ..	३	१,२८,००,०००	७	१२,२९,६२ ८००

गत वर्षों म अर्थ निगम द्वारा ऋण के हेतु कुल ३०० प्रार्थना पत्र स्वीकार किए गए, जिनमें से १८५ उन नई औद्योगिक सस्थाओं से सम्बन्ध रखते है जिनका उत्पादन काय १५ अगस्त सन् १९४७ क बाद शुरू हुआ। इन सस्थाओं को कुल मिलाकर ४४,२२,५०,००० रुपए की आर्थिक सहायता ऋणस्वरूप दी गई। शेष ११५ सस्थाय पुरानी थी, जिन्हे नवकरण, आधुनिकीकरण तथा कार्य विस्तार के हेतु २२,४६,५०,००० रु० की पूँजी दी गई।

जो प्रार्थना पत्र अस्वीकृत किये गये उनकी अस्वीकृति के कारणो को मोटे तौर पर निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है :—

(१) प्रार्थी द्वारा योजना का त्याग देना या स्थगित करना,

(२) प्रार्थी द्वारा योजना में सशोधन करना,

(३) प्रार्थी की आर्थिक स्थिति में सुधार,

(४) अन्य श्रोतो से ऋण उपलब्ध हो जाना,

(५) निगम की शर्तों को पूरी न कर पाना।

औद्योगिक अर्थ निगम द्वारा गत ११ वर्षों में भारत के जिन विभिन्न उद्योगो को ऋण स्वीकार किए गए, उनका सक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

तालिका III

क्रमांक	उद्योग का प्रकार	३० जून सन् १९५८ तक स्वीकृत ऋण रु०	३० जून, १९५९ को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए रु०	योग रु०
१.	वस्त्र मशीनरी	८३,००,०००	—	८३,००,०००
२.	मेकैनीकल इञ्जीनियरिंग	२,०८,००,०००	२०,००,०००	२,२८,००,०००
३	एलेक्ट्रीकल इञ्जीनियरिंग	१,७५,७०,०००	६,००,०००	१,८१,७०,०००
४.	सूती वस्त्र	८ ७२,७५,०००	६५,००,०००	९,३७,७५,०००
५.	ऊनी वस्त्र	३५,००,०००	—	३५,००,०००
६.	रेयन	१,१०,००,०००	—	१,१०,००,०००
७	रासायनिक	८,५३,२५,०००	—	८,५३,२५,०००
८.	सीमेन्ट	५,०७,०० ०००	१,१०,००,०००	६,१७ ००,०००
९.	सेरेमिक एण्ड ग्लास	१,९१,७५,०००	—	१,९१,७५,०००
१०.	तेल मिल	११,००,०००	—	११,००,०००
११.	विद्युत शक्ति	८२,७५,०००	—	८२,७५,०००
१२.	मेटॅलर्जीकल उद्योग	४५ ५०,०००	—	४५,५०,०००
१३.	लौह व स्पात	२,२७,५०,०००	३३,००,०००	२,६०,५०,०००
१४.	अल्यूमीनियम	५०,००,०००	—	५०,००,०००
१५.	शक्कर या चीनी	१९,१७,००,०००	१,४५,०० ०००	२०,६२,००,०००
१६	खनिज	३७,००,०००	—	३७,० ,०००
१७	कागज	५ ७१,५०,०००	—	५,७१,५०,०००
१८.	ऑटोमोबाइल व ट्रेक्टर	१,६४,५०,०००	—	१,६४,५०,०००
१९	प्लाईवुड	३०,००,०००	—	३०,००,०००
२०.	अवर्गित	१,१६,८०,०००	—	१,१,,८०,०००
	योग	६२,९०,००,०००	३,७६,००,०००	६६,६६,००,०००

गत वर्ष अन्तरिम ऋण (Interim Loan) के प्रदान करने में भी निगम ने बड़ी नर्मी दिखलाई। ऐसे ऋणों की मात्रा ४,२४,६५,००० रु० थी।

औद्योगिक अर्थनिगम संशोधन अधिनियम सन् १९५३—

औद्योगिक अर्थनिगम का कार्य क्षेत्र तथा आर्थिक साधन बढ़ाने के लिए उपयुक्त

अधिनियम बनाया गया, जिससे दीर्घकालीन ऋण देने में वह अधिक उपयोगी हो सके। इस संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत निगम को निम्नलिखित अधिकार मिल गए हैं —

(१) औद्योगिक संस्थाओं की परिभाषा के अन्तर्गत जहाजी कम्पनियों का भी समावेश होगा, जिन्हें अर्थनिगम ऋण दे सकेगा।

(२) प्रत्येक उद्योग प्रमण्डल को अर्थनिगम १ करोड़ रुपया अधिकतम ऋण दे सकेगा।

(३) सरकार अथवा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक द्वारा भारतीय उद्योगों को जो ऋण दिए गए हैं, उनका निरीक्षण सरकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के प्रतिनिधि के नाते अर्थ-निगम स्वयं करेगा।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से अर्थनिगम जो ऋण लेगा, उसकी जमानत भारत सरकार देगी तथा इस प्रकार के विनिमय व्यवहारों में निगम को जो हानि होगी उसकी क्षति पूर्ति केन्द्रीय सरकार करेगी।

(५) केन्द्रीय सरकार की जमानत पर अर्थनिगम किसी एक उद्योग प्रमण्डल को एक करोड़ रुपये से अधिक ऋण दे सकेगा, परन्तु ऐसी जमानत के लिए अर्थनिगम द्वारा ऋण की स्वीकृति की सिफारिश आवश्यक है।

(६) अर्थनिगम अपनी राशि रिजर्व बैंक की सलाह से किसी भी सूचीबद्ध बैंक अथवा प्रान्तीय सहकारी बैंक के पास निक्षेप (Deposit) में रख सकेगा। इस संशोधन से यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी राशि का विनियोग सरकारी प्रतिभूतियों में ही करे। इससे अर्थनिगम को ब्याज की हानि नहीं होगी।

(७) अर्थनिगम अपनी कार्यशील पूँजी के लिए १८ माह से अधिकतम अवधि के लिए ३ करोड़ रुपए का ऋण ले सकेगा। इससे निगम को स्वीकार करते ही बन्ध अथवा ऋण पत्रों के निर्गमन की आवश्यकता नहीं रहेगी। जब तक अर्थनिगम का संचित कोष ५० लाख रुपये तक नहीं हो जाता, तब तक रिजर्व बैंक एवं केन्द्रीय सरकार को मिलने वाले लाभांश इसी में जमा होंगे।

(८) किसी ऋण लेने वाले उद्योग का नियन्त्रण अर्थनिगम ले सकेगा। इस सम्बन्ध में ३०A से ३० E तक नई धारायें जोड़ दी गई हैं। इससे नियन्त्रित उद्योग में वह अपने संचालकों की नियुक्ति करेगा, जिसके बाद पूर्व संचालक अपना पद छोड़ देंगे। दूसरे, मैनेजिंग एजेन्टस का उद्योग प्रमण्डल के साथ जो अनुबन्ध होगा उसका बिना किसी क्षति पूर्ति के अन्त हो जायगा। तीसरे, अंशधारियों के मनोनीत संचालकों की नियुक्ति निरस्त होगी और बिना अर्थनिगम की अनुमति के अंशधारियों द्वारा स्वीकृत कोई भी प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं हो सकेगा। चौथे, अर्थनिगम की अनुमति के बिना किसी उद्योग प्रमण्डल का समापन भी नहीं हो सकेगा।

(९) अर्थनिगम की संचालक सभा पर केन्द्रीय सरकार के मनोनीत ४ सचा-

लक होंगे तथा उप प्रबन्ध-सचालक (Deputy Managing Director) सचालक सभा में बैठ सकेगा, किन्तु उसे मत देने का अधिकार न होगा। इसी प्रकार प्रबन्ध-सचालक को किसी भी समय निकाला जा सकता है। हाँ, ऐसी परिस्थिति में प्रबन्ध सचालक को स्पष्टीकरण करने के लिए समुचित अवसर दिया जायगा, किन्तु दो-तिहाई बहुमत से सचालक सभा चाहे तो उसे कर सकती है।

प्रमण्डल की कठिनाइयाँ—

गत वर्षों में कॉरपोरेशन ने करोड़ो रुपयो के ऋण औद्योगिक सस्थाओ को प्रदान किये, किन्तु फिर भी प्रमण्डल पूर्णरूपेण सहायता नही पहुँचा सका। कॉरपोरेशन का तो अनुभव यह है कि भारतीय औद्योगिक कलेवर की नाडी कमजोर है। प्रमण्डल के मार्ग में मुख्य बाधायें निम्न हैं :—

(१) **योजना का अभाव**—अनेक उदाहरणो में ऐसी योजनायें कॉर्पोरेशन के के पास भेजी गई, जिसमे तान्त्रिक पहलुओ व वित्त समस्याओ पर पूर्ण विचार नही किया गया था। कुछ में तो यह भी नही बताया गया कि भूमि, इमारत, मशीनरी आदि अन्य विभागो पर अलग अलग कुल कितनी राशि व्यय होगी। ऐसे भी उदाहरण है, जहाँ मशीन आदि इसलिए खरीद ली गई है, क्योकि वे सस्ते दामो में उपलब्ध है। ऐसी अधूरी कागजी योजनाओ में वास्तविक योजना के मूल तत्वो का अभाव होना स्वाभाविक ही है। मॉग और पूर्ति की समस्याओ पर तो अधिकाँश सस्थायें पर्याप्त रूप से सोचने में असमर्थ रही है, अत. ऐसी दशा में कारपोरेशन के लिए अन्धाधुन्ध ऋण देना क्योकर सम्भव हो सकता है ?

(२) **अपर्याप्त साधन**—अनेक उदाहरण ऐसे है, जिनमें पूँजी आवश्यकता से बहुत कम है। ऐसी सस्थाओ को ऋण देकर उनका अहित करना है।

(३) कुछ उदाहरणों में यद्यपि प्राप्त पूँजी पर्याप्त थी, किन्तु सस्था की अधिकाँश सम्पत्ति गिरवी रखी जा चुकी थी। ऐसे भी उदाहरण है, जहाँ सस्था के सारे अश प्रवतको को उनसे ली गई सम्पत्ति के बदले में दे दिए गए हैं और ऐसी सम्पत्ति बहुत अधिक मूल्य पर प्राप्त की गई है।

(४) ऐसे भी प्रमण्डल है जो ऋण स्वीकृत हो जाने पर भी वैधानिक कार्यवाही पूरी नही करते और न इस दिशा मे प्रयत्न ही करते है।

अतः औद्योगिक अर्थ प्रमण्डलो को चाहिए कि वे उक्त कठिनाइयों को दूर करने में तथा अधिकाधिक सहायता प्रदान करने में औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल को सहयोग दें, तभी विकास सम्भव है।

कॉरपोरेशन के कार्य-क्रम की आलोचना—

(१) अर्थ प्रमण्डल का आरम्भ इतना अच्छा नही रहा, जिससे प्रेरित होकर

इसकी अत्यधिक प्रशंसा की जाय। अन्य देशों की अपेक्षा भारतीय प्रमण्डल ने देश की बहुत थोड़ी सेवा की है।

(२) प्रमण्डल द्वारा दिए गये ऋणों पर ब्याज की दरें सभी संस्थाओं के लिये समान रही हैं। यह बात असंगत प्रतीत होती है, क्योंकि प्रत्येक औद्योगिक संस्था की आर्थिक स्थिति भिन्न होती है, अतएव प्रत्येक संस्था की दृढ़ता तथा भविष्य को ध्यान में रखकर ब्याज की दर निश्चित करनी चाहिये।

(३) ऋण के आवेदन पत्रों पर विचार करते समय कॉरपोरेशन इस बात से अधिक प्रभावित हुआ है कि किस प्रमण्डल के अंशों का मूल्य बाजार में अधिक है और किसका नहीं। यह पद्धति दोषपूर्ण है, क्योंकि 'अंश की कीमत' के अतिरिक्त भी ऐसे अन्य महत्वपूर्ण विषय हैं (जैसे, कम्पनी के पिछले वर्षों का प्रभाव, वर्तमान आय शक्ति, प्रबन्ध सुचारुता इत्यादि) जिनका ध्यान रखना आवश्यक है।

(४) अधिकांश ऋणों की अवधि, जो प्रमण्डल ने औद्योगिक संस्थाओं को दिए हैं, केवल १२ वर्ष की है। यह अवधि बहुत कम है। नियमानुसार अवधि २५ वर्ष हो सकती है, किन्तु इस नियम का अभी तक उपयोग नहीं उठाया गया है।

(५) प्रमण्डल ने अभी तक अंश अथवा ऋण पत्रों के अभिगोपन तथा प्रत्याभूति का कार्य नहीं किया है।

(६) प्रमण्डल की ओर से अभी तक कोई आर्थिक अनुसन्धान विभाग नहीं खोला गया है, जिसकी बड़ी आवश्यकता है।

(७) अंश खरीदने का अधिकार केवल वित्त सम्बन्धी संस्थाओं व केन्द्रीय सरकार को ही है, अतः प्रमण्डल जन साधारण की संस्था नहीं कही जा सकती।

(८) प्रमण्डल द्वारा ऋण केवल सार्वजनिक तथा सहकारी संस्थाओं को ही मिल सकता है, अतः अलोक प्रमण्डल (Private Companies) तथा साझेदारी की संस्थायें इस लाभ से वंचित हैं।

"आलोचना की कई बातों में तथ्य ही नहीं मार्गदर्शन की रेखा भी मिलती है, किन्तु सारी बातें न सही हैं और न सारपूर्ण ही हैं। यदि कॉरपोरेशन अपने अंशों को सभी व्यक्तियों तथा संस्थाओं के लिए केवल अपने नाम के आगे एक जनवादी बिल्ला लगाने के लिए ही उपलब्ध करदे तो लाभ के विपरीत हानि और अनर्थ अधिक होगा। जहाँ तक कॉरपोरेशन के प्रारम्भ का प्रश्न है, वह अन्य देशों की अपेक्षा कुछ कम आशामय लगता है, किन्तु हमें अपने देश की स्थिति और आर्थिक साधनों का भी आलोचना करते समय ध्यान रखना चाहिये। कॉरपोरेशन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ही सार्वजनिक उद्देश्यों को विकसित करना है, अतः साझेदारी व्यापार व निजी उद्योगों की माँग वाली उक्ति भी समझ में नहीं आती।"

हर्ष का विषय है कि कॉरपोरेशन अपने कार्यक्रम सम्बन्धी कतिपय कठिनाइयो को दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। ऋण की स्वीकृति और वितरण के बीच जो लबा व्यवधान पड जाता था उसे कम करने के लिए और साथ ही ऋण लेने वाली कम्पनियो पर कानूनी व्ययो का भार कम करने के हेतु कॉर्पोरेशन ने प्रयोग के तौर पर अपनी दो शाखाओं पर कानूनी अधिकारी नियुक्त किये है, जो कॉर्पोरेशन के पास बन्धक रखी जाने वाली जायदाद के स्वत्वाधिकार की जांच किया करेंगे और ऋण सम्बन्धी प्रलेख तैयार करेगे। यदि यह प्रयोग सफल रहा तो प्रत्येक शाखा पर एक-एक कानूनी अधिकारी नियुक्त कर दिये जायेंगे। अपने ग्राहको की अधिक सुविधा के लिये कॉर्पोरेशन ने अन्तरिम ऋण (Interim Loans) देने की शर्तें उदार कर दी है, विशेषत. उन दशाओं में जबकि ऋण सम्बन्धी कानूनी कार्यवाही करनी रह गई है और अतिम निर्णय हो चुका है।

औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल का भविष्य—

जिस समय औद्योगिक वित्त निगम स्थापित किया था उस समय केवल वही एक वृहत सरकारी वित्त सस्था थी, लेकिन अब अन्य सस्थाओ का भी विकास हो गया है, जैसे—औद्योगिक साख एव वित्त निगम, राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, राज्य वित्त निगम, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम। इसके विपरीत पच वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत औद्योगिक ऋण लेने वालो की सख्या एव आवश्यकता में भी बहुत वृद्धि हो गई है, अतः निगम के लिए सेवा के अवसर विस्तृत हो गए हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में निगम के चेयरमैन की यह चेतावनी उल्लेखनीय है कि यदि निगम पिछले वर्षों की भाँति ही अपने विनियोग का क्षेत्र बढाता गया तो बहुत शीघ्र उसके अपने मौद्रिक प्रसाधन लोप हो जायेंगे और उसे अनुचित शर्तों पर ऋण लेने के लिए विवश होना पडेगा, जिसके फलस्वरूप व्यय काट कर शायद ही कुछ लाभ बचे, अतः इस सम्बन्ध में उचित ध्यान देना आवश्यक है।

निगम के कार्यों की जांच के लिए सन् १९५३-५४ में सरकार ने जो कमेटी नियुक्त की थी, उसने निम्न सुझाव दिये थे:—

(१) जिन उद्योगो में पूर्ण क्षमता पहुँच गई है, उनको ऋण नही देना चाहिए।

(२) ऋण स्वीकृत करते समय जिन सिद्धान्तो का पालन वाछनीय समझा जाय उनके बारे में सरकार निगम को निर्देश दिया करे।

(३) सरकार निगम को स्पष्ट सकेत कर दे कि वह किन क्षेत्रो को पिछडा हुआ माने। इससे निगम इन क्षेत्रो को प्राथमिकता दे सकेगा।

(४) कॉर्पोरेशन इक्विटी केपीटल मे विनियोग न करे, जब तक कि उसका सचित कोष ५ करोड रुपया न हो जाय।

इन सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार कर लिया है।

जबकि ऋण मांगने वाला उद्योगपति अपने उद्योग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रार्थना पत्र देता है, निगम को सरकारी आदेशों का पालन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में ऋण प्रार्थियों और निगम में समन्वय नहीं हो पाता। इसके लिए हमारा सुझाव है कि निगम के अधिकारी ऋण प्रार्थियों और व्यापारिक मण्डलों के प्रतिनिधियों के समक्ष विचार विमर्श (Personal discussion) करें। यदि ऐसा किया जाय तो एक दूसरे की कठिनाइयों को अधिक समझ सकेंगे।

प्रान्तीय अर्थ निगम (State Finance Corporations)—

अखिल भारतीय औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल का क्षेत्र सीमित है, अतः औद्योगिक क्षेत्र के लिए प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डलों की आवश्यकता है, जो साझेदारी संस्थाओं, अलोक प्रमण्डलों तथा व्यक्तियों को भी ऋण प्रदान करें। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डल तथा औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल परस्पर सहयोग से कार्य करें, जिससे वे एक दूसरे के पूरक हों, क्योंकि मध्यम एवं लघु उद्योगों को आर्थिक सहायता देने का कार्य क्षेत्र विस्तृत होने से औद्योगिक अर्थ निगम को यह क्षेत्र अपनाने में कठिनाइयाँ भी होंगी। इसी हेतु संसद ने २८ दिसम्बर सन् १९५१ को 'प्रान्तीय आर्थिक अर्थ प्रमण्डल अधिनियम' पास किया, जो सम्पूर्ण भारत में लागू होता है।

इस विधान के अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय सरकार अपने प्रान्त में प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डल स्थापित कर सकती है। इस अधिनियम की अधिकांश धारायें औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल अधिनियम सन् १९४८ से मिलती जुलती हैं। केवल तीन बातों में भिन्नता है—(१) 'औद्योगिक संस्थाओं' की परिभाषा इस प्रकार विस्तृत की गई है कि प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों, साझेदारियों एवं यहाँ तक कि एकाकी स्वामित्व वाली संस्थायें भी इसके क्षेत्र में आ जाती हैं। (२) जन साधारण और अनुसूचित बैंक भी राज्य निगमों की अंश पूँजी में भाग ले सकती हैं। (३) ऋण की अवधि केवल २० वर्ष रखी गई है।

सन् १९५१ का अधिनियम पास होने से अब तक कुल १३ अर्थ निगम बन चुके हैं। इनका कार्य कुछ अधिक संतोषजनक नहीं रहा है और वे लघु एवं मध्यम उद्योगों की विशेष सहायता नहीं कर पाये हैं। इस असफलता के लिए कुछ तो अधिनियम की दुर्बलतायें उत्तरदायी थीं और कुछ सीमा तक लघु उद्योगों का स्वभाव एवं संगठन भी बाधक हुआ। ये उद्योग भली प्रकार संगठित नहीं थे, अतः वे निगम से सहायता माँगने में समर्थ नहीं हुये। फलतः सन् १९५६ में सन् १९५१ के राज्य वित्त निगम अधिनियम में संशोधन किए गए, जिनके उद्देश्य निम्न थे :—

(१) अधिनियम के कार्यान्वित करने में जो कतिपय कठिनाइयाँ गत कुछ वर्षों में अनुभव हुईं उन्हें दूर करना।

(२) दो या दो से अधिक राज्यो को पारस्परिक समझौते द्वारा एक संयुक्त वित्त निगम की स्थापना करने के लिए अनुमति देना।

(३) एक राज्य के विद्यमान वित्त निगम का क्षेत्र दूसरे राज्य पर एक पारस्परिक ठहराव के अन्तर्गत विस्तृत करना।

(४) राज्य वित्त निगम को केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार या अखिल भारतीय वित्त निगम की ओर से एजन्सी काय लेने की अनुमति देना।

(५) रिजर्व बैंक से लघुकालीन ऋण लेने की अनुमति देना।

(६) लघु एवं कुटीर उद्योगों को जिनके पास यथेष्ठ सम्पत्ति नहीं है किसी राज्य सरकार या अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक की प्रत्याभूति देने पर आर्थिक सहायता देने की अनुमति प्रदान करना।

(७) निगमो को अपने अधिकार में की गई औद्योगिक संस्थाओं के कुशल प्रबन्ध संचालन के लिए अधिकार प्रदान करना।

(८) रिजर्व बैंक को केन्द्रीय सरकार की आज्ञा पर राज्य वित्त निगमों की कार्य प्रणाली को जाँचने की अनुमति प्रदान करना।

यह अनुभव किया गया है कि लघु उद्योगो के विकास से रोजगार में विशेष वृद्धि होगी और आय में असमानता घटेगी अतः इनकी उन्नति पर सरकार बड़ा ध्यान दे रही है। लघु उद्योगो की उन्नति के लिए वित्तीय सहायता बड़ी आवश्यक है जो केवल राज्यों के वित्त निगम ही दे सकते हैं। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम इनको अधिक सहायता नहीं दे सकता क्योंकि लघु उद्योग सारे देश में बिखरे हुए हैं।

प्रबन्ध—

प्रत्येक प्रान्तीय संस्था के प्रबन्ध के लिए १० सदस्यों की एक सभा होगी जिसके सदस्यों की नियुक्ति इस प्रकार की जायगी —

(क) प्रान्तीय सरकार द्वारा मनोनीत संचालक	३
(ख) रिजर्व बैंक	१
(ग) औद्योगिक अर्थ निगम	१
(घ) प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त प्रबन्ध संचालक	१
(ङ) अनुसूचित बैंकों, सहकारी बैंकों तथा आर्थिक व्यवसायों तथा अंशधारियों में से प्रत्येक का अलग अलग प्रतिनिधि संचालक	४
कुल	१०

राज्य वित्त निगमों के कार्य—

राज्य वित्त निगम को निम्न के लिये अधिकार दिये गये हैं

(१) औद्योगिक संस्थाओं को ऋण देना या उनके ऋण पत्र खरीदना, जो कि २० वर्ष में वापस लिये जा सकते है।

(२) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा खुले बाजार में (२० वर्ष की अवधि में चुकता किये जाने वाले) ऋण निर्गमनों की प्रत्याभूति देना।

(३) औद्योगिक संस्थाओं के अंशों, ऋण पत्रों, बॉन्ड आदि का अभिगोपन करना, बशर्ते जो अंश आदि निगम को लेने पड़ें उन्हें ७ वर्ष के अन्दर बाजार में बेच दिया जाय।

पहले दो प्रकार की अर्थ सहायता निगम औद्योगिक संस्थाओं को तभी देगा जबकि उसके लिए पर्याप्त प्रतिभूति दी जाय, जोकि सहकारी या अन्य प्रतिभूतियों, स्वर्ण, चल या अचल सम्पत्ति के रूप में हो सकती है। हाँ, जब किसी राज्य सरकार या अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक ने प्रत्याभूति दी हो तो बिना पर्याप्त प्रतिभूति लिये ही निगम उक्त सुविधाएँ दे सकता है। एक औद्योगिक संस्था को निगम की दत्त पूँजी के १०% से या १० लाख रु० से, जो भी कम हो, अधिक सहायता नहीं दी जा सकती। यही नहीं, चूँकि निगम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक संस्थाओं को पूँजी प्राप्त करने में सहायता देना है, न कि एक सूत्रधारी कम्पनी या विनियोग प्रन्यास का कार्य करना, अतः निगम प्रत्यक्ष रूप से किसी कम्पनी के शेयर या स्टॉक नहीं खरीद सकता।

राज्य वित्त निगमों के अब तक किए गए कार्यों की आलोचना—

यद्यपि कई राज्यों में अभी वित्त निगम भली प्रकार स्थापित नहीं हो पाये हैं, तथापि कुछ वित्त निगमों के कार्यों से यह प्रकट होता है कि यदि उनकी संरचना एवं कार्य प्रणाली में कुछ परिवर्तन कर दिये जायें तो वे अधिक उपयुक्त बन सकते हैं। निगमों की प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) इन निगमों की रचना ऐसी है कि उद्योगों को अपने विस्तार के लिये अतिरिक्त स्थायी सम्पत्तियाँ (मशीनों, इमारतों आदि के रूप में) खरीदने के हेतु पूँजी की सहायता मिल सकती है, किन्तु अधिकांश लघु उद्योगों को कार्यशील पूँजी चाहिये, जिसे देने में राज्य निगम सकोच करते है।

(२) अधिकांश लघु उद्योगों का संगठन छोटे पैमाने पर हुआ है। उनकी वित्तीय आवश्यकताएँ निगम के कार्य क्षेत्र से परे रह जाती हैं, क्योंकि राज्य निगम एक न्यूनतम राशि से कम आर्थिक सहायता नहीं देते।

(३) लघु उद्योगों द्वारा उचित रूप से हिसाब किताब नहीं रखा जाता। ये उद्योग प्रायः एकल स्वामित्व या साझेदारी के आधार पर संगठित किये गये हैं। अतः इन पर हिसाब किताब सम्बन्धी कोई वैधानिक प्रतिबन्ध भी नहीं है। जब निगम किसी

उद्योग को सहायता स्वीकृत करता है तो वह यह आशा करता है कि उचित हिसाब-किताब रखा जायगा। छोटे छोटे उद्योग इसके लिये अपने को असमर्थ पाते हैं।

( ) लघु उद्योगों के पास प्रतिभूति के रूप में देने के लिए पर्याप्त स्थायी सम्पत्ति (B ock assets) नहीं है। भूमि और भवन प्रायः किराये का होता है, मशीनें भी कम होती हैं। यही नहीं, स्थायी सम्पत्ति का ५० % मजिन भी निगम छोड़ता है। फलस्वरूप उद्योग निगम को पर्याप्त प्रतिभूति नहीं दे पाते।

(५) अधिकांश राज्य वित्त निगमों ने कर मुक्त २½% न्यूनतम लाभांश की गारन्टी के आधार पर पूँजी प्राप्त की है, जिसके कारण वे स्वयं उद्योगों से ६% या ७% ब्याज लेने के लिये विवश हो जाते हैं, किन्तु यही अन्त नहीं है। उद्योगों को ऋण लेने में कुछ व्यय करना पड़ता है, जिसको मिलाकर कुल ब्याज लगभग ६-१०% पड़ जाता है।

STANDARD QUESTIONS

1 How far do you think the establishment of the Industrial Finance Corporation has been able to remove the drawbacks of Indian industrial finance and has helped in the growth of large scale industries in the Indian Union ? Examine critically in the light of its working for the last year.

2. Review the working of State Finance Corporations during the few years and offer suggestions for their better working

अध्याय १७

औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन के लिये विशिष्ट संस्थायें (II)

(Special Institution for the financing of Industries)

अन्य विशिष्ट अर्थ सस्थायें

(१) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम •

हमारे देश म बहुत दिना स राष्टाय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) की चर्चा चल रही थी। सौभाग्य का विषय है कि २० अक्टूबर सन् १९५४ को इस सस्था की स्थापना देहली में हो गई है। यह एक विशुद्ध राजकीय सस्था है, अत यह पूर्ण रूप से सरकारी स्वामित्व एव नियन्त्रण मे रहेगी, किन्तु औद्योगिक विकास तथा आधारभूत उद्योगो की स्थापना के हेतु आवश्यक तात्रिक अनुभव प्राप्त करने के लिये वह व्यक्तिगत उपक्रमियो (Private Enterprise) का सहयोग भी प्राप्त करेगी। यह सहकारिता इसी दृष्टि से प्राप्त की जा रही है, क्योकि देश को औद्योगिक विकास की तीव्र आवश्यकता है तथा उपभोक्ता उद्योगो (Consumer Industries) मे व्यक्तिगत उपक्रमा ने बहुत कुछ काय किया है एव भविष्य में भी वे देश की आवश्यकता को पूरा करने म काफी सहायक हो सकते है।

पूँजी—

'राष्ट्रीय औद्योगिक विकास' निगम की पूँजी एक करोड रुपया है, किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में केवल १० लाख रुपये की दत्त पूँजी होगी, जो सरकार देगी। इस निगम का रजिस्ट्रेशन भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत किया गया है। इस निगम को जो अतिरिक्त राशि की आवश्यकता होगी वह केन्द्रीय सरकार निम्न रीति से प्रदान करेगी —

(१) औद्योगिक योजनाओ के अध्ययन, अनुसधान एव औद्योगिक निर्माण के लिए तथा ऐसी ही अन्य औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति के लिए देश में आवश्यक तान्त्रिक एव शास्त्रीय कर्मचारियो का दल तैयार करने

के लिए वार्षिक अनुदान द्वारा। अनुदान की इस राशि का आयोजन वार्षिक बजट में किया जायगा।

(२) औद्योगिक विकास निगम की प्रस्तावित औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति के लिये आवश्यकता के समय देकर।

प्रबन्ध—

औद्योगिक विकास निगम का प्रबन्ध एक सचालक सभा द्वारा होगा, जिसमें २० सदस्य है। वाणिज्य एव उद्योग मन्त्री इसके सभापति है। इन सचालकों को केन्द्रीय सरकार ने मनोनीत किया है। औद्योगिक अनुभव तथा तान्त्रिक एव इन्जीनियरी कार्यक्षमता की दृष्टि से सचालक सभा मे १० उद्योगपति, ५ अधिकारी तथा ४ इन्जीनियर हैं।

उद्देश्य—

(१) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम का प्रमुख उद्देश्य देश की औद्योगिक उन्नति के लिए आवश्यक मशीनरी एव यत्र प्रदान करना तथा आधारभूत उद्योगों का प्रवतन एव उनकी स्थापना करना।

(२) देश के औद्योगिक विकास में सहायक वर्तमान व्यक्तिगत उद्योगों को तान्त्रिक एव इन्जीनियरिंग सेवाओं की सुविधा देना तथा यदि आवश्यक हो तो पूँजी देना।

(३) व्यक्तिगत उपक्रमियो को सरकार द्वारा स्वीकृत औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक तान्त्रिक, इन्जीनियरिंग, आर्थिक अथवा अन्य सुविधायें प्रदान करना।

(४) प्रस्तावित औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक अध्ययन करना, उनको तान्त्रिक, इन्जीनियरिंग तथा अन्य सुविधायें प्रदान करना तथा उनकी पूर्ति के लिए धन देना।

इस प्रकार राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम का उद्देश्य लाभार्जन न होते हुए देश के सुदृढ़ औद्योगिक कलेवर के निर्माण में सरकार के एजेन्ट के रूप में कार्य करना है, ताकि जल्दी से देश का औद्योगिक विकास हो सके।

इस उद्देश्य से निगम के बोर्ड ने २३ अक्टूबर सन् १९५४ को हुई अपनी पहली मीटिंग में उद्योगों की अस्थायी सूची तैयार की, जिसके अध्ययन से निगम को इस बात का पता लग जाय कि नया औद्योगिक विकास किस सीमा तक आवश्यक है और विद्यमान उद्योगों को किस सीमा तक बढ़ाना चाहिए? चुने गये उद्योग इस प्रकार है :—

(१) कुछ उद्योगो के लिए (जसे जूट कपास वस्त्र चीनी कागज सीमेंट, रासायनिक छपाई खान निर्माण एव यान्त्रिक आवागमन आदि उद्योग) मशीनरी और साज सज्जा (Machinery and Equipment) का निर्माण।

(२) लौह मिश्रण और मगनीज फरोक्राम।

(३) अल्मूनियम।

(४) ताबा जस्ता और अलोह धातुय।

(५) डीजल इंजन और जनरेटर।

(६) भारी रासायनिक द्रव्य।

(७) खाद और उवरक।

(८) कोयले और कोलतार का सामान।

(९) मथानाल, फोरमेल्डिहाइड।

(१०) काजल।

(११) कागज अखबारी कागज आदि बनाने के लिये लकडी की लुगदी।

(१२) कृत्रिम दवाय विटामिन और हारमोन।

(१३) एक्सरे और डाक्टरी औजार आदि।

(१४) हाइबोर्ड और इंसूलेशन बाड आदि।

लेकिन यह स्पष्ट है कि मशीनरी और साज सज्जा के निर्माण पर काफी जोर दिया गया है क्योकि अगले कुछ वर्षों म औद्योगिक विकास के विशाल कायक्रम पूरे करन पड गे। स्थूल मशीनरी एव उद्य ग की स्थापना के अलावा निगम कुछ विद्यमान उद्योगो को उनसे विशाल पैमाने पर उनके विकास के हेतु भी सहायता करेगा। उदाहरण के लिए भारत सरकार देश म ३० नये चीनी मिल स्थापित करके चीनी का उत्पादन १२ लाख टन से बढाकर १८ लाख टन करन का विचार कर रही है अत नये चीनी कारखानो की स्थापना के लिए उदारतापूवक लाइसे स दिये जा रहे है। सूती वस्त्र उद्योग की क्षमता म भी १०० बुनाई मिलो के बराबर वृद्धि करना आवश्यक है। सीमट का उत्पादन भी सन् १९६१ तक ४ ५ मिलियन टन से १० मिलियन टन तक बढना चाहिए अत निगम इन क्षत्रो में अतिरिक्त इकाइयां स्थापित करना चाहता है।

कुछ उद्योगो म जहा प्राइवेट और पब्लिक प्रयत्नो द्वारा कुछ उन्नति दिखाई गई है जैसे कि अल्मूनियम और फर्टिलाइजर उद्योगो म, निगम कोई हस्तक्षप नही करेगा। वह केवल तब ही सामन आवेगा जब अधिक सहायता या काय की आवश्यकता हो। फरोमेगनीज उद्योग म भी यदि प्राइवेट प्रयत्नो द्वारा प्रस्तावित और मर

कार द्वारा स्वीकृत योजनायें पूरी हो जाती हैं तो निगम कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। हाँ, पेय पदार्थों के उपयोग और कच्चे माल के विकास में काफी टैक्नीकल छानबीन और सहायता की आवश्यकता है, अतः निगम ने अपने उद्यमों की सूची में रेयोन, कागज, मजदारी कागज आदि के उत्पादन में काम आने वाले कोयला, कोलतार, लकडी की लुगदी आदि शामिल कर लिये हैं। इस काम के लिए एक जर्मन विशेषज्ञ भी आमन्त्रित किया गया है।

निगम के बोर्ड ने अनुभव किया है कि देश के शीघ्र औद्योगीकरण के लिए सबसे पहली बात उद्योगों को ठोस टैक्नीकल सहायता प्रदान करना है, अतः उसने परामर्शदाता इन्जीनियरों की एक संस्था स्थापित करने पर जोर दिया है। योग्य कार्यकर्त्ताओं का देश में मिलना कठिन होने के कारण उसने यह सुझाव दिया कि प्रारम्भिक अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त किसी फर्म को भारत में अपना कार्यालय खोलने के लिये आमन्त्रित किया जाय और यदि आवश्यक हो तो उसे कुछ फीस भी दी जाय। इस फर्म की सेवायें प्राइवेट उद्योगों के लिए भी सुलभ की जावेंगी। इसके अतिरिक्त बोर्ड ने यह भी निश्चय किया है कि व्यापक अनुभव वाले ३ या ४ इन्जीनियर भी रखे जावें, जो निगम को उनके सामने आने वाली टैक्नीकल समस्याओं के हल करने और निगम द्वारा कार्यान्वित की जाने वाली विशिष्ट-योजनाओं की रूप-रेखा तैयार करने के लिए उपयुक्त सलाह देंगे। इन प्रारम्भिक निर्णयों से यह प्रगट होता है कि निगम का दृष्टिकोण बड़ा व्यावहारिक है और वह अपने कार्यों को वास्तविक रूप में हल करना चाहता है।

(२) औद्योगिक ऋण एवं अर्थ निगम

(Industrial Credit and Finance Corporation)

यह एक विशुद्ध गैर सरकारी संस्था है, जिसकी स्थापना जनवरी सन् १९५५ में २५ करोड़ रुपये की अधिकृत पूँजी से हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य नये उद्योगों के प्रवर्तन को प्रोत्साहित करना, विद्यमान उद्योगों का विस्तार तथा आधुनिकीकरण करना एवं टान्त्रिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता देना है, जिससे राष्ट्रीय उत्पादन 'दिन दूनी रात चौगुनी' उन्नति करे और रोजगार के अवसरों की वृद्धि हो।

उद्देश्य—

औद्योगिक ऋण एवं अर्थ निगम का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तिगत क्षेत्रों के औद्योगिक उपक्रमों को सहायता प्रदान करना है। यह सहायता निम्न रीति से दी जावेगी :—

(१) ऐसे उपक्रमों के निर्माण, विस्तार एवं आधुनिकीकरण में आर्थिक सहायता देना।

(२) ऐसे उपक्रमों में देशी एवं विदेशी व्यक्तिगत पूँजी के विनियोग को प्रोत्साहन देना।

(३) विनियोग विपणि का विस्तृत करना एवं औद्योगिक विनियोगों के व्यक्तिगत स्वामित्व को प्रोत्साहित करना।

(४) व्यक्तिगत उपक्रमियों को मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन आर्थिक सुविधाय देना अथवा उनके निर्गमित साधारण अंशों को खरीद कर आर्थिक सुविधाय देना।

(५) नई कम्पनियों के अंशों एवं प्रतिभूतियों का अभिगोपन करना।

(६) व्यक्तिगत उपक्रमों के लिए व्यक्तिगत विनियोग स्रोतों से प्राप्त ऋणों की जमानत देना।

(७) चक्रित विनियोग द्वारा पुन विनियोग के लिए व्यक्तिगत उपक्रमों को राशि प्रदान करना।

(८) व्यक्तिगत उपक्रमों को प्रबन्ध सम्बन्धी तान्त्रिक एवं शासकीय सलाह देना एवं उनके उद्योगों को इस हेतु आवश्यक विशेषज्ञ प्रदान करना।

प्रबन्ध--

इस निगम का प्रबन्धक सचालक सभा द्वारा होगा, जिसमें ११ सदस्य तथा १ जनरल मैनेजर होगा। इन सचालकों में ७ भारतीय, २ ब्रिटिश, १ अमरीकी तथा १ सचालक वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय की ओर से है। इसके जनरल मैनेजर बैंक आफ इङ्गलैंड के प्रमुख कोषाध्यक्ष पी० एस० बील है तथा चेयरमैन श्री रामास्वामी मुदालियर है।

निगम ने प्रारम्भ में १००) वाले ५,००,००० पूर्णत शोधित साधारण अंश निर्गमित किये है, जो निम्न प्रकार से लिये गये है :—

(१) कई भारतीय बैंक तथा बीमा कम्पनियाँ और कुछ सचालक तथा उनके मित्र	२,००,०००
(२) अमरीका के कुछ नागरिक और निगम	५०,०००
(३) ब्रिटिश ईस्टर्न एक्सचेन्ज बैंक और ब्रिटेन तथा कामनवैल्थ के कुछ अन्य देशों की बीमा कम्पनियाँ तथा अन्य ब्रिटिश कम्पनियाँ	१,००,०००
(४) शेष आम जनता को प्रस्तुत	१,५०,०००

भारत सरकार ने कम्पनी को ७½ करोड़ रुपए की राशि देना स्वीकार कर लिया है, जिस पर कोई ब्याज न होगा। यह राशि कम्पनी को धन मिलने की तिथि से १५ वर्ष बीत जाने के बाद से शुरू होने वाली १५ वार्षिक किश्तों में चुकाई

जावेगी । सरकार को एक सचालक नामाकित करने का अधिकार है । विश्व बैंक ने कम्पनी को समय समय पर विभिन्न मुद्राओं में १ करोड डालर की राशि उधार देना स्वीकार कर लिया है । इस प्रकार निगम को १७½ करोड रुपये की कार्यशील पूँजी मिल गई है । यह भी आशा है कि इस निगम के माध्यम से विदेशी पूँजी को ऋणो के रूप में आने में मदद मिलेगी और कुछ ही समय में निगम के पास ५० करोड रुपये हो जावेंगे ।

निगम के अशधारी दूर-दूर तक फैले हुए है और इसके कार्यों तथा पूँजी नियोजन के अन्तर्गत छोटे-बडे सब तरह के उद्योग धन्धे आ जायेंगे । निगम दीर्घकालीन और मध्यकालीन ऋण देगा, अश पूँजी मे भाग लेगा और प्रतिभूतियो के नये निर्गमन का आगोपन करेगा । निगम का प्रारम्भित धन और वह धन जो इसको विश्व बैंक से मिलता है, यदि विवेक से काम में लाया जाय तो वह देश में व्यक्तिगत पूँजी बाजार के साधनो को और भी बढा सकता है तथा भविष्य में उपलब्ध सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी सुविधाओ को प्रोत्साहित कर सकता है ।

निगम के कार्य और उनकी आलोचना—

सन् १९५६ के अन्त में कम्पनी ने २४ योजनाओ के सम्बन्ध में सहायता देना स्वीकार किया था और शेष विचाराधीन थी । बाद मे कुछ और योजनायें स्वीकृत की गई । इस प्रकार कुल २८ योजनाओं के लिए ८ करोड से अधिक रुपया स्वीकृत किया जा चुका है । निगम के लिए यह कोई बडी सफलता नही कही जा सकती । यह भी दोष बताया जाता है कि निगम का कार्य बहुत धीमा है और अपनी ऋण एव विनियोग नीति मे वह अत्यधिक कृपणता से काम ले रहा है ।

इस सम्बन्ध में कम्पनी की द्वितीय वार्षिक व्यापक सभा में जोकि २२ अप्रैल सन् १९५७ को बम्बई में हुई, अध्यक्ष पद से अपने भाषण मे श्री रामास्वामी मुदालियर ने पर्याप्त प्रकाश डाला है । उन्होने बताया है कि निगम के विरुद्ध आक्षेपो की जाँच कराई गई है और वे सही नही लगे । उन्होने बताया कि कम्पनी को प्रारम्भ हुए अभी थोडा समय हुआ है, अत: सगठित होने व अनुभव प्राप्त करने में कुछ समय लगना अनिवार्य है । ऐसा ही कारोबार करने वाली भारत और विदेशो की अन्य कम्पनियो का भी रिकार्ड उनकी प्रारम्भिक अवस्थाओ में बहुत कुछ इस निगम के ही समान था । फिर निगम का कार्य क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है । वह कुछ ऐसे कार्यों को भी कर रहा है, जो कि अन्य कम्पनियो ने भारत में नही किये । निगम कोई पूर्णतः ऋण देने वाली कम्पनी मात्र नही है, जिसका सम्बन्ध केवल उस प्रतिभूति से हो जोकि बदले में उसे दी जा रही है । इसने अशो के अभिगोपन का कार्य भी किया और वस्तुत: कई कम्पनियो की अश पूँजी में भाग लिया है । इस सबके लिए यह स्वाभाविक है कि कम्पनी द्वारा प्रस्तुत किए गये आवेदन पत्रों की निकट से जाँच की जाय ।

(१) जहाँ उचित शर्तों पर यथष्ठ प्राइवेट पूँजी सुलभ नहीं है वहाँ पुनर्भुगतान के सम्बन्ध में सरकारी गारन्टी की अपेक्षा बिना और प्राइवेट विनियोगकों के सहयोग में उत्पादक प्राइवेट उपक्रमों में विनियोग करना।

(२) विनियोग के सुअवसरों प्राइवेट पूँजी (देशी एवं विदेशी) एवं अनुभवी प्रबन्धकों को परस्पर समन्वित करने के लिए क्लियरिंग हाउस का काम करना।

(३) प्राइवेट पूँजी के उत्पादक विनियोग को प्रोत्साहित करना।

कारपोरेशन अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के साथ मिल कर काम करेगा यद्यपि उनका एक पृथक वैधानिक अस्तित्व है और उसके कोष भी बैंक से बिल्कुल पृथक हैं। जो सरकार बैंक की सदस्य हैं वे ही निगम की सदस्य बन सकती हैं। बैंक के वे एक्जक्यूटिव डाइरेक्टर जो कम से कम एक सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं, निगम के डाइरेक्टर का भी काम करेंगे। बैंक का प्रेसीडेंट इस बोर्ड का चेयरमैन होगा। निगम का प्रसीडेंट बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स द्वारा चेयरमैन की सिफारिश पर नियुक्त किया जाता है और निगम का अपना स्टाफ है।

विनियोग सम्बन्धी प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए योग्यता गुण—

निगम विनियोग सम्बन्धी उन्हीं प्रस्तावों पर विचार करेगा जिनका उद्देश्य *किसी उत्पादक प्राइवेट उपक्रम (Productive Private Enterprise) की* स्थापना विस्तार या सुधार करना है। निगम से वित्तीय सहायता पाने वाले उपक्रम किसी सदस्य देश में ही स्थापित होने चाहिए। प्रारम्भिक वर्षों में कारपोरेशन केवल अविकसित देशों के बारे में ही अपना ध्यान केन्द्रित करेगा। निगम यह आशा करता है कि प्राइवेट विनियोग भी आवश्यक पूँजी का कम से कम आधा होगा। वस्तुतः निगम वित्तीय सहायता के लिए तभी हाथ बढ़ायेगा जबकि प्राइवेट विनियोग यथा सम्भव पूँजी दे चुके हों और नए पूँजी समुचित शर्तों पर प्राप्त करना असम्भव हो। प्रारम्भिक वर्षों में निगम ऐसे ही विनियोग प्रस्तावों पर विचार करेगा जिनमें उपक्रम का नया विनियोग कम से कम ५ लाख अमेरिकन डालर है और निगम से कम से कम १,००,००० डालर की सहायता माँगी गई है। सहायता की अधिकतम मात्रा तो अभी निर्धारित नहीं की गई किन्तु सामान्य नीति यह होगी कि कुछ इने गिने उपक्रमों *में बड़ी राशियाँ लगाने की अपेक्षा पर्याप्त संख्या में समुचित मात्रा के विनियोग* किये जायँ।

यों तो कार्पोरेशन में औद्योगिक कृषि वित्तीय व्यापारिक एवं अन्य प्राइवेट उपक्रम सभी सहायता ले सकते हैं बशर्ते उनका कार्य उत्पादन से सम्बन्ध रखता है तथापि प्रारम्भिक वर्षों में कार्पोरेशन, रुचि, उपक्रमों, की, चुनाव, जाति, औद्योगिक, प्रकृति के हो। वह गृह निर्माण अस्पताल स्कूल आदि सामाजिक उपक्रमों या साव

जनिक उपयोगिता क उपक्रमो में विनियोग नही करेगा। निगम किसी ऐसे वित्त प्रबन्ध में भी भाग न लेगा जोकि पुर्नप्रवन्धन (re financing) के लिए हैं।

निगम केवल प्राइवेट उपक्रमो को सहायता देगा, सरकारी उपक्रमो को नही। किसी उपक्रम में सरकारी कोष लगे रहने से ही वह निगम की सहायता से वंचित नही होगा, बशर्ते उसका स्वभाव एक प्राइवेट उपक्रम जैसा हो।

विभिन्न विचार-योग्य प्रस्तावों पर अंतिम निर्णय देते समय कॉरपोरेशन निम्न बातो का ध्यान रखेगा —

(१) निगम की सहायता से अन्य विनियोगको द्वारा प्राइवेट पूंजी का विनियोग कितना बढ जायगा ?

(२) निगम व उसके सहयोगियो को विनियोग से लाभ की क्या सम्भावनायें हैं ?

(३) निगम क विनियोग करने से उत्पादन को कितना प्रोत्साहन मिलेगा।

वित्तीय रूप के प्रबन्ध एव ढग—

कॉरपोरेशन को यह अधिकार है कि वह किसी भी रूप में विनियोग कर, किन्तु केवल एक अपवाद यह रखा गया है कि वह पूंजी अशो में विनियोग नही कर सकता, अत. निगम के विनियोग ऋण के समान होगे, किन्तु साधारण ऋणो की भाति नही होगे। कॉर्पोरेशन अपना विनियोग निरन्तर बदलता रहना चाहता है, अत. प्रत्येक दशा में उसका प्रमुख उद्देश्य विनियोग के सम्बन्ध मे ऐसा अधिकार प्राप्त करना हागा कि ऋण को अशो में बदला जा सके। कॉर्पोरेशन स्वय इस अधिकार का प्रयोग नही करेगा, किन्तु जिसे वह अपने ऋण बेच देगा वह ऐसा कर सकेगा। इस प्रकार निगम अपने सफल विनियोगो को लाभ पर बेच सकेगा। कॉरपोरेशन यह भी चाहगा कि स्थायी ब्याज के अलावा उसे लाभो में भी कुछ भाग दिया जाय, जिसस उपयुक्त क्रेता मिलने तक वह लाभ ग्रहण कर सके।

ब्याज की दर प्रत्येक दशा में विशिष्ट परिस्थितियो एव जोखम के अनुसार निश्चित की जावेगी। निगम द्वारा दिये गये ऋणो की अवधि प्राय: ५ से १२ वर्ष तक हुआ करेगी। किश्तो मे भी विनियोग के भुगतान की व्यवस्था की जा सकती है। निगम ऋण जमानत पर या बिना जमानत के दे सकता है। यदि वह जमानत लेगा तो उसका क्या रूप होगा, यह प्रार्थी की हैसियत एव विनियोग की शर्तों पर निर्भर है।

वित्तीय सहायता की रकम इकट्ठी दी जा सकती है या किश्तो मे। इस रकम का प्रयोग प्रार्थी उपक्रम अपने सामान्य व्यापारिक कार्यों में कर सकता है, किसी विशिष्ट सेवा या माल के भुगतान में उसका प्रयोग किया जाय, ऐसा कोई प्रतिबन्ध

नहो है। साधारणत ऋण का अमरीकी डालरो म मूल्याकन किया जायगा किन्तु उप युक्त दशा म वह अन्य करसी म भी किया जा सकता है।

निगम तब ही विनियोग करेगा जब उसे यह सन्तोष हो जाय कि प्रार्थी उप क्रम का प्रब धक वग योग्य एव अनुभवी है। किन्हा आवश्यक दशाओ म निगम उपयुक्त प्रबन्धक खोजन म सहायता दे सकता है किन्तु वह स्वय प्रबन्ध का उत्तरदायित्व ग्रहण नही कर सकता। निगम सामान्यत अपन प्राइवेट सहयोगियो से ही प्रबन्धक उपलब्ध करन की अपेक्षा रखता है। हा इतना वह अवश्य चाहेगा कि प्रबन्ध म कोई बडा परिवतन करन से पूव उसकी राय ले ली जायगी। वह बोड आफ डा रेक्टस म अपन प्रतिनिधि भी रख सकता है।

निगम इस बात का सन्तोष प्राप्त करना चाहेगा कि उपक्रमो को वास्तव म उस ऋण की आवश्यकता है और प्रबधको न एक उपयुक्त कायक्रम भी तयार कर लिया है। वह सस्था द्वारा पू जीगत सामान और सेवाओ के खरीदन का ढग भी जाच सकता है जिससे उसके विनियोग सुरक्षित रहे। यह भी आवश्यक है कि उपक्रम के हिसाब किताब का सरकारी अकेक्षको से निरीक्षण कराया जाय तथा वे निगम के प्रतिनिधियो के लिये खुले रहे। निगम को वार्षिक खाते प्रगति विवरण एव अन्य सूच नाए भजी जाय। निगम के प्रतिनिधियो को सहायता लेन वाले के उपक्रम प्लाण्ट *कारखान आदि को देखन का भी अधिकार होगा।*

कापारेशन सरकार की गारटी नहा मागेगा। हा यदि देश की सरकार को आपत्ति है तो कार्पोरेशन विनियोग नही करेगा। सम्बन्धित देश की सरकार को आपत्ति करन के लिये उचित अवसर प्रदान किया जाय। यदि किसी सदस्य देश की सरकार न विदेशी विनिमय पर प्रतिबन्ध लगा रखा हो तो एक साधारण विनियागक के रूप म निगम अपन विनियोग एव तत्सम्बन्धी लाभ के ट्रासफर के लिये सरकार के साथ उचित समझौता करेगा। इन सब मामला म निगम कोई विशेष अधिकार नही चाहेगा।

(५) पुनअर्थ प्रबन्धन निगम

(Refinance Corporation)

इस निगम की स्थापना का सुझाव बडा महत्वपूर्ण है। यद्यपि दीघकालीन साख की आवश्यकताओ को पूरा करन के लिए कई सस्थाय इस देश म है तथापि एसी कोई सस्था नही है जोकि केवल मध्यकालीन साख दन के लिए हो अत एसी सस्था की आवश्यकता है। अधिकाश बका न अपन मुवक्किलो को जो ऋण दे रख है व कागज पर तो अल्पकालीन ऋण है परन्तु व्यवहार म उन्हे मध्यकालीन ऋण कह सकत है क्योंकि उन्हे समय पर नया करा लिया जाता है किन्तु यह एक अस्थाई युक्ति

है और फिर द्रव्य बाजार की आजकल जैसी गिरी दशा है उसे देखते हुए तो बैंकों को बड़ी कठिनाइयाँ है।

निगम अपना कार्य १२·५ करोड रुपये की साधारण अंश पूँजी से प्रारम्भ करेगा। रिजर्व बैंक इनमें ५ करोड, स्टेट बैंक २·५ करोड, लाइफ कॉर्पोरेशन २.५ करोड तथा अन्य बैंक २·५ करोड लगायेंगे। भारत सरकार इस २६ करोड रु० ३० वर्ष के लिये ब्याज पर देगी। निगम ३ से ७ वर्ष तक के लिये ऋण दिया करेगा। ये ऋण मध्यम पैमाने की औद्योगिक इकाइयों को दिये जायेंगे और किसी भी एक संस्था को ५० लाख रु० से अधिक ऋण नहीं मिलेगा। निगम के कुल ३८·५ करोड रु० के कोष में से प्रत्येक भाग लेने वाले बैंक को एक कोटा निश्चित कर दिया जायगा। इस कोटे की न्यूनतम एवं अधिकतम सीमायें क्रमशः एक करोड एवं ५ करोड रुपया होगी। यदि कॉर्पोरेशन ५% ब्याज लेता है तो बैंक औद्योगिक संस्थाओं को दिये ऋणों पर ६·५% ब्याज से अधिक नहीं ले सकेंगे। उधार लेने वाले बैंक निगम को डिसकाउन्ट करने के लिये प्रस्तुत किये गये ऋणों पर पूर्ण जोखिम उठायेंगे।

निगम के मार्ग में निम्न कठिनाइयाँ आने की सम्भावना है :—

(१) यदि बैंक अपने मुवक्किलों को मध्यकालीन ऋण दिलाते हैं तो उनका सारा जोखिम अपने ऊपर लेना होगा। वास्तव में मध्यकालीन ऋण का क्षेत्र उनके लिये नवीन है और उनका अनुभव इस बारे में बहुत सीमित है, अतः स्वाभाविक है कि वे कुछ हिचकिचायें। हमारी सम्मति में सरकार को चाहिये कि इस जोखिम का कुछ अंश अपने ऊपर ले।

(२) बैंकों का १·५% का मार्जिन जो ब्याज के रूप में छोड़ा गया है, वह *जोखिम को देखते हुए कम है।*

(३) बैंकों के पास अभी इस क्षेत्र में सफल प्रयोग के हेतु कोई सन्तोषजनक आधार नहीं है। आवश्यक तो यह था कि पहले जनता से दीर्घकालीन निक्षेपों का विकास किया जाय। यदि भारतीय बैंक ३ से ६ वर्ष तक परिपक्वता वाले बॉन्ड सफलतापूर्वक निर्गमित कर सकें तो उद्योगों को मध्यकालीन साख देने का आधार स्थापित हो जायगा।

(४) मध्यकालीन ऋण देने की किसी भी योजना की सफलता सरकार की *प्रयुक्त एवं आर्थिक नीतियों पर निर्भर है, जो इस प्रकार की होनी चाहिए कि औद्योगिक* संस्थाओं को विस्तार के लिये उधार लेने की प्रेरणा मिले तथा शीघ्र चुकाने में सुविधा हो।

(६) मध्यम वित्त निगम की स्थापना

जून सन् १९५८ में मध्यम वित्त निगम की स्थापना हो गई है। प्रधान

कार्यालय बम्बई है। यह निगम पच वर्षीय योजना में सम्मिलित निजी क्षेत्र क मध्यम कारखानो को आर्थिक सहायता देगा।

निगम की पू जी ३१ करोड रुपया होगी जिसम स ५ करोड रुपया प द्रह बको स प्राप्त होगा। इन बको के प्रतिनिधि निगम के सचालक मण्डल म हागे।

बको के नाम ये ह स्टट बक सैंटल बक पजाब नशनल बक इलाहाबाद बक बक ग्राफ इण्डिया हैदराबाद बक बक ग्राफ बडौदा नशनल बक ग्राफ इण्डिया यूनाइटड कामशियल बक चारटड बक यूनाइटड बक ग्राफ इण्डिया तथा देना बक।

इन बको के प्रतिनिधि विशेष प्रशिक्षण के लिए अमरीका भज जायगे।

शेष २६ करोड रुपया भारत सरकार से निगम को ऋण के रूप म मिलगा। निगम को यह ऋण अमरीका स भारत को प्राप्त होन वाले १४० करोड रुपये म से दिया जायगा जिसके बारे म आजकल अमरीकी अधिकारियो के साथ बातचीत चल रही है।

शेष ११४ करोड रुपया विभिन्न योजनाओ पर खच किया जायगा।

आशा है कि भारतीय रिजव बक के एक वरिष्ठ अधिकारी श्री ई० रामसुब्रह्मण्यम मध्यम वित्त निगम क अध्यक्ष बनाये जायगे।

बड उद्योगो को औद्योगिक निगम से सहायता मिलती है।

STANDARD QUESTIONS

1 Describe the functions of (a) National Industrial Develop ment Corporation and (b) National Small Industries Corporation

2 Attempt a lucid note on the International Finance Corpo ration

3 What do you know about Refinance Corporation ?

4 What is Industrial Credit and Investment Corporation of India ? What part is it expected to play in the provision of Industrial Finance in India ?

5 Describe briefly the principal factors which inhabit private investment in industries at the present time in India

6 What do you mean by Investment Trusts ? Describe its classifications

अध्याय १८

भारत में जन-संख्या के वितरण की समस्या

(Problem of Distribution of Population in India)

'जन-सख्या के घनत्व' से आशय—

'जनसख्या के घनत्व' मे हमारा आशय यह है कि किसी दश अथवा किसी देश के राज्य म एक वर्ग मील म कितन व्यक्ति रहते हे। यदि हमको किसी देश की जन सख्या का घनत्व मालूम करना हो तो यह पता लगाना चाहिये कि उसका क्षेत्रफल कितना है और वहाँ की जन सख्या कितनी है। फिर जन सख्या को क्षेत्रफल से भाग *देना चाहिए और जो भजनफल निकले वही उस जन सख्या का घनत्व होगा।*

भारत मे जन सख्या का घनत्व—

हमारे देश मे जन सख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील ३१२ है। यह समस्त देश का औसत घनत्व है; किन्तु देश के विभिन्न भागो की झांकी करने से पता लगता है कि भारत के विभिन्न राज्यो मे जन सख्या का घनत्व अलग अलग है—दिल्ली में ३,०१७, केरल में १,०१५, बङ्गाल में ८४१, बिहार मे ५७२, उत्तर प्रदेश में ५६२, पजाब मे ३३८, राजस्थान में ११६, अडमान व निकोबार द्वीपो में ११० इत्यादि। जन सख्या के घनत्व की इस प्रादेशिक विभिन्नता के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :—

भारत मे जन-सख्या के घनत्व मे प्रादेशिक विभिन्नता के कारण—

(१) प्राकृतिक रचना—*जन सख्या का घनत्व किसी देश की प्राकृतिक* रचना पर निर्भर करता है। जो स्थान पहाडी अथवा पठारी हैं अथवा जहाँ की मिट्टी उपजाऊ नही है वहा घनत्व कम होता है और उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों में प्रायः जन-सख्या का घनत्व अधिक होता है। पजाब, उत्तरप्रदेश एव बङ्गाल राज्यो मे भूमि की उर्वरता के कारण ही जन सख्या का घनत्व अधिक है एव राजस्थान के मरुस्थल और दक्षिण के पठारी प्रदेशो में घनत्व कम है।

(२) जलवायु—भूमि की रचना के साथ साथ सुन्दर जलवायु का होना भी आवश्यक है। जलवायु पर लोगों का स्वास्थ्य ही नहीं वरन् फसलो का उत्पादन भी निर्भर करता है। यही कारण है कि जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ उत्पादन अधिक

हो सकता है यदि भूमि भी उपजाऊ हो। ऐसे प्रदेश अधिक व्यक्तियों के लिए जीवन निर्वाह का साधन प्रस्तुत कर सकते है। यही कारण है कि भारत के दक्षिणी-पूर्वी भागों मे अपेक्षाकृत जन संख्या अधिक है।

(३) **चावल की उपज के क्षेत्र**—बङ्गाल तथा बिहार मे भी जन संख्या का घनत्व अधिक है क्योंकि —

(अ) अन्य अनाजों की अपेक्षा चावल की उतनी मात्रा मे अधिक आदमियों की उदरपूर्ति हो जाती है।

(आ) चावल मे भोजन के अधिक पौष्टिक तत्त्व होते है।

(इ) चावल का प्रति एकड पैदावार भी अधिक होती है।

(ई) चावल की फसल तयार भी बहुत शीघ्र हो जाती है।

(४) **सिंचाई**—जन संख्या का घनत्व सिंचाई के साधनों पर निर्भर करता है। जिन स्थानों मे मनुष्य ने कठिन परिश्रम करके सिंचाई के लिए नहरें बना ली हैं वहा भी घनत्व अधिक है जैसे—पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे।

(५) **औद्योगिक उन्नति**—ऐसे प्रदेश जहां उद्योग धन्धों की प्रगति के लिए समस्त नैसर्गिक साधन उपलब्ध हो तथा आर्थिक दृष्टिकोण से भी जो भाग समृद्धिशाली है वहाँ भी जन संख्या का घनत्व अधिक देखा जाता है जैसे—बिहार उडीसा इत्यादि।

(६) **सुरक्षा**—जिन प्रदेशो मे मनुष्य को अपने जान व माल का भय नही होता वहाँ भी घनत्व अधिक होता है जैसे—मध्य प्रदेश। इसके विपरीत पर्वतीय तथा सीमावर्ती क्षेत्रों मे जान व माल का भय होने के कारण जन संख्या का बहुत कम घनत्व है।

(७) **विभाजन के परिणामस्वरूप आवास**—भारत के बटवारे के बाद हमारे देश मे अनेक व्यक्ति पाकिस्तान से आये और वे उन प्रदेशों मे बस गये जहां कि जलवायु उनके अनुकूल थी अत उन प्रदेशों मे जन संख्या का घनत्व बढ गया जैसे—दिल्ली राज्य मे।

(८) **प्रवासी प्रवृत्ति का अभाव**—भारतवर्ष मे प्रवासी प्रवृत्ति का अभाव भी अधिक घनत्व के लिए उत्तरदायी है। अन्य क्षेत्रों मे प्रवास करने की अपेक्षा लोग अपने ही क्षेत्र मे रहना अधिक पसन्द करते है। फलत उन्हे निम्न जीवन स्तर अपनाना पडता है। भाषा धर्म एवं संस्कृति की विषमता भी प्रवासी प्रवृत्ति मे बाधक है।

(९) **सिंचाई के साधन का अभाव**—जिन प्रदेशों मे वर्षा का अभाव है सिंचाई के साधन उपलब्ध है वहां भी प्राय जन संख्या का घनत्व देखा जाता

है। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग राजस्थान के उत्तरी और पश्चिमी भाग और दक्षिणी पजाब म यद्यपि अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है परन्तु सिचाई की उपलब्ध सुविधाओ के अनुसार इन भागो म अच्छी जन सख्या है।

(१०) नदियो के डल्टे—नदियो के डल्टा म भी अनक सुविधाय होन के कारण जन सख्या के घनत्त्व म वृद्धि हो जाती है जैसे—महानदी कृष्णा गोदावरी तथा कावेरी नदियो क डल्टो म अच्छी आबादी है।

(११) विशष वस्तुओ के उत्पादन केन्द्र—कुछ प्रदेशो म किंचित महत्त्व पूर्ण व्यापारिक वस्तुओ का उत्पादन होता है जिसस आकर्षित होकर लोग वहा बस जाते है। जस असम म चाय क हरे भरे बगीचो न अनक व्यक्तियो को आकर्षित कर लिया है। इसी प्रकार बगाल म जूट के उत्पादन और काली मिट्टी के क्षत्र म रुइ के उत्पादन के कारण उन क्षत्रो म जन सख्या का अधिक घनत्त्व है।

(१२) खनिज पदार्थों के क्षत्र—जिन भागो म खनिज पदाथ पाये जाते है वहा अन्य कठिनाइया के हाते हुए भी लोग जाकर बस गये है। उदाहरणार्थ छोटा नागपुर का पठार खनिज सम्पदा की दृष्टि से अत्यन्त धनी है अत वहा अनक लोग आकर बस गये है। इसी प्रकार राजस्थान म जैसलमेर के निकटवर्ती क्षत्र म पेट्रोलियम की खोज हा रही है। यदि वहा पट्रोल मिल जायगा तो जन सख्या के घनत्त्व म अवश्य वृद्धि हो जायगी।

(१३) यातायात के साधनो की सुविधा—*जिन भागो म यातायात के साधनो का जाल बिछा हुआ है वहा भी प्राय जन सख्या का केन्द्रीयकरण देखा जाता है। जसे गगा एव सतलज के मदान म तटीय मदान एव डल्टा क्षत्रो म थल एव जल की सुविधा होन क कारण* बहुत घनी आबादी पाई जाती है। इसके विपरीत पर्वतीय एव पठारी क्षत्रो म मरुस्थली भागो एव घन वनो म यातायात के साधनो की अपर्याप्तता अथवा अभाव के कारण जन सख्या की मात्रा बहुत ही कम है।

(१४) अनुकूल स्थिति—जिन नगरो अथवा क्षत्रो का भौगोलिक स्थिति अनुकूल होती है वहा भी जन सख्या का आधिक्य हो जाता है। उदाहरणार्थ दिल्ली कानपुर आगरा इलाहाबाद आदि नगरो की अनुकूल स्थिति होन के कारण हा वहा जन सख्या का अधिक घनत्त्व है।

(१५) अन्य कारण प्राय एसा भी देखा जाता है कि जो स्थान सुरक्षा की दृष्टि स अधिक श्रष्ठ होन है वहा भी जन सख्या का केन्द्रीयकरण हो जाता है। भारत और पाकिस्तान की सीमा काश्मीर व आजाद काश्मीर की सीमा तथा गोआ म सुरक्षा की मात्रा कम होन स आबादी भी कम है। इसी प्रकार घन जगलो म जगली पशुओ के भय से वहाँ मनुष्य नहा रहते। चम्बल के खण्डहरो म चोर व डाकुओ के भय के कारण लाग रहना पसन्द नहा करते।

जन सख्या का घनत्व और आर्थिक समृद्धि —

जन सख्या का घनत्व और आर्थिक समृद्धि आवश्यक रूप से सम्बन्धित बात हो ऐसी बात नही है । उदाहरण के लिए भारत और सयुक्त अरबगण राज्य (मिस्र) अपनी जन सख्या क घनत्वा में बहुत अन्तर होन हुए भी दानो ही आर्थिक रूप से पिछड हुए है । मिस्र में जन सख्या का घनत्व केवल ३५ है, जबकि भारत म ३१२ है । इसी प्रकार ग्रट ब्रिटेन और अमरिका की जन सख्या के घनत्व में भी भारी अतर है (क्रमश ७१० एव ४२) । इतना अतर हान हुए भी दोना देशा म लोगा का जीवन स्तर लगभग समान है । यह उल्लखनीय है कि ये दानो ही दश भारत की तुलना म (जिसको जन सख्या का घनत्व ३१२ है) अधिक समृद्धिशाली है । अत हम यह निष्कष निकाल सकते है कि किसी दश की जन सख्या और उसकी आर्थिक समृद्धि म कोई सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता । वास्तव म दो दशा की आर्थिक समृद्धि क विषय म किसी निष्कष पर पहुचन क लिए हम वहा के लोगा के भौतिक प्रसाधना और काय कुशलता पर भी ध्यान दना होगा ।

भारत मे जन सख्या के वितरण की विशेषतायें—

(१) प्रादेशिक विभिन्नता—यद्यपि हमार दश म जन सख्या का घनत्व प्रति वग मील ३१२ है किन्तु दश के विभिन राज्या म जन सख्या का घनत्व अलग अलग है जैसे—दिल्ली म ३ ०१७ करल में १ ०१५, बगाल में ८४१, बिहार में ४७२ उत्तर प्रदश में ५६२, पजाब में ३३८, राजस्थान म ११६, अडमान निकोबार द्वीपो में ११०, इत्यादि । देश के विभिन भागो में विभिन्न भौगोलिक एव आर्थिक सुविधाओ के कारण ही यह प्रादेशिक विभिन्नता पाई जाती है ।

(२) निरन्तर वृद्धिशील—जन सख्या क अनुसार विश्व मे चीन क बाद भारत का दूसरा नम्बर है । निम्न तालिका म भारत की जन सख्या की वृद्धि की गति का अनुमान लगाया जा सकता है —

वष	जन सख्या (दस लाख म)	दशाब्दी का वृद्धि (दस लाख में)	वृद्धि का प्रतिशत
१८८१	२३५ ५	—	—
१९०१	२३५ ६	० ४	+ ०.२
१९११	२४९ ०	१३ ५	+ ५ ६
१९२१	२४८ १	० ९	— ० ६
१९३१	२७५ ५	२७ ४	+१० ४
१९४१	३१२ ८	३७ ३	+१२ ७
१९५१	३५६ ८	४४ १	+१३ २

उपरोक्त तालिका से यह विदित होता है कि सन् १९०१ से १९२१ तक भारतीय जन संख्या में मंद गति से वृद्धि हुई, किन्तु उसके बाद वृद्धि की गति तेज रही है। सन् १९५१ की जन गणना के अनुसार देश की कुल जन-संख्या (पाकिस्तान को छोड़ कर) ३५·६८ करोड थी। सन् १९५८ के मध्य में भारत की जन-संख्या अनुमानत ३९·७५ करोड थी और सन् १९६१ में यह बढ़ कर लगभग ४१ करोड हो जायगी। योजना आयोग ने प्रथम दो पंच वर्षीय योजनाओं की अवधि और बाद की अवधियों के लिये जन संख्या में वृद्धि की निम्न दरों का अनुमान किया है —

सन् १९५०-६० के लिये वृद्धि की गति १२·५% प्रति दशाब्दी।
सन् १९६१-७० के लिये वृद्धि की गति १३·३% प्रति दशाब्दी।
सन् १९७१-८० के लिये वृद्धि की गति १४·०% प्रति दशाब्दी।

जन गणना कमिश्नर ने यह भय प्रगट किया है कि उक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमारी जन संख्या सन् १९५१ में ३६ करोड से बढ़ कर सन् १९६१ में ४१ करोड, सन् १९७१ में ४७ करोड और सन् १९८१ में ५२ करोड हो जायगी।

(३) *जन-संख्या का ग्रामीण एवं नगरीय आधार पर विभाजन*—देश की ३५·६८ करोड की कुल जन संख्या में से ६·१९ करोड अथवा १७·३% व्यक्ति नगरों और कस्बों में रहते हैं, जबकि शेष २९·५० करोड अथवा ८२·७% व्यक्ति गाँवों में निवास करते हैं। सन् १९४१-१९५१ के दशक में शहरी जन संख्या में ३·४% की वृद्धि हुई तथा ग्रामीण जन संख्या में ३·४% की कमी हुई है। नगरीय जन संख्या की वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं —

(अ) गाँव में व्यक्ति अधिक हैं तथा भूमि कम है। इसके अतिरिक्त सहायक उद्योग धन्धों की भी कमी है, अतः पेट की खातिर गाँवों से नगरों की ओर प्रवास बढ़ रहा है।

(आ) आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप भी नगरों में औद्योगीकरण का अधिक विकास हुआ है, जिससे नगरों की ओर लोगों का आकर्षण बढ़ गया है।

(इ) ग्रामीण जीवन की अपेक्षा अनेक सुख सुविधाओं की दृष्टि से भी नागरिक जीवन सुविधाजनक होता है, अतः प्रायः सभी लोगों में नागरिक जीवन के प्रति रुचि होती है।

(ई) जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् जमींदार कुटुम्बों का गाँव से नगरों की ओर प्रवास बढ़ रहा है।

(उ) देश के बँटवारे के बाद व्यवस्थापितों ने अधिकतर नगरों में ही रहना पसन्द किया है, क्योंकि वहाँ उनको जीवनोपार्जन की अधिक सुविधायें थी।

(४) स्त्री-पुरुष का अनुपात—सन् १६५१ म १००० पुरुषो के पीछे ६४७ स्त्रिया थी। प्रति हजार पुरुषो के पीछे स्त्रियो का अनुपात सबसे कम उत्तर पश्चिम भारत म (८८३) और सबसे अधिक दक्षिण भारत म (६६६) था। भारत के १० बडे नगरो म प्रति हजार पुरुषो के पीछे सन् १६५१ म स्त्रियो की सख्या इस प्रकार था— वृहत्तर कलकत्ता ६०२ वृहत्तर बम्बई ५६६ मद्रास ६२१ दिल्ली ७५० हैदराबाद ६८६ अहमदाबाद ७६४ बगलौर ८८३ कानपुर ६६६ पूना ८३३ और लखनऊ ७८३। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया की कम सख्या होने के अनेक कारण हैं। भारतवर्ष म जन्म से ही लडको की अपेक्षा लडकियो के प्रति उदासीनता का व्यवहार किया जाता है। बाल विवाह एव पर्दा प्रथा के कारण भी उन्हे अनेक आपत्तियो का सामना करना पडता है। प्रसव के पूर्व एव बाद की उपेक्षा अथवा दैनिक जीवन में अपर्याप्त या अनुचित आहार भारतीय स्त्रियो के निम्न स्वास्थ्य स्तर के लिए उत्तरदायी हे। सौभाग्य का विषय है कि गत कुछ समय से शिक्षा प्रसार के साथ साथ स्त्रियो के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यावहार कम होता जा रहा है। बाल विवाह एव पर्दा प्रथा का भी धीरे धीरे लोप हो रहा है और महिला डाक्टरो एव प्रसूति गृहो की भी सख्या बढ रहा है।

(५) आयु के आधार पर जन सख्या—यदि आयु के आधार पर भारतीय जन सख्या का अध्ययन करे तो हम निम्न आकडे उपलब्ध होते हे —

शिशु व बच्चे	३८ ३%
युवा स्त्री पुरुष	३३ ०%
प्रौढ स्त्री पुरुष	२० ४%
वृद्ध स्त्री पुरुष	८ ३%

इन आकडो के विश्लेषण से हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हे —

(अ) भारत म शिशुओ तथा बच्चो की जन सख्या अधिक है यद्यपि यह अभी सक्रिय नही है किन्तु वास्तव म देश की प्रगति का भारभार इन्हा के कन्धो पर आना है।

(आ) भारत म वृद्ध स्त्री पुरुषो की सख्या बहुत थोडा है अर्थात् वृद्ध होने से पहले ही प्राय लोग मर जाते हे। इसस देश की बडी हानि होती है, क्योकि एक तो अनुभवी वृद्ध व्यक्तियो के उचित पथ प्रदर्शन का लाभ नही मिल पाता। दूसरे उनके अभाव म उत्पादनशीलता भी घटती है।

(इ) हमारी औसत आयु भी अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है।

(ई) देश म युवा एव प्रौढो की जन सख्या (३३ ० + २० ४) = ५३ ४% है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि देश के ३६ ३७ करोड व्यक्तियो म स

केवल १८ करोड व्यक्ति ही काम करने वाले हैं, अतः जितने व्यक्ति उत्पादन में सलग्न हैं उनके अतिरिक्त लगभग उतने ही व्यक्तियों का पोषण भी उन्हीं को करना पडता है।

(ऊ) भारत में बच्चों का अनुपात ३८% और वृद्धों का केवल ८% यह सकेत करता है कि देश में जन्म एव मृत्यु दर दोनों ही अधिक है।

(६) भाषाओं के आधार पर विभाजन—सन् १९५१ की जन गणना के अनुसार देश में कुल ८४५ भाषायें अथवा बोलियाँ बोली जाती हैं, जिनमें ७२० भारतीय भाषायें या बोलियाँ (इनमें से प्रत्येक के भाषियों की सख्या १ लाख से कम है) तथा ६३ गैर भारतीय भाषायें हैं। ९१ प्रतिशत जनता सविधान में उल्लिखित १४ भाषाओं में से किसी न किसी एक भाषा को बोलती हैं। दिल्ली, पजाब तथा हिमाचल प्रदेश को छोडकर शेष भारत में हिन्दी बोलने वालों की सख्या १० ८८ करोड थी। हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा पजाबी बोलने वालों की सख्या १४ ९९ करोड थी।

(७) व्यावसायिक आधार पर विभाजन—सन् १९५०-५१ में ३५·६३ करोड जन सख्या में से देश में १४·३२ करोड व्यक्तियों के रोजगार में सलग्न होने का अनुमान लगाया गया है—१०·३६ करोड व्यक्ति कृषि सम्बन्धी कार्यों में, १·५३ करोड व्यक्ति खनिज तथा हस्तशिल्प उद्योगों में, १·११ करोड व्यक्ति वाणिज्य, बीमा, बैंकिंग, यातायात तथा परिवहन उद्योगों में, ६४ लाख व्यक्ति विभिन्न व्यवसायों में, ३९ लाख व्यक्ति सरकारी नौकरियों में तथा २९ लाख व्यक्ति घरेलू नौकरियों में। अतः स्पष्ट है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी लगभग ७०% जन-सख्या कृषि पर अवलम्बित है अथा शेष व्यवसायों में लगी हुई है।

भारतीय जन-सख्या का व्यावसायिक वितरण—

व्यावसायिक आधार पर जन सख्या के वितरण में इस देश के आर्थिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत की ३५·६३ करोड की जन-सख्या में से देश में १४·३२ करोड व्यक्तियों के रोजगार में सलग्न होने का अनुमान लगाया है—१०·३६ करोड व्यक्ति कृषि सम्बन्धी कार्यों में, १·३३ करोड व्यक्ति खनिज तथा हस्तशिल्प उद्योगों में, १·११ करोड व्यक्ति वाणिज्य, बीमा तथा बैंकिंग और यातायात तथा सचार साधनों में, ६४ लाख व्यक्ति विभिन्न व्यवसायों में, ३९ लाख व्यक्ति सरकारी नौकरियों में तथा २९ लाख व्यक्ति घरेलू सेवाओं में लगे हैं।

प्रत्येक १०० भारतीयों (आश्रित व्यक्ति सहित) में से ४७ भूमिधर किसान, ९ काश्तकार, १३ भूमिहीन मजदूर तथा १ जमीदार था, जबकि उद्योगों या अन्य कृषि

जय व्यवसायों वाणिज्य परिवहन और विविध व्यवसायों में क्रमश १० ६ २ और १२ व्यक्ति लगे हुये थे।

व्यावसायिक वितरण का आर्थिक महत्व—

सन् १९५१ की जन गणना सम्बन्धी आँकडों से यह स्पष्ट है कि हमारा देश मुख्यत कृषि प्रधान देश है जिसकी लगभग ७०% जन संख्या कृषि पर अवलम्बित है तथा उद्योग धंधों में लगे हुए व्यक्ति १०% से भी कम हैं। आर्थिक विकास की दृष्टि से ऐसी व्यवस्था श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती क्योंकि यदि दुर्भाग्य से किसी वर्ष कृषि की फसल खराब हो जावे तो समस्त देश का आर्थिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। कृषि में संलग्न व्यक्तियों की दशा भी सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। उनमें प्रति १ ००० कृषकों के पीछे ४०२ ऐसे किसान हैं जिनके पास अपनी भूमि नहीं है। इन्हें जमींदारों से भूमि लेनी पडती है। जमींदारी उन्मूलन के पहले जमींदारों द्वारा इनका अत्यधिक शोषण किया जाता था। बिना खेती के श्रमिक जिनकी संख्या लगभग ४१ करोड है इसमें दयनीय दशा में हैं। ऐसे श्रमिकों की संख्या उत्तर की अपेक्षा दक्षिणी भारत में अधिक है। इन श्रमिकों की वार्षिक आय का औसत २०४) है। इतनी कम आय होने के कारण इन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि कृषि में संलग्न लगभग २५ करोड लोगों में से अधिकांश व्यक्तियों की आर्थिक दशा खराब है। कृषि पर जन संख्या का अत्यधिक भार होने के कारण देश की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग ४९% कृषि से ही प्राप्त होता है। भारतवर्ष की अपेक्षा इङ्गलैंड एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कहीं कम लोग कृषि का कार्य करते हैं। जबकि भारत के १ ००० व्यक्तियों में से ७०६ कृषि पशु वन तथा मछली व्यवसाय में लगे हुये हैं तो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में केवल १२८ तथा ग्रेट ब्रिटेन में केवल ५९ लोग इस कार्य में लगे हैं। इङ्गलैंड अथवा अमेरिका की अपेक्षा भारत में बहुत कम लोग उद्योग तथा अन्य सेवाओं में लगे हुए हैं। जबकि १ ००० व्यक्तियों में से भारत के केवल १५३ व्यक्ति ही खानों उद्योगों तथा वाणिज्य में लगे हुए हैं तो संयुक्त राष्ट्र अमरिका में ४५६ तथा ग्रेट ब्रिटेन में ५५५ व्यक्ति लगे हुए हैं। अन्य उद्योगों तथा सेवाओं में संलग्न लोगों का अनुमान हमारे देश में प्रत्येक १ ००० में से केवल १४१ है जबकि संयुक्त राष्ट्र अमरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन में यह आंकडा ४१६ तथा ३९५ है। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका अथवा इङ्गलैंड की अपेक्षा भारतवर्ष की अर्थ व्यवस्था असन्तुलित कही जाती है। इङ्गलैंड तथा अमेरिका में लगभग आधे लोग कृषि पर और शेष उद्योगों में तथा अन्य कार्यों में लगे हैं अतः यदि इन देशों में कभी कृषि की दशा बिगडती है तो कोई विशेष चिन्ता नहीं करनी पडती परन्तु हमारे देश में ऐसी परिस्थिति होने पर आर्थिक सन्तुलन ही बिगड जाता

है। यही कारण है कि द्वितीय पच वर्षीय योजना के द्वारा कृषि पर जनता के भार को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि कृषि पर अधिक निर्भरता के कारण हमारे देश के खेत बहुत छोटे है एव प्रति एकड उत्पादन भी अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है, इसी कारण दरिद्रता एव बेकारी बढ रही है तथा लोगो का जीवन स्तर बहुत नीचा है। आशा है कि आर्थिक नियोजन के द्वारा यह समस्या भविष्य मे हल नही हो सकेगी।

ग्रामीण अर्द्ध रोजगारी को दूर करने के उपाय—

हमारे देश में जहां एक ओर पूर्णत. बेरोजगार लोगो की भारी सख्या है, वहाँ ग्रामीण क्षेत्रो मे निवास करने वाले अधिकाश कृषक ऐसे है, जिन्हे वर्ष में ३ ४ महीने खाली रहना पडता है, क्योंकि उस काल में कोई फसल नही होती। इस अर्द्ध-रोजगार का प्रमुख कारण खेती करने का पुरातन ढङ्ग तथा कृषि का वर्षा पर निभर होना है। कृष्णमाचारी जांच समिति के अनुसार लगभग ८०% कृषक वर्ष के लगभग ८ महीनो में बेकार रहते हैं। ग्रामीण क्षेत्र म उद्योग धन्धो की कमी तथा जन सख्या की अधिकता इसका मूल कारण है। ग्रामीण अर्द्ध रोजगारी की समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है :—

(१) कृषि को जीवन निर्वाह का साधन न मान कर एक व्यापारिक व्यवसाय समझा जाय। चकबन्दी क द्वारा बडे आकार के खेतो में आधुनिक ढङ्गो से उन्नत बीज, उन्नत खाद एव नवीनतम् सिंचाई की सुविधाओ के द्वारा कृषि उत्पादन किया जाय।

(२) कृषि का वैज्ञानिकन होना चाहिए। 'वैज्ञानिकन से हमारा तात्पर्य यह है कि खेती करने में विज्ञान के नये-नये तरीको का उपयोग किया जाय, फसलो का हेरफेर हो, जापानी ढङ्ग से चावल उत्पन्न किया जाय, उपयुक्त क्षेत्रो मे ट्रैक्टरा का प्रयोग किया जाय, इत्यादि।

(३) कृषि के सहायक उद्योगो को बढावा दिया जाय। यदि हमारे देश मे कृषि के साथ साथ डेरी फार्म, मुर्गी पालन, रेशम के कीडे पालना, मधुमक्खी पालन आदि सहायक धन्धे अपनाये जायें, तो किसान वर्ष पर्यन्त काम में लगा रह सकता है।

(४) कृषि से जन सख्या का भार कम करने के लिए कुटीर उद्योगो को विकसित किया जाय। इससे उनक खाली समय का सदुपयोग होगा तथा अतिरिक्त आय होगी।

(५) कुटीर उद्योगो के अलावा लघु उद्योगो की स्थापना को भी प्रोत्साहन

मिलना चाहिय । ग्रामीण क्षेत्रों म विद्युतीकरण की योजनाओं से छोटे मोटे उद्योग-धन्धों की स्थापना को प्रेरणा मिलगी ।

(६) व्यक्तिगत कृषि के स्थान पर सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देना चाहिए।

STANDARD QUESTIONS

1 What is 'Density of Population ? What are the factors that determine the density of population in India ? Does a high density of population in a country indicate prosperity ?

2. Briefly summarise some of the principal peculiarities *regarding the distribution of population in India*

3. Discuss the economic Significance of the occupational distribution of population in India Suggest measures to remove rural under employment in India

अध्याय १६

क्या भारत में जन-संख्या का आधिक्य है ?

(Is India Over Populated ?)

प्रारम्भिक—

कुछ लोगो के* मतानुसार भारत में जन सख्या का आधिक्य नही है, क्योकि यहाँ जन सख्या का घनत्व केवल ३१२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है, जबकि हालैण्ड का ८२५·३, बेल्जियम का ७३४·४, जापान का ५७५·४ और इङ्गलैण्ड का ५३७·८ है। इस विचारधारा के समर्थक यह दलील देते हैं कि भारत के प्राकृतिक प्रसाधनो का अभी पूर्णरूपेण उपयोग नही हुआ है, अतः जन सख्या अधिक प्रतीत होती है। यदि हम अपने नैसर्गिक साधनो का पूर्ण उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि करें, तो कही अधिक जन सख्या का पालन कर सकते है। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा के समर्थक यह कहते है कि जन सख्या के आधिक्य की कोई समस्या न समझना, वास्तव में सत्यता का गला घाटना है। जहाँ तक पहली दलील का सम्बन्ध है, उत्तरी पश्चिमी भारत व मध्यवर्ती भारत के राज्यो को छोडकर भारत के शेष राज्यो में जन सख्या का घनत्व योरोप के घन आबाद देशो की तुलना मे कम नही है, जसे—दिल्ली में ३,०१७ व्यक्ति प्रति वर्ग मील, केरल में १,०१५, बगाल मे ८४१, बिहार में ५७२, उत्तर प्रदेश म ५६२ और पजाब म ३३८ है। इस द्वितीय विचारधारा के समर्थक निम्न दलीलो के आधार पर ऐसा कहते है कि भारत में जन सख्या का आधिक्य है।

भारत मे जन-सख्या का आधिक्य एव उसके कारण—

(१) मालथस के सिद्धान्तानुसार—मालथस के जन सख्या के सिद्धान्तानुसार यदि किसी देश में निवारक प्रतिबन्धो (जैसे ब्रह्मचर्य पालन, कम आयु में विवाह न करना, गर्भ निरोधक साधनो का प्रयोग, जीवन स्तर मे सुधार, आदि) का अभाव होता है और इनके स्थान पर प्राकृतिक प्रतिबन्ध (जैसे बीमारी, बेकारी, भूकम्प इत्यादि) क्रियाशील होते है, तो ऐसा समझा जाता है कि देश में जन-सख्या का आधिक्य है। भारत में निवारक प्रतिबन्धो का अभाव है। छोटी उम्र म विवाह होने

के कारण एव दूषित सिने वातावरण के कारण लोग ब्रह्मचर्य पालन मे असमर्थ होते है। यहाँ विवाह एक धार्मिक कर्तव्य एव सन्तानोत्पत्ति एक सामाजिक आवश्यकता समझी जाती है। आजकल देश मे केवल बाल विवाह एव बहु विवाह का ही प्रश्न नहीं है, वरन् वृद्ध विवाह का प्रचलन भी हमारे देश का बहुत बड़ा अभिशाप है। फलत: सिद्धान्तानुसार प्राकृतिक प्रतिबन्ध देश में अधिक क्रियाशील रह हे, जैसे—महामारियाँ, दुर्भिक्ष, बाढ, भूकम्प, दगे इत्यादि। यहाँ मलेरिया से प्रति वर्ष १५ लाख व्यक्ति मर जाते है। सन् १६४३ मे बङ्गाल दुर्भिक्ष मे ३५ लाख व्यक्तियो की बलि चढी। सन् १६५७ के ग्रीष्म काल मे फ्लू के दानव ने अनेक व्यक्तियो के प्राण लिए। सन् १६५८ में रेल दुघटनाओ एव बाढ की आपत्तियो से भी सहस्त्रो व्यक्तियो की जानें चली गई। अतः स्पष्ट है कि निवारक प्रतिबन्धो के अभाव में प्रकृति अपना कार्य तीव्रता से कर रही है। यह जन-सख्या के आधिक्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(२) खाद्य समस्या के आधार पर—हमारे देश में जैन सख्या जिस गति स बढी है, भोज्य सामग्री का उत्पादन उस अनुपात में नहीं बढा है। सन् १६३८ में श्री वी० के० वत्तल ने अखिल भारतीय जन सख्या सम्मेलन के समक्ष अपने अध्यक्षीय भाषण में बताया था कि सन् १६१४ और सन् १६४० के बीच की अवधि में भारत मे जन सख्या की वृद्धि १% हुई, परन्तु भोज्य सामग्री में वृद्धि केवल ०.६५% हुई। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त हमारी खाद्य समस्या ने एक उग्र रूप धारण कर लिया और देश के विभाजन ने कटे पर नमक छिड़कने का काय किया। बँटवारे के परिणाम-स्वरूप यद्यपि भारत को कुल क्षेत्रफल का ७७% भाग मिला, किन्तु जन सख्या ८१% मिली। भारत से पाकिस्तान में केवल ७५ लाख लोग गये, किन्तु वहाँ से हमारे देश म १ करोड से भी अधिक व्यक्ति आये। राष्ट्रीय योजना समिति सन् १६४७, पच-वर्षीय योजना आयोग सन् १६५३ एव खाद्यान्न जाँच समिति सन् १६५७ की रिपोर्टों के अनुसार भी इसी मत की पुष्टि होती है कि जन सख्या की वृद्धि के अनुपात में खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि नही हो रही है।

(३) वृद्धि की अत्यधिक गति—निम्न आँकडो से स्पष्ट है कि देश में जन-सख्या बडी तेजी से बढ रही है :—सन् १६११—२५२ ३ मिलियन, सन् १६३१—२७६.२ मि०, सन् १६५१—३६१.२ मि० तथा सन् १६५८ म ३६६.६ मि०। परन्तु जहाँ जन सख्या म वृद्धि हो रही है, वहाँ प्रति व्यक्ति बोई गई भूमि निरन्तर घटती जा रही है। यही नही, हमारे देश म गेहूं और चावल उतनी तेजी से नहीं बढ रहा है, जितनी तेजी स अन्य मोटे अनाजों का उत्पादन। खाद्य सामग्री के अतिरिक्त हमारे देश में चीनी, सब्जी, दूध इत्यादि का उपभोग भी निरन्तर कम होता जा रहा है।

(४) बेकारी की समस्या—यदि जन सख्या अनुकूलतम बिन्दु म कम होगी,

तो बेकारी की समस्या इतनी भीषण न होती, जितनी कि आज है। योजना आयोग ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि शिक्षित एवं अशिक्षित दोनो ही वर्गों में बेकारी बढ रही है और समस्या इतनी विशाल है कि इसको थोडे समय मे हल नही किया जा सकता, क्योंकि इसका सम्बन्ध जन सख्या के आधिक्य से है।

(५) प्रोफेसर कैनन का अनुकूलतम जन सख्या का सिद्धान्त—यदि देश की जन सख्या अनुकूलतम जन सख्या से अधिक है, तो जन सख्या की अत्यधिक वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय में उसी अनुपात में वृद्धि न होगी, जैसा कि भारत में घटित हो रहा है, अत कैनन के सिद्धान्तानुसार भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे देश में अति जन सख्या की समस्या विद्यमान है।

जन-सख्या की वृद्धि को रोकने की आवश्यकता—

बढती हुई जन सख्या को रोकने की आवश्यकता इसलिये उत्पन्न होती है कि हमारा उपभोग स्तर बहुत नीचा है, जिसे ऊपर उठान की विशेष आवश्यकता है। जब तक हम इस अनावश्यक वृद्धि को न रोकेंगे, तब तक हमारी प्रति व्यक्ति आय नही बढ सकती।

जन-सख्या की वृद्धि को कैसे रोका जाय ?—

(१) शिक्षा का प्रचार—प्राफेसर महालानोबीस न अभी अपन अनुसन्धान में यह बताया है कि जिन परिवारो का प्रति व्यक्ति व्यय बढता है, उनमें कम बच्चे होते है। दूसरे शब्दो में, उच्च जीवन स्तर होने पर जन सख्या में कमी होन की सम्भावना है। शिक्षित लोग प्राय गृहस्थी का भार उस समय तक नही उठाना चाहते जब तक कि उनमें स्वय अपने पैरो पर खडे होने की सामर्थ्य न हो "मोटरकार अथवा बच्चे" में वे बहुधा प्रथम वस्तु को ही प्राथमिकता देते है।

(२) आत्म-सयम—स्टेट सेन्सस कमिश्नर ने यह सुझाव दिया है कि स्त्रियो का विवाह २० वर्ष से पहले नही होना चाहिए। जब तक कि किसी में अपने पैरो पर खडे होने की सामर्थ्य न हो, तब तक उसको विवाह नही करना चाहिये और यदि विवाह करे भी तो आत्म-सयम द्वारा सन्तानोत्पत्ति से दूर रहना चाहिये।

(३) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना—विभिन्न रोगो के निवारणार्थ यहाँ अस्पतालो एव प्रसूति गृहो की स्थापना होनी चाहिए। देश में सफाई का भी उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि लोगो को अधिक मात्रा में सतुलित भोजन दिया जाय एव हमारे उपभोग के पदार्थ पौष्टिक हो।

(४) औद्योगीकरण—बडे पैमाने के उद्योग की प्रगति के साथ साथ लघु एव कुटीर उद्योगों की उन्नति करना नितान्त आवश्यक है, जिससे कि पूर्ण रोजगार सम्भव

हो सके। औद्योगीकरण से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी, जीवन स्तर ऊँचा होगा एवं प्रजनन की दर में भी ह्रास होगा। योजना आयोग का मत है कि जबसे द्वितीय पंच-वर्षीय योजना, जिसका प्रमुख उद्देश्य शीघ्र औद्योगीकरण करना है, प्रारम्भ हुई है, तब से जन-संख्या का भार कुछ कम प्रतीत होता है।

(५) **कृषि में सुधार**—हमारे देश के ६७% लोग कृषि पर निर्भर है, किन्तु भूमि की अनार्थिक इकाई और कृषि के अवैज्ञानिक तरीकों के कारण प्रति एकड़ उत्पादन बहुत कम है। कृषि योग्य क्षेत्र को बढ़ाकर एवं कृषि कला में उन्नति द्वारा कृषि उपज को बढ़ाया जा सकता है।

(६) **अन्तर्राज्यीय प्रवास**—जन संख्या की समस्या को हल करने के लिए बङ्गाल, केरल, उ० प्र०, आदि अधिक घनत्व वाले राज्यों से राजस्थान, आसाम, उड़ीसा आदि कम घनत्व वाले राज्यों में लोगों के प्रवास का भी सुझाव दिया जा सकता है। कम घनत्व वाले क्षेत्रों में यदि हमारी सरकार रोजगार के विभिन्न साधन उत्पन्न कर दे, तो आर्थिक आकर्षण से वहाँ जन संख्या का प्रवास हो सकता है।

(७) **अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास**—इसी प्रकार देश के बाहर विदेशों में भी जाकर हम जनाधिक्य की समस्या सुलझा सकते हैं, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि विदेशों में भारतीयों के प्रवास पर जो कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए हैं उनकी शिथिलता के लिए हमारी सरकार आवाज उठाए।

(८) **कृत्रिम साधनों का उपयोग**—पाश्चात्य देशों में इन साधनों के उपयोग का बड़ा बोलबाला है, किन्तु भारतवर्ष में लोगों की अशिक्षा, अज्ञानता एवं रूढ़िवादिता इनकी लोक प्रियता में बाधक हो रही है। कुछ लोगों के विचारानुसार इनका उपयोग ही अनुचित है, क्योंकि यदि इनके प्रयोग पर उचित नियन्त्रण न रखा जाये, तो जनता में अनैतिकता फैलने का डर है। दूसरे, इनका प्रयोग अप्राकृतिक भी बताया जाता है। जहाँ तक प्रथम आरोप का सम्बन्ध है, उन साधनों के खुले प्रयोग की नीति तो देश के लिए अहितकर ही होगी, किन्तु राजकीय संस्थाओं के नियन्त्रण में केवल अधिकृत व्यक्तियों को इनके प्रयोग के सम्बन्ध में यदि उचित परामर्श देना आरम्भ कर दिया जाय, तो लाभ हो सकता है। दूसरा आरोप है कि इनका उपयोग अप्राकृतिक है, जो निराधार प्रतीत होता है। यदि हमको प्रकृति के अनुसार ही चलना है, तब तो गर्मियों में वस्त्र न पहन कर नग्न रहना चाहिए, इसी प्रकार दवाइयों का प्रयोग भी अप्राकृतिक है, परन्तु वर्तमान युग में हमारी सभ्यता प्रकृति से दूर होती जा रही है। जन संख्या की समस्या को हल करने के लिए कृत्रिम साधनों का

प्रयोग अनुचित नहीं कहा जा सकता। पचवर्षीय योजना आयोग ने भी कृत्रिम साधनों के प्रयोग सम्बन्धी सूचना एवं प्रचार करने वाली अनेक सस्थाओं को सहायता देने का समर्थन किया है।

(६) पारिवारिक नियोजन—इसके लिए कृपया अगला अध्याय पढ़िये।

STANDARAD QUESTION

1. Is India overpopulated ? What measures do yo suggest to solve the problem ?

अध्याय २०

परिवार नियोजन

(Family Planning)

परिवार नियोजन—आज की आवश्यकता—

गान्धारी जब अपने सौ पुत्रों की मृत्यु पर विलाप करती है, तो उपहास के साथ भौमिक कहता है कि "जो सन्तानें मक्खियों की तरह पैदा होगी वे मक्खियों की तरह ही नष्ट होगी।" भारत में वर्तमान जन संख्या की समस्या को लेकर प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक जूलिएन हक्सले का कहना है कि यदि भारत अपनी जन संख्या की समस्या को हल न कर सका, तो यह बहुत बड़ी राजनीतिक और सामाजिक दुर्घटना हो जायगी।

वर्तमान विज्ञान के युग में हमारी जितनी समस्यायें हैं उतनी कभी भी न थी। मध्यम श्रेणी के लोगों में शिक्षा की बात तो दूर रही, उन्हें भोजन, वस्त्र, मकान, आदि की कमी बुरी तरह सता रही है। यद्यपि आर्थिक समृद्धि के हेतु पंच वर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया है, परन्तु जैसा कि प्रधान मन्त्री नेहरू ने 'नियोजित पितृत्व के छठे अन्तर्राष्टीय सम्मेलन' (सन् १९५९) का उद्घाटन करते हुए कहा था, यदि जन संख्या बढ़ती रही तो पंच वर्षीय योजनाओं का कोई अर्थ नहीं। यदि हमें वास्तविक भौतिक उन्नति करनी है, तो अनिवार्यतः परिवार नियोजन पर विचार करना पड़ेगा।

सर्व प्रथम हम अपनी गिनतियाँ अपने सम्मुख रखें। बंगाल में प्रत्येक ४० सैकिण्ड में एक बालक जन्म लेता है और हर एक मिनट में एक मरता है। २०,००० बालक भारत में प्रति दिन जन्मते हैं और प्राय १२,००० व्यक्ति प्रति दिन खाने के लिए देश में अधिक हो जाते हैं। इस प्रकार हमारी बढ़ोतरी ५० लाख प्रति वर्ष है। अनुमान है कि इस गति से तीस वर्ष में हम दुगुने हो जायेंगे। हम लोग अनुत्तरदायित्व पूर्ण ढङ्ग से काड मछलियों की भाँति उत्पादन में लगे हैं। भाग्यहीन निम्न मध्यम वर्ग सन्तानोत्पत्ति को अपना मनोरञ्जन मानता है। फिर सन्तान भेड़ बकरियों की भांति तो पलेगी ही। न कोई लड़की 'लक्ष्मी' है, न कोई लड़का 'नारायण' हो सकता है। यदि किसी के केवल पुत्रियाँ ही हैं तो भी कोई भय नहीं। आज पुत्र और पुत्री दोनों कानून की दृष्टि में समान हैं, दोनों को सम्पत्ति में भाग मिलता है। वास्तव

में केवल एक ही सन्तान वरदान है, वही यथेष्ट होनी चाहिए। अधिक सन्तान धनवान और निर्धन, माताओ और बालको सभी के लिए अभिशाप है। किन्तु उच्च व मध्यम वर्ग इस ओर पर्याप्त सचेत और सचेष्ट हैं। निम्न मध्यम और निर्धन वर्ग, जो देश का ८० प्रतिशत है, सोया हुआ है। इस सोने का एक परिणाम यही होगा कि उच्च वर्ग कम होता जायगा और निम्न वर्ग अधिक–अर्थात्,उच्च वर्ग और अधिक धनी और निम्न वर्ग और अधिक निर्धन। इस प्रकार निम्न वर्ग का शारीरिक और मानसिक स्तर और भी गिर जायगा। सन्तति को प्रकृति की देन समझना हमारी एक बड़ी भूल है। यह लकीर के फकीर बनने के अतिरिक्त और कुछ नही। अच्छा हो, यदि हम युग के साथ चलें और शीघ्रातिशीघ्र बदलें।

परिवार नियोजन क्या है ?—

परिवार नियोजन के अन्तर्गत 'काम-शिक्षा', विवाह सम्बन्धी परामर्श, विवाह-स्वास्थ्य शिक्षा, बालक होने की अवधि का निश्चय करना और परिवार के बजट पर परामर्श देना सम्मिलित है। राजकुमारी अमृतकौर ने जो कुछ समय पूर्व हमारी स्वास्थ्य मन्त्राणी थी, सुरक्षित अवधि प्रणाली अथवा ऐसे सभोग की पद्धति का प्रचार किया है जब सभोग से प्रसव की सम्भावना नही होती। यह न्यूनतम व्यय का साधन है। इसमें स्त्री के स्वास्थ्य को भी कोई सकट नही, जैसा कि अन्य विधियो में हो सकता है।

परिवार नियोजन के साधन—

भले ही हम गर्भ निरोधक कृत्रिम साधनो का प्रयोग न भी करें, फिर भी हम पारिवारिक नियोजन के अन्य सिद्धान्तो पर चलकर परिवारो के आकारो को सीमित रखने में सफल हो स ते हैं। उदाहरण के लिए, यदि लड़कियो का विवाह १४ वर्ष की अवस्था मे न करके २० वर्ष को आयु पर किया जाय, तो १४ वर्ष से २० वर्ष तक होने वाली सतान न हो सकेगी। इसका एक सुन्दर प्रभाव यह भी होगा कि कच्ची आयु में गर्भ धारण करने से स्वास्थ्य पर जो बुरा प्रभाव पड़ता है वह न पड़ेगा। इसके अतिरिक्त जन्म दर में भी कमी होगी। पारिवारिक नियोजन के सिद्धान्तो के प्रचार के साथ साथ यदि आत्म संयम की भावना भी बढ़ाई जाये, फिर तो 'सोने में सुहागा' है। हमारा देश ब्रह्मचर्य पालन के लिए विख्यात रहा है। आज हम स्वतन्त्र हैं, अतः आरंभ मे ही लोगो के चरित्र एव व्यक्तित्व के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाय, तो गृहस्थ जीवन मे भी वे सयम का भली प्रकार पालन कर सकते हैं। बड़ी आयु में विवाह करके तथा सयम का जीवन व्यतीत करते हुए यदि लोग अपने परिवारो के आकारों को छोटा रख सकें, तो स्वतः ही कुछ वर्षो मे जन-सख्या की समस्या को हल कर सकते हैं। पारिवारिक नियोजन की विचारधारा का प्रचार मुख्यतः ग्रामीण जनता में करना

चाहिए । यह भी आवश्यक है कि गरीब लोगों को वस्तु कन्ट्रोल के साधन या तो मुफ्त दिए जायं अथवा कम दामों पर दिए जाएं जिससे कि वे भी अपने परिवार को योजनापूर्वक चला सकें । सरकार को अविवाहितों एवं कुंआरों को पारितोषण देना चाहिए । मध्यम वर्ग के लिए मनोरंजन के साधन बनाए जाएं । मनोरंजन के स्थानों पर जाने के लिए आधे किराये लगें पहाड़ों पर ठहरने का सस्ता प्रबन्ध हो शहर में नाटक सिनेमा वर्तमान मूल्यों से चौथाई दर पर हों इत्यादि । देश को भुखमरी बेकारी और बरबादी से बचाने के लिए कृत्रिम साधनों को भी अपनाना चाहिये । फिर काफी समय से शल्य चिकित्सा भी होती है जो इस दशा में पूर्णतः सहायक है । वह स्त्री पुरुष दोनों के लिए सम्भव है । साथ ही गर्भाधान रोकने के लिए सस्ती औषधियां (जैसे फोम गोलियां) निःशुल्क बांटनी चाहिये ।

परिवार नियोजन की दिशा में राजकीय प्रयत्न—

सरकार ने द्वितीय पंच वर्षीय योजना में परिवार नियोजन केन्द्र खोलने के लिए चार करोड़ की धन राशि स्वीकृत की है । गांवों में २००० केन्द्र खुलने हैं । शहरों में पहले से ही ३०० खुले हैं । प्रत्येक केन्द्र को मुफ्त बांटने के लिए १००० रुपए की गर्भ निरोधक औषधियां दी जाती हैं । वहां परामर्श भी दिया जायगा । दिल्ली में ४० केन्द्र चल रहे हैं और एक बड़ी संख्या उनसे लाभ उठा रही है । वहाँ सन्तति निरोधक आधुनिक साधन भी सस्ते मूल्य पर उपलब्ध हैं ।

यह हर्ष का विषय है कि परिवार नियोजन को सरकारी कार्यक्रम में स्थान मिला है । पर ग्रामों में अधिक प्रचार की आवश्यकता है क्योंकि असली भारत ग्रामों में ही बसता है । साथ ही परामर्श केवल स्त्रियों को ही नहीं पुरुषों को भी दिया जाना चाहिए । उसकी उन्हें स्त्रियों से भी अधिक आवश्यकता है । परिवार नियोजन का प्रचार हमारे प्रोग्राम का एक महत्वपूर्ण भाग होना चाहिए । वास्तव में शिक्षात्मक प्रचार का एक विस्तृत देशव्यापी कार्यक्रम बनाए बिना काम न चलेगा ।

यहां १५ नवम्बर सन् १९५८ को स्वास्थ्य मन्त्री श्री दत्तात्रेय परशुराम करमरकर की अध्यक्षता में परिवार आयोजन मण्डल की बैठक हुई जिसमें परिवार आयोजन कार्यक्रम की प्रगति तथा भावी योजना पर विचार किया गया । मंडल ने सरकार से इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए सन् १९५९-६० में १ करोड़ रुपया देने की सिफारिश की है । इस कार्यक्रम की मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार हैं अधिक लोगों को इस कार्य में प्रशिक्षित करना तथा शिक्षा देना दवाखाने खोलना परिवार आयोजन के बारे में शिक्षा देने के लिए कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति सभी स्वास्थ्य केन्द्रों तथा चिकित्सा संस्थाओं द्वारा गर्भनिरोधक उपकरणों का वितरण तथा निरीक्षण और अनुसन्धान — काम में तेजी ।

मण्डल ने इस कार्यक्रम की प्रगति पर भी विचार किया। इस समय तक ७१८ क्लिनिक खोले जा चुके हैं। मार्च सन् १९५६ तक शहरों में १५० तथा गांवों में ६०० क्लिनिक खोलने का लक्ष्य था। उसमें से शहरों में १७१ तथा गांवों में ४०० क्लिनिक खोले जा चुके हैं। विभिन्न राज्य सरकारों ने केन्द्रीय सरकार को यह सूचना दी है कि व इन दवाखानों के अलावा अपने यहाँ मार्च सन् १९५६ के पहले १५१ क्लिनिक और खोलने का विचार कर रही हैं।

मण्डल ने परिवार आयोजन के बारे में कुछ चुने हुए लोगों को ट्रेनिंग देने के लिए थोड़े समय के शिविर खोलने का भी सुझाव दिया। ये शिविर सामुदायिक विकास खंडों के केन्द्रों में या हर जिले में किसी उपयुक्त स्थान पर लगभग ७ दिन तक लगाए जाएंगे। इसका मुख्य उद्देश्य हर गांव या कुटुम्ब में कुछ लोगों को परिवार आयोजन प्रचारक की ट्रेनिंग देना है।

STANDARD QUESTION

1. Give your considered view regarding Family Planning with special reference to Indian conditions.

अध्याय २१

भारत मे श्रम-संघ आन्दोलन

(Indian Trade Union Movement)

श्रम सघ का अर्थ—

सवश्री सिडनी तथा बीट्राइस वेब (Sidney and Beatrice Webb) के शब्दो म, श्रमिक सघ वास्तव में मजदूरी पर निर्वाह करन वाले व्यक्तियो के उनके काम की दशाए बिगडन न देन तथा उ हें सुधारन क लिए बनाये गये स्थायी सगठन है। इस प्रकार इनके दो प्रमुख उद्दश्य है —प्रथम, जो कुछ प्राप्त हो चुका है उस बनाये रखना और दूसरे अधिक सुधार के लिए प्रयत्न करना।

सेवायोजक की तुलना में श्रमिक की स्थिति बडी दुबल होती है। वह अकेले अपनी आवश्यकताओ को अपन स्वामियो के सम्मुख रखन में हिचकता है। इसका कारण उसकी आर्थिक अवस्था का खराब व शिक्षा का अभाव होना है। परिणाम स्वरूप उसे बडी हानि सहनी पडती है। श्रमिक के हित की रक्षा के लिए ही श्रमिक सघ का जन्म हुआ। वे माग एव पूर्ति के एकागी प्रस्ताव को सामूहिक रूप देते है। फ्रैंक टनबाम (Frank Tannen Baum) के मतानुसार— श्रम आन्दालन परिणाम है और मशीनो का आविष्कार इसका प्रधान कारण है। मशीनो के आविष्कार से एक व्यक्तिगत श्रमिक की सुरक्षा का बडा भारी आघात पहुंचा है अतएव अपन बचाव के उद्दश्य से उसन सघ का निर्माण किया। श्रम सघ द्वारा वह मशीनो के दुष्परिणामो पर विजय प्राप्त करन का प्रयत्न करता है। श्रम सघो का प्रमुख उद्दश्य पूंजीवादी व्यवस्था क स्थान पर औद्योगिक जनतन्त्रवाद की स्थापना करना होता है। राबट एफ० हाक्सी (Robert F Hoxie) क विचारानुसार, श्रम सघ वास्तव म वग मनोवृत्ति (Group Psychology) क उत्पाद है।' प्राय सभी श्रमिक-सघो का अन्तिम उद्देश्य सामान्य होता है—अर्थात् व श्रमजीवियो की सौदा करन की शक्ति को बढाते है, जिससे कि व मिलकर अपनी समस्याओ को स्वय हल करन म समर्थ हो सकें। सेलिग पलमैन (Selig Pearlman) न एक स्थान पर लिखा है कि किसी देश के श्रम आन्दालन

की शक्ति वहाँ के रहने वाले श्रमिकों की जागरूकता पर निर्भर करती है। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के शब्दों में, "श्रमिक-संघ वास्तव में श्रमजीवियों में संगठन का केन्द्र बिन्दु है।" संघ शक्ति से श्रमिकों में परस्पर बन्धुत्व एवं सहयोग की भावना का विकास होता है। संगठन के अभाव में श्रमजीवियों में स्वयं विषम प्रतियोगिता की भावना पैदा हो सकती है, अतः पारस्परिक प्रतियोगिता की भावना का उन्मूलन करने एवं बन्धुत्व की भावना को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से ही श्रमिक संघों का जन्म हुआ।

कुछ लोग श्रमिक संघों को 'लड़ाका संगठन' (Militant Organisations) समझते हैं, जो सदैव औद्योगिक युद्ध के लिए तैयार रहते हैं, किन्तु यह धारणा सही नहीं है। श्रमिक संघ वास्तव में सामाजिक अशान्ति नहीं, वरन् सामाजिक प्रगति के प्रतीक हैं।

श्रमिक संघ के उद्देश्य—

(१) श्रमिकों में परस्पर बन्धुत्व एवं सहयोग की भावनाओं का विकास करना एवं उन्हें संगठित करना।

(२) उनके काम एवं मजदूरी के सम्बन्ध में उनकी विभिन्न अक्षमताओं पर सोच-विचार करना तथा उन्हें वैधानिक रूप से दूर करने का प्रयत्न करना।

(३) श्रमिक एवं उनके अधिकारियों में सहयोग की भावना उत्पन्न करना।

(४) अपने सदस्यों की बीमारी तथा अन्य मुसीबत के समय के लिए कोष रखना।

(५) रोग बीमा, प्रॉवीडेन्ट फन्ड, सहकारी साख, डाक्टरी मदद आदि लाभ दायक योजनाओं की व्यवस्था करना।

(६) हड़ताल घोषित करना, संगठित करना तथा उन्हें चलाना, सेवायोजकों से वार्ता करना और झगड़ों को शान्ति से तय कराना।

(७) आवश्यकता पड़ने पर कानूनी सहायता देना।

(८) अन्य ऐसे कार्य करना जो श्रमिकों तथा उनके आश्रितों के सामाजिक, आर्थिक एवं शिक्षा सम्बन्धी दशाओं के सुधार के लिए हों।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रमिक संघों का प्रारम्भिक उद्देश्य अपने सदस्यों का आर्थिक एवं सामाजिक हित साधना है। इस उद्देश्य से ही वे समस्त कार्य करते हैं।

श्रमिक संघ के कार्य—

श्रमिक संघ के कार्यों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—
(१) श्रमिकों की काम की दशाओं से सम्बन्धित कार्य, (२) काम की दशाओं से असम्बन्धित, किन्तु उनके सामान्य जीवन स्तर से सम्बन्धित कार्य, और (३) राजनैतिक कार्य।

(१) **काम की दशाओं से सम्बन्धित कार्य** (Intra mural Functions)—श्रमजीवियों की काम की दशाओं से सम्बन्धित कोई भी कार्य इस शीर्षक के अन्तर्गत आता है जैसे—पर्याप्त मजदूरी दिलाने के लिए प्रयत्न करना, कारखाने के अन्दर काम करने की दशाओं में सुधार करना, काम के घन्टों में कमी करना, सेवायोजकों से उचित व्यवहार प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना आदि। लाभग्रह भागिता एव सह भागिता की दिशा में किए हुए प्रयत्न भी इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिक संघ सामूहिक रूप से अपने सेवायोजकों से व्यवहार करते हैं और माँग की अस्वीकृति की दशा में हड़तालें तथा असहयोग करते हैं। यही कारण है कि कभी कभी श्रमिक संघ के इन कार्यों को 'लड़ाकू कार्य' (Militant or Fighting functions) कहते हैं।

(२ **सामान्य जीवन-स्तर से सम्बन्धित कार्य** (Extra-mural activities — इस शीर्षक के अन्तर्गत उन कार्यों का समावेश किया जा सकता है, जिनसे कि श्रमिकों के सामान्य जीवन स्तर में वृद्धि हो, जैसे—श्रमजीवियों में परस्पर बन्धुत्व एव सहयोग की भावना प्रोत्साहित करना, उनका शैक्षिक एव सांस्कृतिक विकास करना, बीमारी, बेकारी अथवा हड़ताल आदि की अवधि में श्रमिकों की रक्षा तथा सहायता करना, कानूनी परामर्श देना, श्रमजीवियों के लिए कल्याण कार्य की व्यवस्था करना, पुस्तकालय, वाचनालय, मनोरंजनालय आदि का प्रबन्ध करना, सस्ते ऋण, सस्ते अनाज एव गृह आदि की व्यवस्था करना। इन कार्यों को 'बन्धुत्व प्रेरक कार्य' (Fraternal functions) भी कहा जा सकता है और ये सदस्यों के सहयोग तथा उनकी आर्थिक दशा पर निर्भर करते हैं। आर्थिक दृष्टि से श्रमिक संघ जितने ही बलशाली होंगे, ऐसे कार्यों की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

(३) **राजनैतिक कार्य** (Political activities) —देश के शासन प्रबन्ध में भाग लेने के उद्देश्य के लिए निर्वाचन आदि में श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों का खड़ा करना 'राजनैतिक कार्यों की श्रेणी में आता है।

भारत में संघ आन्दोलन

पारस्परिक सामान्य लाभ के लिए श्रमिकों का संगठन होना भारत में अभी थोड़े समय से ही आरम्भ हुआ है। सबसे प्रथम बार सन् १८८४ में सामूहिक प्रतिनिधित्व किया गया, जबकि फैक्टरी कमीशन को प्रस्तुत किये जाने वाले स्मरण पत्र को तैयार करने के लिये श्रमिकों का एक सम्मेलन बुलाया गया, परन्तु संगठित कार्यक्रम का विचार श्रमिकों में देर से आया। सन् १८९० में श्री लोखण्डे ने श्रमिकों को संगठित किया। इस संगठन का नाम बम्बई मिल हैण्ड्स एसोसियेशन था, जो सरकार को कारखाना अधिनियम के संशोधन के विषय में स्मरण-पत्र प्रस्तुत करने के लिए

आयोजित किया गया था परन्तु यह बड़ा ढीला ढाला संगठन था। इसका न तो कोई निश्चित विधान था और न निश्चित चन्दा देने वाले सदस्य ही। सन् १८९७ में अमलगेमेटड सोसायटी आफ रेल्वेमेन आफ इण्डिया एण्ड आफ बर्मा की स्थापना हुई जो अब भी वर्तमान है परन्तु इसका कार्यक्रम भाईचारे का कम था एवं लड़ाका अधिक।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में कुछ संघ जैसे—सी मेन यूनियन कलकत्ता एवं पोस्टल यूनियन बम्बई स्थापित हुए। एक मुहम्मदन एसोसियेशन बंगाल में थी परन्तु उसे कठिनता से एक श्रमिक संघ कहा जा सकता है। इसी प्रकार इण्डियन लेबर यूनियन यद्यपि नाम से बड़ा उचित संगठन जान पड़ता है बहुत क्रियात्मक नहीं रहा। सन् १९१० में श्रमिकों के कल्याण की वृद्धि के लिए कामगार हितवर्द्धक सभा स्थापित हुई जो सन् १९५२ तक बनी रही परन्तु इसने भी अधिक काम नहीं किया।

वास्तव में श्रमिक संघ आन्दोलन भारत में सन् १९१८ से प्रारम्भ होता है जबकि अनाप सनाप कीमत बढ़ने से उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयाँ, सामान्य राजनैतिक कशमकश एवं श्रमिकों की बढ़ती हुई विश्व व्यापी चेतना ने श्रमिकों के दिमाग में अपने हितों के लिए संगठित होने की आवश्यकता की बात भर दी। पहली यूनियन मद्रास में स्थापित हुई। इसके बाद अन्य स्थानों में भी यूनियन स्थापित हुईं। इनमें अधिकतर तो केवल हड़ताल समिति मात्र थीं जिनका जन्म समस्या को जीतने या हारने पर या उसमें पूर्व ही समाप्त हो जाने के लिए हुआ था। वे एक दूसरे से असम्बन्धित थीं परन्तु जब उनके एकीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई क्योंकि इन्हीं दिनों विश्व श्रमिक संघ के लिए किसी केन्द्रीय एवं प्रतिनिधि संघ से प्रतिनिधि जाने को थे अस्तु स्थानीय यूनियन संघ में परिवर्तित हो गई और फिर प्रान्तीय संघ की स्थापना हुई। सन् १९२० में आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस जो समस्त यूनियनों का राष्ट्रीय फेडरेशन थी बुलाई गई। सन् १९२२ में केन्द्रीय श्रमिक समिति की स्थापना हुई और उसी वर्ष आल इण्डिया रेल्वेमेन फेडरेशन पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ यूनियन स्थापित हुई। इस अवधि की विशेषता यह थी कि उपयुक्त नेता श्रमिकों में से ही सुलभ न थे अस्तु उन्हें बाहरी व्यक्तियों के नेतृत्व पर निर्भर रहना पड़ता था।

सेवायोजकों ने इन यूनियनों को मान्यता प्रदान करने से इन्कार कर दिया। श्रमिकों को सताया जाने लगा। भारतीय अपराध दण्ड नियम संशोधित किया गया और श्रमिक संघों के कार्य अवैध घोषित कर दिये गये। सन् १९२० में बकिंघम मिल्स के मामले में मद्रास यूनियन के विरुद्ध आदेश जारी किये गये और तब श्रमिक नेताओं ने देखा कि वे सच्चे श्रमिक संघ कार्यों के लिये भी उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। श्री एम० एम० जोशी ने श्रमिकों के लिए संरक्षण प्राप्त करने का उद्योग किया परन्तु उनका यह परिश्रम पाँच साल बाद उस समय सफल हुआ जबकि सन् १९२६ में व्यापार संघ अधिनियम पास किया गया। तब से संघों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

सन् १६२८ २६ म आन्दोलन बडी तेजी पर था। कम्युनिस्टो का सघो पर प्रभाव बढ गया। ऐसे सघो म गिरनी कामगार यूनियन (सदस्य सख्या ५० ००० से अधिक) प्रमुख थी इन्होंने बम्बई म सन् १६२८ म हडताल सगठित की और सफलता भी प्राप्त की परन्तु कम्यूनिस्ट सदस्यो की कुछ कार्यवाहियो से मुसीबत पदा हो गई। शहर म दङ्गा हो गया कई प्रमुख नेता पकड लिए गये और उन्हे सजायें दी गई। सन् १६२६ म उन्होंने फिर दूसरी हडताल की और वह काफी समय तक जारी रही। तब एक जाँच अदालत बठी। उसकी रिपोर्ट के अनुसार कामगार यूनियन ही हडताल के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी थी। एक प्रमुख सघ के विरुद्ध ऐसी रिपोर्ट ने आन्दोलन को बदनाम कर दिया और उसे बहुत धक्का पहुँचा। आल इण्डिया ट्रेड यूनियन काग्रेस के सन् १६२६ के अधिवेशन म उसकी कार्य समिति पर कम्यूनिस्टो ने अधिकार कर लिया तथा उग्र कार्यवाही का और विश्व कम्यूनिस्ट आन्दोलन से सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय किया। इस पर नम्र दलीय सघो ने श्री एम० एम० जोशी की अध्यक्षता म इस काग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और इण्डियन टेड यूनियन फडरेशन बनाया। रेलवे मन फडरेशन ने भी उस काग्रेस से सम्बन्ध तोड लिया। सन् १६३१ म तो उग्रदलियो ने स्वय अपनी अलग आल इण्डिया रेड ट्रेड यूनियन काग्रेस बना ली। सन् १६३१ के विश्व श्रमिक सघ को इण्डियन टेड यूनियन फडरेशन से ही प्रतिनिधि भेजे गये थ। इस फूट से आन्दोलन म बडी कमी आ गई। एकता लाने के प्रयत्न एक बार फिर किए गये सन् १६३३ म नेशनल ट्रेड यूनियन फडरेशन बना जिसम कम्यूनिस्टो को छोडकर और सब सघ सम्मिलित थ। सन् १६३५ म एकता का अन्तिम आधार भी निश्चित हो गया और सन् १६४० म तो काम चलाऊ समझौता भी हो गया था परन्तु अभाग्यवश उसी समय युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध म सहायता दी जाये या नहीं इस प्रश्न पर फिर तीव्र मतभेद पदा हो गया फलस्वरूप कई सघ अलग हो गये।

वर्तमान समय म इण्डियन नेशनल टेड यूनियन कांग्रेस देश के श्रमिक सघो की सबसे अधिक प्रतिनिधिक सस्था है। इसम लगभग ८०० सघ सम्मिलित है जो लगभग १२ लाख श्रमिको का प्रतिनिधित्व करते है। इसके बाद आल इण्डिया ट्रेड यूनियन काग्रेस है जो किसी समय श्रमिको की प्रतिनिधि सस्था थी परन्तु कम्युनिस्टो के घुस आने पर जबसे भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ काग्रेस उसम अलग हो गई तब से उसकी सदस्य सख्या घटती जा रही है। आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अतिरिक्त सोशलिस्ट पार्टी द्वारा आयोजित हिन्द मजदूर सभा भी है तथा सन् १६४६ म यूनाइटेड टेड यूनियन काग्रेस की और स्थापना हुई। इस प्रकार भारत म आज ४ प्रमुख अखिल भारतीय श्रम सगठन है जिनके सदस्यो की सख्या निम्न तालिका से ज्ञात की जा सकती है —

तालिका I*
रजिस्टर्ड श्रम-संघ तथा उनकी सदस्यता

विवरण	केन्द्रीय संघ			राज्यीय संघ		
	१९५५–५६	१९५६–५७	१९५७–५८	१९५५–५६	१९५६–५७	१९५७–५८
१ रजिस्टर में दर्ज संघों की संख्या	१७४	१७३	२२३	७९२१	८१८०	६८२२
२. प्रत्याय (Returns) फाइल करने वाले संघों की संख्या	१०५	१०२	१•६	३६०१	४२६७	५३८४
३ प्रत्याय फाइल करने वाले संघों की संख्या	२,१२ ८४८	१,८७ ६५	४,०•,१६६	२०,६१,८८४	२१,८६,४६७	२६,७२,८८३

* India 1960, Page 383

तालिका II*
अखिल भारतीय संघो की सदस्यता

संगठनों का नाम	सम्बन्धित संघो की संख्या			सदस्यता		
	१९५६	१९५७	१९५८	१९५६	१९५७	१९५८
१. भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	६१७	६७२	७२७	९,७१,७४०	६,३४,३८५	९,१०,२२१
२. हिन्द मजदूर सभा	११६	१३८	१५१	२,०३,७६८	२,३३,६९०	१,९२,९४२
३. अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	५५८	—	८०७	४,२२,८५१	—	५,३७,५६७
४. यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस	२३७	—	१८२	१,५९,१०९	—	८२,००१
योग	१५३१	—	१,८६७	१७,५७,४६८	—	१७,२२,७३१

भारत मे श्रमिक संघ की सफलताएँ—

भारत मे श्रमिक संघों का इतिहास नया है, इसलिये व्यवहार मे उनका वास्तविक महत्त्व आंकना दुष्कर नहीं तो कठिन अवश्य है। यह तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि उन्हें पर्याप्त सफलताएँ प्राप्त हुई है। उदाहरण के लिए, अपनी स्थापना के प्रथम वर्ष में ही वे मजदूरी बढ़वाने और काम के घण्टे कम करवाने में सफल हुए और सन् १९२६ में उन्होंने मजदूरी में कटौती होने से रोकी। इसके अतिरिक्त वे मालिकों का श्रमिकों के प्रति व्यवहार बदलने में भी सफल हुए हैं। वे अब पहले की तरह उनके प्रति उदासीन एवं विरुद्ध नहीं रहे। कर्मचारी संघ ने सन् १९२५ में बी० एन० आर० की हड़ताल एवं १९२७ में खड़गपुर वर्कशाप की 'तालाबन्दी' में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया।

* India 1960, Page 383

दूसरे देशो की अपेक्षा हमारे देश के श्रमिक सघो की प्रगति लगभग नगण्य है। कठिनता से ५% श्रमिक इन सघो के सदस्य होगे। दुर्भाग्यवश हमारे अधिकतर सगठन केवल खोखले आयोजन मात्र हे,जिन्हे अपर्याप्त कोष एव जाली सदस्य सख्या और बाहरी लोगो के उत्साह द्वारा ही जीवित रखा जा सका है। बहुत कम श्रमिक सघो ने बेरोजगारी, बीमारी व बुढापे के लाभ दिये हे। उनमें 'पारस्परिक सहायता' की प्रवृत्ति ता लगभग अविकसित है और उन्होने अपने को केवल लडाकू कार्यो तक ही सीमित रखा है। अहमदाबाद का वस्त्र सघ अवश्य ही श्रमिको के लिए कई कल्याण कार्य— अस्पताल, शिक्षा, सस्ते अनाज, सहकारी ऋण एव मनोरजन की सुविधाओ के रूप में, कर रहा है। प्रति सप्ताह वह एक पत्र भी प्रकाशित करता है।

यह आशा की जाती हे कि शिक्षा के फैलने पर दशा और सुधरेगी, श्रमिक अपने अधिकार एव कर्तव्यो को समझेंगे, अनुशासन बढेगा, सगठन के महत्त्व का उन्हे ज्ञान हागा व श्रमिक सघो के सदस्या की सख्या भी बढेगी, वे स्वय अपने वर्ग में से ही नेता प्रकट कर सकेंगे, बाहरी लोगो की स्वार्थपूर्ण चालो से छुटकारा पावेंगे और अपना काय अधिक चतुरता एव बुद्धिमत्ता से चला सकेंगे। वह दिन दूर नही है, जब कि भारत इस बात पर गर्व कर सकेगा कि उसके श्रमिक सघ भी अब अन्य देशो से किसी भाँति पीछे नही हैं।

भारतीय श्रमिक सघों के मार्ग मे बाधायें—

भारत में श्रमिक सघ आन्दोलन की प्रगति बहुत सी बाधाओ के कारण धीमी रही है। कुछ महत्त्वपूर्ण बाधायें ये हैं :—

(१) अशिक्षा व अज्ञानता—भारतीय श्रमिक प्रायः अपढ है, अस्तु वे अनुशासन के महत्त्व को नही समझ और न सघ को बुद्धिमानी और चतुरता से चला ही सकते है।

(२) विचित्र समुदाय—भारतीय श्रमिक वर्ग विभिन्न प्रकार के धर्मों, विचारधाराओ, रीति रिवाजो और आदतों के मजदूरो का मिश्रण है, इसलिए उनका सगठित होने में देर लगती है।

(३) प्रवासी प्रवृत्ति—वे दूर दूर के गाँवो से नौकरी की खोज में आते है और चले जाते है, अत. वे अपना कार्य अथवा उद्योग परिवर्तित करते रहते है, इस कारण वे किसी सघ में स्थायी उत्साह नहीं लेते।

(४) कम वेतन—भारत मे मजदूरो को बहुत कम वेतन मिलता है, इस कारण बहुत से तो चन्दा नही दे पाते। यदि कुछ दे भी सकें तो ऐसा शुल्क इतना न्यून होगा कि उससे सघ को यथेष्ट द्रव्य प्राप्त नहीं हो सकता, अतः वे फिर अच्छा कार्य,

जिसकी उनसे आशा की जाती है, नही कर पाते । यही नही, भारतीय मजदूर केवल समस्यात्मक लाभ के लिए शुल्क देने मे सकोच करता है और अपने शुल्क के बदले में अपनी सब आपत्तियो से बचाव अथवा थोडी अवधि ही मे वेतन वृद्धि की आशा रखता है ।

(५) न्यून शुल्क – न्यूनतम शुल्क भी वसूल करने में कठिनाई होती है, क्योकि उसे मिल मालिक तनख्वाह बांटते समय उगाहने नही देते । बाद में वह या तो सरलता से कोषाध्यक्ष तक पहुंचता नही और यदि पहुँचता भी है तो बीच में ही उसका कुछ भाग इधर उधर कर दिया जाता है ।

(६) कम अवकाश—मजदूरो का अवकाश इतना कम रहता है कि वे अन्य बातें, जैसे—सघ आदि के विषय म सोच ही नही पाते ।

(७) नियोक्ताओ व ठेकेदारों की विरोधी प्रवृत्ति—सेवायोजको एव कर्म कारियोजको का विरोध सघ आन्दोलन की प्रगति में एक अन्य बाधा है । उन मजदूरो को जो सघ के प्रति कुछ सहानुभूति रखते है, तरह तरह से परेशान किया जाता है । वे मजदूर सघो को मान्यता प्रदान नही करते है और यदि करते ह तो ऐसी शर्तों के साथ कि फिर सगठन व्यर्थ रहता है । कभी-कभी सच्चे सघो के विरोध मे सेवायोजको द्वारा झूठे सघ स्थापित कर दिये जाते है और इनकी सहायता से उनकी कार्यवाहियो में विघ्न डालने का प्रयत्न किया जाता है । सघ के कार्यकर्त्ताओ को घूस देकर फोड लेना तो एक साधारण सी बात है ।

(८) विशाल क्षेत्र—हमारे देश में मजदूर एक बडे क्षत्र मे फैले हुए है और कुछ दशाओ म तो उन तक पहुँच भी नही हो पाती, जैसे—आसाम के चाय बागान आदि । अस्तु इनसे सम्बन्धित सूचनायें दबाई जा सकती है और बाहर वालो को उनकी जानकारी नही हो पाती । यह दशा सघो की प्रगति में बाधक है ।

(९) सु नेतृत्व का अभाव—सबसे बडी बाधाओ मे एक बाधा अच्छे नेतृत्व का अभाव होना भी है । श्रमिक अपढ है, वे अपने अधिकारो एव कर्त्तव्यो मे अपरिचित है, इसलिए उन्हे बाहरी नेतृत्व पर निभर रहना पडता है । यह उनकी बडी दुबलता है, क्योकि ऐसी दशा म प्राय. अपने राजनैतिक अथवा सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वार्थी लोग नेतृत्व सँभाल लते है । इन्हे श्रमिको की वास्तविक स्थिति का ज्ञान नही होता, क्योकि उन्हें कभी कारखानो मे काम नही करना पडा । वे उद्योग की आवश्यकताओ से भी अपरिचित होते हैं । उन्हे श्रमिको से सच्ची सहानुभूति भी नही होती । कुछ पढे लिखे वकील आदि, जिन्हे काम नही मिलता, बैठे ठाले इस कार्य को सँभाल लेते हे और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के प्रयत्न में सलग्न रहते ह । कही कही तो ऐसे लोगो ने मजदूरो के चन्दे भी हजम कर लिए । कुछ नता कई सघो का काम सँभालने

रहते है, इसलिए वे प्रत्येक सघ का पर्याप्त समय भी नही दे पाते । रॉयल कमीशन ने यह स्पष्ट कहा है जब तक ये सघ इस विषय में आत्म-निर्भर नहीं हो जाते, तब तक किसी विशेष प्रगति की आशा करना व्यर्थ है ।

(१०) श्रमिक नेताओं के प्रति द्वेष—अधिकाश श्रमजीवियों में अपने नेताओं के प्रति सद्भावना नही होती । जनसाधारण भी उन्हें प्रायः विप्लवकारी, आग उगलने वाला कहकर बदनाम करते है ।

(११) श्रमिको मे अनुशासनहीनता—अशिक्षा, अज्ञानता एव रूढ़िवादिता के कारण भारतीय श्रमिक नियन्त्रण व शासन के अन्तर्गत रहने का आदी नही होता, अतः श्रम सघ की ओर स प्राय. लापरवाह रहता है ।

(१२) नियोक्ताओ का असहानुभूतिपूर्ण वातावरण—मिल मालिकों का असहानुभूतिपूर्ण वातावरण भी श्रम सघ आन्दोलन की एक बडी कठिनाई है । भारतीय नियोक्तागण यह नही समझते कि स्वस्थ एव सुदृढ सघवाद हडताला के विरुद्ध बीमा का कार्य करता है । इसके फलस्वरूप अनियमित, अनाधिकृत तथा बिजली की तरह क्षणिक हड़तालें नहीं हो पाती ।

राष्ट्र निर्माण मे सघो का भाग—

किसी भी देश को कल्याणकारी राज्य बनाने में श्रमिक सघ बहुत लाभकारी हो सकते है । श्रमिक सघो को मजदूरो में यह भावना व प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए कि वे राष्ट्र हित की दृष्टि से उत्पादन को बहुत बढ़ावें । मिल मालिकों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे उत्पादन बढ़ाने के उपायो को श्रमिक (अर्थात् श्रमिक सघ के प्रतिनिधियों) के सामने रखें और उनका सहयोग प्राप्त करें । श्रमिक प्रतिनिधि उन्हें राष्ट्रीय समृद्धि में जहाँ अपने सहयोग का विश्वास दिलायेंगे वहाँ अपने लिए भी मिल मालिकों से निम्न लिखित आश्वासन चाहेंगे.—

(१) उत्पादनक्षमता में हुई वृद्धि के कारण जो लाभ होगा उसमें मजदूर भी वेतन वृद्धि और अन्य सुविधाओं के रूप में भागीदार होंगे ।

(२) नये उपायों का अर्थ मजदूर पर कार्य का अनुचित भार डालना नहीं होगा ।

(३) नये उपायो का परिणाम मजदूरो की छँटनी और बेकारी भी नही होनी चाहिए ।

इसके बाद श्रमिक सघ मजदूरों को राष्ट्रीय उत्पादन में अधिकाधिक हार्दिक सहयोग देने के लिए समझावेंगे, मजदूरो को मशीनों का काम अधिक कुशलता से करने की ट्रेनिंग भी देंगे और शिक्षण की व्यवस्था भी करेंगे । श्रमिकों के प्रतिनिधि मिल इन्जीनियरों के साथ बैठ कर उत्पादन की नई योजनाओं पर विचार करेंगे और उप

युक्त व्यवस्था का निर्माण करने में सहयोग देंगे। इस तरह श्रमिक संघ राष्ट्रीय समृद्धि में महत्वपूर्ण भाग ले सकते हैं।

शिक्षा प्रचार देश की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आज श्रमिक संघ ४५% व्यय अपने कार्यकर्त्ताओं के वेतन पर करते हैं और केवल ७% शिक्षा प्रसार पर व्यय करते हैं। यह बहुत असन्तोषजनक स्थिति है। शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

निम्नलिखित अन्य दिशाओं में काम करके भी श्रमिक संघ राष्ट्र-निर्माण में सहायक हो सकते हैं —

(१) श्रमिक संघ सहकारी समितियाँ बना कर मजदूरों के लिए घर बनवा सकते हैं।

(२) मजदूरों में बचत की आदत पैदा की जा सकती है और विभिन्न कार्यों के लिए सहकारी समितियों का संगठन किया जा सकता है।

(३) मजदूर परिवारों में तथा वयोवृद्ध पुरुषों में ग्रामोद्योग का प्रसार करके आमदनी बढ़ाई जा सकती है।

(४) शारीरिक व्यायाम, खेल कूद आदि का प्रचार करके मजदूरों को स्वस्थ बनाने में श्रमिक संघ सहयोग दे सकते हैं।

संक्षेप में, श्रमिक संघ विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य करके राष्ट्र निर्माण में सहायक हो सकते हैं। इससे मजदूरों का शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर भी ऊँचा उठेगा, वे अच्छे नागरिक बनेंगे और जो सामाजिक व्यवस्था वे लाना चाहते हैं उसमें भी इससे सफलता मिलेगी।

श्रम-संघों को मान्यता के सिद्धान्त—

भारतीय श्रम सम्मेलन सन् १९५८ ने मजदूर संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए निम्न सिद्धान्त निर्धारित किये.—

(१) जहाँ १ से अधिक मजदूर संघ हैं, वहाँ यदि कोई संघ मान्यता के लिए दावा करे तो वह रजिस्ट्रेशन के बाद कम से कम १ वर्ष तक सक्रिय होना आवश्यक है। जहाँ केवल एक ही संगठन है वहाँ यह शर्त लागू नहीं होती।

(२) सम्बद्ध उद्योग में इसकी सदस्य संख्या कम से कम १५ प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए।

(३) यदि किसी मजदूर संघ के सदस्यों की संख्या सम्बद्ध स्थानीय उद्योग के मजदूरों की संख्या का २५ प्रतिशत है, तो वह उस क्षेत्र के लिए मान्यता प्राप्त करने का दावा कर सकता है।

(४) जब किसी मजदूर संघ को मान्यता मिल जाय तब इस स्थिति में दो वर्ष तक कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(५) जहां किसी उद्योग या सस्थान में कई मजदूर सगठन हों वहां जो सबसे बड़ा सघ हो उसे मान्यता प्रदान की जाय।

(७) किसी क्षेत्र के उद्योग की प्रतिनिधि मजदूर यूनियन उस क्षेत्र के उस उद्योग के सभी कामगारों का प्रतिनिधित्व करेगी, परन्तु यदि किसी विशेष उद्योग की यूनियन की सदस्य सख्या ५० प्रतिशत है, तो वह उस उद्योग की सीमा तक प्रतिनिधित्व कर सकती है।

(७) प्रतिनिध्यात्मकस्वरूप के निश्चय के लिए प्रक्रिया और अधिक सम्पूर्ण होनी चाहिए। जहां पर विभागीय तन्त्र के विनिश्चयात्मक निर्णय अन्य पक्षों को स्वीकार न हो वहां सभी केन्द्रीय मजदूर सगठनों के प्रतिनिधियों की एक समिति बनाई जाय, जो मामले पर विचार करे तथा निर्णय दे। इसके लिए केन्द्रीय सरकार मजदूर सगठन, जो स्थायी तन्त्र के रूप में कार्य करेगा, स्थानीय आधार पर व्यक्ति और धन प्रदान करेगा।

(८) केवल उन्हीं मजदूर सघो को मान्यता दी जायगी जो अनुशासन की महिमा का पालन करेंगे।

(६) ऐसे मामलों में, जहां कोई मजदूर सघ केन्द्रीय सरकार के सगठनों में स किसी से भी सम्बद्ध न हो, मामले को अलग रूप से ही तय किया जायगा।

श्रम सघ तथा द्वितीय पंच-वर्षीय योजना—

श्रम सघो के दोषों को दूर करने के लिए द्वितीय योजना अवधि में निम्नलिखित काय किए जा रहे हैं —

(i) श्रम-सघों में बाहरी व्यक्तियो को शामिल न होने दना;

(ii) आवश्यक शर्तों को पूरा करने पर उन्हें मान्यता प्रदान करना,

(iii) श्रम सघों के कार्यकर्त्ताओ की उत्पीडन (Victimization) से रक्षा करना, और

(iv) श्रम सघों की व्यक्तिगत साधनों द्वारा उन्नति करना।

STANDARD QUESIONS

1. Define a 'Trade Union' and briefly enumerate its aims, objects and functions.
2. Sketch the growth of trade unionism in India pointing out its defects and suggesting remedies.

अध्याय २२

हमारी कुछ प्रमुख श्रम समस्यायें I

(Labour Problems I)

भारत मे श्रम समस्याओं का उदय—

भारत मे श्रम समस्यायें अपेक्षाकृत कुछ नवीन ही है। प्राचीन काल म श्रमिकों की क्या स्थिति थी, उनकी काम करने की दशायें कैसी थी और उनका जीवन-स्तर कैसा था, इस विषय मे कोई व्यवस्थित विवरण नही मिलता। हा, तत्कालीन ग्रन्थों, साहित्य तथा रीति रिवाजो के आधार पर अनुमान से यह कहा जा सकता है कि प्राचीन श्रमिक असगठित, अरक्षित किन्तु कार्य कुशल थे। पुश्तैनी कलाकारो तथा दस्तकारों द्वारा व गाँवों व नगरो मे कला व दस्तकारी के उद्योग धन्धे किये जाते थे। ये लोग गाँव के सेवक भी होते थे तथा नगरों मे दस्तकारी सघो (Craft Guilds) मे सगठित होते थे। प्रवीण दस्तकारो (Master-craftsmen) के यहाँ कुछ लोग (Apprentice) दस्तकारी का काम सीखते थे। काम सीखने के बाद वे स्वय पृथक व्यवसाय करने लगते थे। श्रमिक का जो आधुनिक अर्थ लिया जाता है, वह १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही प्रारम्भ हुआ। सन् १८५७ के उपरान्त देश में नई शासन व्यवस्था स्थापित हुई और आधुनिक उद्योगों व यातायात तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास होना प्रारम्भ हुआ। जैसे जैसे देश में उद्योगो का विकास हुआ और नए कारखानों की स्थापना हुई, रेल, तार, डाक, चाय, रबड, सूत, जूट, लौह, इत्यादि सभी प्रकार के उद्योगों का विकास होने लगा। औद्योगिक क्रान्ति तथा यन्त्रों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन के आधुनिक कारखाने की पद्धति ने ही श्रम की समस्याओं को जन्म दिया। २०वी शताब्दी म इन समस्याओं का रूप उग्रतर होता गया। एक ओर तो आधुनिक उद्योगो के विकास और दूसरी ओर कुटीर उद्योगों के विनाश तथा कृषि भूमि पर जनसख्या के उत्तरोत्तर बढने वाले भार के कारण, गाँवो से झुण्ड का झुण्ड कारीगर व किसान नगरो में जाकर श्रमिकों के रूप म आबाद होने लगे। औद्योगिक नगरों का विकास हुआ और देश म बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, कानपुर, मद्रास और टाटानगर जैसे श्रमिक प्रधान नगर विकसित हुए।

इस प्रकार जो एक नया श्रमिक वग उत्पन्न हुआ उसकी कुछ अपनी विशेषतायें थी। उसके पास न धन था न भूमि और न कोई अन्य सम्पत्ति। उनके निवास की भी जटिल समस्या थी। पर्याप्त व उपयुक्त घरा के अभाव म भारतीय श्रमिक वग को नगरो की तग अधेरी और दुगधपूण गलियो म नारकीय जीवन व्यतीत करन के लिए बाध्य होना पडा। प्रारम्भ म उसकी नौकरी की सुरक्षा के लिय कोई व्यवस्था नही की जा सकी। उसके काम करन के स्थान की दशाय बडी अनुपयुक्त व स्वास्थ्य के प्रतिकूल थी। उसे १२ से १५ घन्टे तक काम करना पडता था। उसके स्वास्थ्य व चिकित्सा तथा दुघटनाओ से रक्षा करन के लिये कोई प्रबध न था। उद्योगपति श्रमिको का निदयतापूवक शोषण करते थ और श्रमिक अपन स्वामी की दया पर निभर एक बेवश व असहाय शोषित प्राणी था।

किन्तु समय बदला। प्रथम विश्व युद्ध न श्रम समस्याओ को ऊपर लाकर रख दिया। श्रम तथा पूजी क बीच खाई वर्गीय भद भाव तथा धन व आय की बढती असमानता के कारण श्रमिको और मिल मालिकों के बीच तीव्र वमनस्य तथा द्वेष की आग भडक उठी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान म भारतीय उद्योगपतियो न भारी लाभ कमाये और श्रमिको से शक्ति से भी अधिक काम लिया। इससे मजदूरो म कुछ जाग्रति हुई और उन्होन अपनी दशा सुधारन के लिए आवाज उठाई यद्यपि इस आवाज म बल न था। युद्ध तथा युद्धोत्तर तेजी म मूल्यो म असाधारण वृद्धि के कारण जीवन यापन की लागत बढ गई थी और इससे श्रमजीवियो म बडा असन्तोष छाया हुआ था। महगाई भत्तो बोनस या लाभाश और अधिक मजदूरी प्राप्त करन के लिये हडतालो की देश म एक बाढ आ गई थी। श्रम सघो का सगठन हुआ श्रमिको को अपन महत्व तथा अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ। यही नही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघो व सम्मेलनो म भी भारतीय श्रम सघो के प्रतिनिधि भाग लेन लगे। सयुक्त राष्ट्र सघ न भारत को विश्व का आठवाँ औद्योगिक देश घोषित किया तथा भारतवष को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम निणयो को स्वीकार कर लागू करना पडा।

कुछ श्रम कल्याणकारी कानूनो का भी निर्माण किया गया किन्तु श्रमिको म सगठन का अभाव होन के कारण उनके हितो की उचित रक्षा न हो सकी। सन् १९२६ म श्रम सघ अधिनियम के पास होन से उनकी दशा म सुधार की आशा बधी। सन् १९२९ म भारत सरकार न रायल श्रम कमीशन की नियुक्ति की जिसन अपना प्रतिवेदन सन् १९३१ म प्रस्तुत किया। इसके आधार पर श्रमिको के निवास काय दशाओ काय अवधि नौकरी की सुरक्षा तथा उनके हितकारी कार्यों के सम्बन्ध म केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो न अनेक अधिनियम पास किए। तत्पश्चात सन् १९३७ म कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो न श्रम हित की एक प्रगतिशील नीति को कार्यान्वित कर न्यूनतम भृत्ति नौकरी की सुरक्षा क्षतिपूर्ति इत्यादि की व्यवस्था की।

के लिये ही छोडते है। औद्योगिक केन्द्रो के अधिकांश श्रमिक असल मे ग्रामीण ही होते है, जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा गावो मे ही होती है और ग्रामीण रीति रिवाजो में ही उनकी आस्था होती है। उनका अभीष्ट गाव लौटना ही होता है तथा ऐसा करने में वे प्राय सफल ही होते है।

प्रवासी प्रवृत्ति के कारण—

श्रमिको के गाव से शहर आने के कारणो पर दृष्टिपात करने पर हम देखेंगे कि कृषि पर पडने वाली विपत्ति का पहला असर भूमिहीन खेतिहर मजदूरो पर ही पडता है अत उन्हे गाव छोड कर कारखाना, नौका निर्माण स्थानो बगीचा तथा रेल सिंचाई आदि सरकारी निर्माण काय वाले स्थानो म अधिक वेतन के लिए काम ढ ढने जाना पडता है। उन्नत आवागमन के साधन उनके इस प्रवास म सहायक होते है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश बिहार उडीसा आदि राज्यो तथा बम्बई के रत्नगिरि आदि कुछ जिलो म जन घनत्व तथा भूभार इतना अधिक है और अनार्थिक जोतें इतना भयानक रूप धारण कर चुकी है कि साधारण कृषक जीविकोपार्जन के हेतु शहर में जाने को बाध्य हो जाते है। इस प्रवास काय म सयुक्त परिवार प्रणाली भी सहायक होती है। परिवार के कुछ सदस्य अपने घर तथा खेत से सम्बन्ध विच्छेद किए बिना ही उसे परिवार के अन्य व्यक्तियो की देख रेख म छोड कर गाव से चले जाते है। कभी कभी कृषक गाव के साहूकार से बचने या भूमि और पशु खरीदने के लिए पर्याप्त धन कमाने के उद्देश्य स शहरो म नौकरी तलाश करते है। फिर कभी अपनी जीविका और भावी जीवन को उत्तम बनाने की आशा से निम्न श्रेणी के ग्रामीण श्रमिक (जो कि दलित वग से सम्बन्ध रखते है) शहरो और कस्बो को चले जाते है। चू कि उनके नगर जाने का प्रधान कारण कष्ट है न कि महत्वाकाक्षा अत हम यह कह सकते है कि गावो से नगरो को प्रवास करने वाले सबसे कम कुशल और अत्यन्त निरुपाय ग्रामीण होते है। श्रम कमीशन के शब्दो म—

'प्रवास की प्रेरक शक्ति एक सिरे से आती है, अर्थात् गावो से। औद्योगिक श्रमिक नागरिक जीवन के आकर्षण से शहरो म नही जाता और न उसके प्रवास का कारण महत्वाकाक्षा ही होता है। शहर स्वय उसके लिए कोई आकर्षण की वस्तु नही है और अपना गाव छोडने के समय उसके मन म जीवन की आवश्यकताओ की प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई भावना नही रहती। बहुत ही कम औद्योगिक श्रमिक शहर में रहना चाहेंगे, यदि उन्हे गाव म जीवनयापन के लिए पर्याप्त अन्न और वस्त्र *मिल जाय। वे नगर की ओर आकर्षित नही होते वरन् ढकेले जाते है।'*

प्रवासी प्रवृत्ति के आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम—

(१) प्रवासी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप कारखाना में काम करने वालो के

कितने ही वर्ग अपने को एकदम अपरिचित रीति रिवाजों और परम्पराओं के मध्य पाते हैं। यह भी हो सकता है कि वहाँ भाषा भी दूसरी हो।

(२) पुरानी प्रथाओं और मान्यताओं के बंधन ढीले पड़ जाते हैं, नवीन सम्बन्ध शीघ्रता से नहीं स्थापित हो पाते। फलतः जीवन अधिकाधिक वैयक्तिक हो जाता है।

(३) जलवायु के अत्यधिक परिवर्तन, दोषपूर्ण भोजन, स्थानाभाव के कारण अत्यधिक भीड़ भाड़, मनोरंजन का अभाव तथा पारिवारिक जीवन से विच्छेद होने के बाद पुनः मिलने की प्रलोभन इन सबका संयुक्त प्रभाव श्रमिक के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है।

(४) कुछ दुर्व्यसनों के कारण श्रमिक के नैतिक जीवन का और भी पतन होता है। शराब और जुआ इन दुर्व्यसनों के उदाहरण हैं, जो कि गाँवों में अपेक्षाकृत अज्ञात हैं।

(५) चूँकि श्रमिक के मन में गाँव लौटने की इच्छा सदैव बनी रहती है, अतः वह अपनी नागरिक वृत्ति में स्थायी रुचि उत्पन्न नहीं कर पाता। यही कारण है कि वह उच्च कोटि की प्राविधिक कुशलता नहीं प्राप्त कर पाता।

(६) उसके बार बार गाँव लौटने तथा अन्य कारणों से मालिक और श्रमिक के बीच सम्पर्क की घनिष्ठता नष्ट हो जाती है और उनमें प्रभावपूर्ण संगठन का भी अभाव हो जाता है।

(७) श्रमिक जब लम्बी अनुपस्थिति के बाद लौटता है तो यह निश्चित नहीं होता कि उसे काम मिलेगा ही। पुनः काम मिलने की कठिनाइयाँ उसे साहूकार, मजदूरों के ठेकेदार, शराब बेचने वाले आदि की दया पर आश्रित कर देती हैं।

क्या श्रमिकों का गाँवों से सम्पर्क उचित है ?—

जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं, श्रमिकों का अभीष्ट गाँव लौटना ही होता है। अधिकांश श्रमिक अपना परिवार गाँवों में ही रखते हैं। शहर में अपने पति के साथ आने वाली पत्नी भी प्रसव के समय प्रायः गाँव ही चली जाती है। शहर में रहते हुए उनका सम्बन्ध गाँव से इसलिए भी नहीं टूट पाता कि वहाँ उनको अपने परिवार किसी सम्बन्धी या अपने साहूकार को कुछ रकम भेजना ही होती है।

श्रम आयोग के मतानुसार श्रमिकों का गाँवों से सम्पर्क लाभहीन नहीं है। शहरों की अपेक्षा गाँवों के अधिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण में पालित होने के कारण ग्रामीण श्रमिकों का स्वास्थ्य अधिक उत्तम होता है। समय-समय पर गाँव जाने से खोई हुई मानसिक और शारीरिक शक्ति फिर से लौट आती है। बीमारी और वृत्ति हीनता के अवसर पर गाँव का घर एक शरण स्थल का काम देता है। जिस प्रकार

गावा क आर्थिक भार को नगर प्रवास हल्का कर देता है उसी प्रकार गाँव नगरो की वृत्तिहीनता के प्रति एक प्रकार की सुरक्षा प्रदान करते हे। ग्रामीण और नागरिक जीवन का सयोग दोनो (नगरा और गावो) के लिए हितकर होता है। इससे ग्रामीण जीवन म बाहरी दुनिया का थोडा सा ज्ञान आ जाता है तथा पुरानी जजर प्रथाओ की शृखला को ताडन में सहायता मिलती है। इसी प्रकार नागरिका को भारतीय जीवन की वास्त विकताओ का सूक्ष्म ज्ञान हा जाता है अत हमारा मत है कि इस समय गावा से सम्बन्ध की कडी को वनाये रखना लाभदायक है। हा यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सुनियमित और स्वास्थ्यप्रद हो।

(२) एकता का अभाव—

भारतीय उद्योगा म श्रमजीवी प्राय बहुत दूर दूर से काम करने आते ह। एसे विरले ही औद्योगिक नगर हे जिन्हे निकटवर्ती क्षत्रो म ही समस्त श्रमिक प्राप्त हो जाते हा। परिणामस्वरूप, मजदूरो का वग एक एसा विचित्र समुदाय बन गया है जिसमें भिन्न भिन्न धर्मों के भिन्न भिन्न भाषा बालन वाले, भिन्न भिन्न रहन सहन एव रीति रिवाज के लोग होते ह। मजदूर वग में इन अनेक भिन्नताओ के कारण सगठन नही है। सगठन तो दूर रहा पारस्परिक मेल जोल भी उनमें बहुत कम है।

(३) अनियमित उपस्थिति—

जसा हम ऊपर सकत कर चुके ह भारतीय श्रमिक कारखानो व निकटवर्ती गावा अथवा अय राज्या स काम करन के लिए नगरा में आते ह, अत अपन गावा के प्रति उनका आकपण बना रहता है। वे समय समय पर गाव जाते रहते हे। कृषि क्षेत्रो से आन वाले श्रमिक कृषि मौसम में अथवा फसल पर, जब गावा में अधिक काम होता है, अपना काम छोड कर चल जात हे, इससे उनकी उपस्थिति कारखाना में अनियमित रहती है। निकटवर्ती गाँवों स आन वाले श्रमिक तो प्राय प्रति मास ही अपने गाव जाया करत हे जिससे कारखान के काम में वडी बाधा पडती है।

(४) अज्ञानता एव शिक्षा का अभाव—

भारत की सम्पूर्ण जन सख्या में से केवल १७% व्यक्ति पढ लिख हे। इन पढ लिखे व्यक्तियो म से औद्योगिक श्रमिको का भाग तो नाममात्र को ही हागा। सामान्य शिक्षा का अभाव होन के कारण श्रमजीवी पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ अपन कत्तव्य का निष्पादन नही कर पाते। साथ ही, भारतीय श्रमजीविया म जब सामान्य शिक्षा का *अभाव है तो औद्योगिक शिक्षा का अभाव हो, यह कोई आश्चय की वात नही।* यही कारण है कि हमारे श्रमजीवी लापरवाही के साथ यन्त्र औजारा का उपयोग करते हे तथा अपन काम का महत्व नही समझते।

(५) भारतीय श्रमिकों की पूर्ति उद्योगों को उनकी आवश्यकतानुसार नहीं मिलती—

भारतीय श्रमिकों में कुशल श्रमिकों की अपेक्षा अकुशल श्रमिकों का संख्या अधिक है। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारी अधिकांश जन संख्या कृषि उद्योग में लगी हुई है। सन् १९५१ की जन संख्या के अनुसार भारत की २५ करोड़ जन संख्या कृषि पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में निभर है तथा शेष जन संख्या संगठित उद्योग खान उद्योग यातायात व्यापार एवं वाणिज्य पर निभर है।

(६) रहन सहन का निम्न स्तर –

भारतीय श्रम जीवियों का रहन सहन का स्तर अत्यन्त गिरा हुआ है। इसका प्रधान कारण यह है कि उनको पारिश्रमिक बहुत कम मिलता है। कोई व्यक्ति जब तक उसके पास अपनी समस्त आवश्यकताओं की संतुष्टि के हेतु साधन न हो अपने रहन सहन का स्तर ऊंचा नहीं कर सकता अतः यह दोष श्रमिकों का नहीं वरन् उन परिस्थितियों एवं वातावरण का है जिनके अन्तर्गत वे पले हैं और अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

(७) श्रमिकों की अक्षमता—

भारतीय श्रमिकों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि अन्य देशों की तुलना में हमारे श्रमिकों की कार्य क्षमता बहुत कम है। श्री एलेक्जेंडर मैकरावर्ट के अनुसार भारतीय श्रमिक की अपेक्षा एक अंग्रेज श्रमिक ४ गुना काम करता है परन्तु भारतीय श्रमिक की अक्षमता का विचार करते हुए हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि श्रमिकों की कुशलता निम्न बातों पर निभर करती है—जलवायु, भृति पद्धति, काम करने की परिस्थिति, रहन सहन के स्तर तथा श्रम प्रबन्ध। इन घटकों के विवेचन से ही किसी देश के श्रमिकों की अक्षमता के विषय में समुचित निर्णय किया जा सकता है। काम करने की परिस्थिति, काम के घण्टे, यन्त्र सामग्री, औद्योगिक शिक्षा एवं श्रम प्रबन्ध आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो श्रमिकों के ऊपर निर्भर न रहते हुए उद्योगपतियों और निर्माताओं के ऊपर निभर रहती हैं तथा जिनकी समुचित व्यवस्था का पूर्ण जिम्मेदारी उनके ही ऊपर होता है इसलिए यह कहना यथार्थ है कि किसी भी देश का औद्योगिक क्षमता की जिम्मेदारी उद्योगपतियों पर निभर होती है। इस दृष्टि में यदि इस कसौटी पर भारतीय श्रमिकों की तुलना अन्य देशों के श्रमिकों के साथ कार्यक्षमता में की जाय तो यह स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिकों की काम करने की परिस्थिति तथा उनको दी जाने वाली सुविधायें अन्य देशों की तुलना में नहीं के बराबर हैं अतः श्रमिकों की अक्षमता उनका वैयक्तिक दोष न होते हुए उस परिस्थिति का दोष है जिसमें भारतीय श्रमिक रहता है एवं जिस परिस्थिति में उसे काम करना पड़ता है।

(८) भाग्यवादिता—

भारतवासी (विशेषत: यहाँ का श्रमिक वर्ग) बडे भाग्यवादी हैं। अपने जीवन के सुख-दुख को वे भाग्य की देन समझते हैं। "हुई है सोई जो राम रचि राखा" में उनका इतना विश्वास है कि वे अपनी उन्नति के लिए पुरुषार्थ करने का प्रयत्नशील भी नहीं होते। भाग्य में होगा तो मिल जायगा, ऐसा सोचकर वे हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते है।

भारतीय श्रमिकों की कुशलता

(Efficiency of Indian Industrial Labour)

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव मे अकुशल हैं ?—

भारतीय श्रमिकों की कुशलता उनकी लोकप्रिय विशेषता है। साधारणत: यही कहा जाता है कि भारतीय श्रमिक अदक्ष एवं अकुशल है। औद्योगिक कमीशन के सम्मुख सर अलेक्जेन्डर मैक राबर्ट (Sir Alaxander Mac Robert) ने अपनी साक्षी में यह कहा कि एक अंग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक से चौगुना कुशल होता है। सर क्लीमेंट सिम्पसन (Sir Clement Simpson) के अनुसार लङ्काशायर की सूती मिल का एक श्रमिक भारतीय सूती कपड़े की मिल में काम करने वाले २·६७ श्रमिकों की योग्यता के बराबर है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय की ओर से की गई जाँच इस धारणा को गलत सिद्ध कर देती है। इस जाँच मे यह प्रकट है कि योरोप की तुलना में हमारे श्रमिकों की अक्षमता निर्विवाद सत्य नहीं है। कुछ उद्योगों में तो वह अन्य देशों के श्रमिकों के बराबर कुशल है। अन्य उद्योगों में भी वह पूरी तरह अक्षम *नहीं कहा जा सकता। यदि योरोपीय श्रमिक भारतीय श्रमिकों की अपेक्षा अधिक* उत्पादन करते हैं तो वे अधिक शिक्षा प्राप्त भी होते हैं, उनको अधिक भृत्ति एवं अन्य सुविधायें भी मिलती हैं। दूसरे शब्दों में, भारतीय श्रमिक यदि अक्षम है तो अपने दोष के कारण नहीं, अपितु उन परिस्थितियों के कारण है जिनमें वह रह रहा है। अक्षमता के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :—

भारतीय श्रम की अक्षमता के कारण एवं उन्हें दूर करने के उपाय—

(१) प्रवासी प्रवृत्ति—इस प्रवृत्ति के कारण श्रमिक फसल के समय तथा *अन्य विशेष उत्सवों पर अपने गाँव आते-जाते रहते हैं, जिससे भारत में अभी तक* स्थायी श्रमिक वर्ग का उदय नहीं हो पाया है। इनकी इस प्रवृत्ति का यह परिणाम होता है कि वे प्राय: कारखानों से अनुपस्थित रहते हैं। इससे उत्पादन बडा अनिश्चित हो जाता है।

इस दोष को दूर करने एवं औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों को स्थायी रूप से

रहने का प्रोत्साहन देने के लिए शहरी जीवन का सुधार कर उसे अधिक आकर्षक बनाना चाहिए।

(२) **शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव**—सामान्य ज्ञान का स्तर हमारे श्रमिकों में बहुत नीचा है। माता पिता की अशिक्षा के कारण घर का वातावरण शिक्षाप्रद नहीं होता। इसके अतिरिक्त उपलब्ध शिक्षा प्रणाली बहुत संकुचित है। अभी प्रारम्भिक शिक्षा भी सब जगह निःशुल्क तथा अनिवार्य नहीं हुई है। शिक्षा न मिलने से कट्टर अन्धविश्वासी भाग्यवादी और साहसहीन हो गये हैं। इन सब बातों से श्रमिक की अकुशलता बढ़ती है। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त हमारे श्रम जीवियों के लिए शिल्पिक प्रशिक्षण का सुअवसर भी नहीं मिलता। अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों में वहां श्रमिकों को पर्याप्त रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है श्रमिक जटिल से जटिल मशीन का प्रयोग सरलता से कर सकते हैं किन्तु भारत में ऐसा नहीं है। हमारे श्रमिकों को मशीनों का उपयोग जानने तथा अन्य देशों में होने वाली श्रमिकों की गति विधियों को समझने में अधिक समय लगता है। उनकी इस अज्ञानता के कारण उत्पादन क्षमता गिर जाती है।

अन्य प्रगतिशील देशों की भांति भारत में भी प्राथमिक शिक्षा तो कम से कम अनिवार्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक शिक्षण संस्थायें खोलकर शिल्पिक प्रशिक्षण की सुविधायें सुगम एवं सुलभ करनी चाहिए। सामान्य शिक्षा से श्रमिकों का मानसिक विकास होगा और औद्योगिक शिक्षा से व्यावसायिक अज्ञानता दूर होकर कार्यक्षमता बढ़ेगी।

(३) **निर्धनता और निम्न जीवन स्तर**—भारतीय श्रमिक की दरिद्रता सर्व विदित है। दरिद्रता के कारण उसे भर पेट भोजन एवं पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध नहीं होते। ऐसी परिस्थितियों में दूध फल आदि निपुणतावर्द्धक वस्तुओं की वह कल्पना भी कैसे कर सकता है? परिणामस्वरूप कार्यक्षमता गिर जाती है।

अस्तु श्रमिकों की निर्धनता को दूर करके उनका जीवन स्तर ऊंचा करने के उपाय सोचना चाहिए। कुटीर उद्योगों की प्रगति से यह समस्या काफी सीमा तक हल की जा सकती है।

(४) **अल्प वेतन**—इसका भी भारतीय श्रमिकों की कुशलता पर बुरा प्रभाव हुआ है। दरिद्रता के कारण वे भली प्रकार अपना पेट भी नहीं भर सकते। परिस्थितिवश उनकी आय का काफी भाग ऋण चुकाने एवं नशा करने में निकल जाता है और जो शेष रहता है वह उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं होता। अपना स्वास्थ्य बनाना तो दूर रहा पेट भरने को पर्याप्त रोटी भी उन्हें नहीं मिल पाती। इस प्रकार कार्यक्षमता दिनों दिन कम होती जाती है।

इस दोष को दूर करने के लिये श्रमिकों को कम से कम इतनी मजदूरी अवश्य दी जाय जिससे कि वे अपना तथा अपने परिवार का उचित भरण पोषण कर सकें।

(५) शारीरिक दुबलता—निधनता एवं अल्प वेतन के कारण श्रमिकों का मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य खराब रहता है। अधिक समय तक वे निरंतर कठिन परिश्रम करने के लिए अपने को असमर्थ पाते हैं। एक बार रोगी होने पर वे अच्छी तरह अपना इलाज भी नहीं करा सकते। भारत के अनेक क्षेत्रों में मलेरिया आदि रोगों से अधिकांश श्रमिक पीड़ित रहते हैं। इससे उनकी कार्यक्षमता गिरती है और उत्पादन को भी क्षति पहुँचती है। सन् १९५१ में बम्बई के एक कारखाने में हिसाब लगा कर देखा गया था कि वहाँ २५.१% श्रमिकों को जुकाम तथा फेफड़े सम्बन्धी रोग, २६.०% श्रमिकों को दस्त, पेचिश व हैजा आदि, ५.३% को गठिया या वात सम्बन्धी रोग, ०.८% को मलेरिया, ७.८% को चोट (काम करते समय नहीं), ०.०% को छूत के तथा ३४.२% श्रमिकों को विविध प्रकार के रोग हुए। निम्नलिखित तालिका में हम कारखाने में इस प्रकार हुई समय की क्षति का अनुमान लगा सकते हैं। यही स्थिति प्रायः भारत के सभी कारखानों और उद्योगों में है* —

रोग	प्रत्येक रोग के कारण समय के विनाश का प्रतिशत	प्रत्येक रोग के कारण अनुपातिक दिनों की क्षति
(१) फेफड़ा सम्बन्धी रोग	४०.१	६.२
(२) पाचन सम्बन्धी रोग	२६.६	६.०
(३) मलेरिया	५.४	७.८
(४) मूत्र सम्बन्धी रोग	०.२	६.०
(५) छूत के रोग	१.१	११.७
(६) चोट (काम पर नहीं)	२.७	६.४
(७) विविध	२३.४	७.४

इसके अतिरिक्त गाँव के स्वतन्त्र और स्वच्छ वातावरण से आकर नगरों की गन्दी व संकीर्ण गलियों में रहने, नगरों की विचित्र परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की नैतिक बुराइयों का आखेट होने, मदिरा, जुआ और भ्रष्टाचार में फंस जाने तथा अन्य तत्सम्बन्धी विषमताओं के परिणामस्वरूप श्रमिकों की क्रियात्मक शक्तियों का पतन हो जाता है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के इस प्रकार नष्ट हो जाने से उनकी कार्यक्षमता पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है।

* देखिये इण्डियन लेबर ईयर बुक (१९५१-५२) पृष्ठ २५४।

इस दोष को दूर करने के लिए श्रमिक के लिए चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का प्रबन्ध करना चाहिए और मनोरञ्जन के स्वस्थ साधन उपलब्ध कर उनका मद्यपान एवं जुए का व्यसन छुड़ाना चाहिये।

(६) **जलवायु**—इसका भी कार्यक्षमता पर निषेधात्मक प्रभाव पड़ता है। परिश्रम के कार्य के लिए शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त होती है, लेकिन हमारे देश की जलवायु गर्म प्रदेश की है। गर्मी के मौसम में तिलमिलाती धूप में देर तक कड़ा परिश्रम करना सम्भव नहीं होता। बङ्गाल तथा तराई प्रदेशों की जलवायु तो बड़ी खराब है।

बिजली के पङ्खों एवं नमीकरण यन्त्रों (Humidfiers) आदि कृत्रिम साधनों की सहायता से यह कठिनाई भी कुछ सीमा तक दूर की जा सकती है।

(७) **स्वतन्त्रता और आशा का अभाव**—इसका भी श्रमिकों की कार्यक्षमता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। कड़े निरीक्षण और आशा के अभाव में श्रमिक की कार्यक्षमता में कमी होना स्वाभाविक है।

इस दोष के निवारण के लिये प्रेरणात्मक भृति पद्धति (Progressive Wage System) का अनुकरण करना चाहिये।

(८) **ऋणग्रस्तता**—अर्थ-शास्त्री डार्लिंग के अनुसार भारतीय श्रमिक ऋण में ही जन्मता है, ऋण में ही उसका पालन पोषण होता है और ऋण में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। ऋण प्रगति में बाधक होते हैं।

अस्तु, श्रमिकों को शीघ्र से शीघ्र ऋण मुक्त किया जाय और सहकारी आन्दोलन द्वारा उन्हें मितव्ययता का पाठ पढ़ाया जाय।

(६) **काम के दीर्घ घन्टे**—यद्यपि कारखाना अधिनियम द्वारा काम के घण्टों का अधिकतम निश्चय कर दिया गया है, किन्तु भारत की गर्म जलवायु को देखते हुए वे अब भी अधिक हैं। वर्तमान समय में सदा चलने वाले कारखानों में ४८ घण्टों का सप्ताह और मौसमी कारखानों में ५४ घण्टों का एक सप्ताह होता है, लेकिन यह अधिनियम अनेक छोटे कारखानों में लागू नहीं होता। असंगठित उद्योगों, कुटीर उद्योगों तथा कृषि में श्रमिकों के काम करने के घन्टे दीर्घ, अनियमित तथा मालिक की इच्छा पर निर्भर करते हैं। ऐसी परिस्थिति में भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता कम होना स्वाभाविक है।

अतः उचित सन्नियम द्वारा इस दोष का निवारण किया जाय।

(१०) **काम करने की दशाएँ**—भारतीय कारखानों की दशायें, जहाँ हमारे श्रमजीवी कार्य करते हैं, सन्तोषजनक नहीं हैं।

कार्य कुशलता को स्थिर रखने के लिये स्वच्छ जल, वायु, विश्राम आदि की पूर्ण व्यवस्था होना आवश्यक है।

(११) भरती की दोषपूर्ण पद्धति—इसके कारण भी श्रमिको की कार्यक्षमता गिरी हुई है। श्रमिको की भरती जाबर करते है जो प्रत्येक भरती होन वाले से दस्तूरी लेते है। श्रमिको की नियुक्ति, उन्नति एव एक विभाग मे दूसरे विभाग को स्थानान्तर सब कुछ इस जाबर पर ही निभर है अत श्रमजीवियो को नाना प्रकार से उनकी सेवा सुश्रूषा करते रहना पडता है। जाबरा की आय नई नियुक्तिया पर ही निभर होती है अत व तरह तरह के बहान बना कर पुराना को निकालते और नयो को भरती करते रहते है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि श्रमिक की कार्यक्षमता कम हो जाती है और उद्योग का उत्पादन व्यय बढ जाता है।

इस दोष को दूर करन के लिए जाबर पद्धति का अन्त करके श्रमिको की भर्ती वैज्ञानिक आधार पर करनी चाहिये।

(१२) दोषपूर्ण प्रबन्ध—बहुत सीमा तक यह भी श्रमिको की अक्षमता के लिये उत्तरदायी है। प्रबन्धको का दुर्व्यवहार काम का दोषपूर्ण विभाजन घिसी हुई यन्त्र सामग्री आदि एसे दोष है जिनसे काय म जी नही लगता।

अस्तु भारतीय श्रमिको की काय कुशलता बढान के लिए उत्तम मशीनो और कच्चे माल का प्रयोग आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि कुशल प्रबन्ध के निरीक्षण म उनसे काय लिया जाय।

भारतीय औद्योगिक श्रमिको की गृह-समस्या

भोजन और वस्त्र क उपरान्त मकान मनुष्य की तृतीय प्रमुख आवश्यकता है। यो तो हमारी य तीनो ही समस्याय गम्भीर है किन्तु मकानो की समस्या मुख्यत औद्योगिक नगरो म बडा विकराल रूप धारण करती जा रही है। नगरो की बढती हुई जन सख्या तथा गृह निर्माण की मन्द गति इसके लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है। प्रत्येक बड औद्योगिक नगर म एक इच भी भूमि कही खाली नही और आबादी बहुत घनी है। नगर निवासियो म कारखानो म काम करन वाला श्रमिक वग सबसे बुरे मकानो म रहता है। अनक नगरो म तो उनक निवास स्थानो को मकान की सज्ञा देना ही लज्जा की बात है। उन्हे मानव के योग्य नही कहा जा सकता। कानपुर में भारत के प्रधान मन्त्री पडित जवाहरलाल नहरू न २ अक्टूबर सन् १६५२ को श्रमिको के निवास स्थान का निरीक्षण करते हुए उन्हे नरक कुड कह डाला। पडित नहरू न कहा कि भारतीय श्रमिको की निवास समस्या बहुत ही जटिल है और उनके रहन के स्थान मली कुचैली गली (Slums) से अच्छे नही कहे जा सकते। अन्य औद्योगिक केन्द्रो म भी उनकी गदी बस्तिया होती है जहा सफाई का नाम नही कोठरी में सूर्य का प्रकाश नहा पहुँचता, फश म नमी रहती है रोशनदान का पता नहा तथा स्वच्छ

वायु आ ही नहा सकती। अधिकांश श्रमिक एमे गन्दे वातावरण में जीवन व्यतीत करत है। एस मकाना में रहन वाले श्रमिका स कायक्षमता की कैसे आशा की जा सकती है? एम स्थाना को बम्बई में (Chawl), मद्रास में चरा (Cherry), कलकत्ता म बस्ती (Basti) तथा कानपुर म अहाता (Ahatas) कहते हैं। अब हम श्रम जाच समिति की रिपोर्ट क आधार पर भारत क प्रमुख औद्योगिक नगरा की औद्योगिक बस्तियों का सक्षिप्त परिचय दगे।

बम्बई म श्रमिका की चालें (Chawls) अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर ह, जहाँ एक ही कमरे म ६ ७ श्रमजीवी रहत हैं। उन्हें न तो कौटुम्बिक वातावरण ही मिलता है और न स्वच्छ वायु तथा प्रकाश ही। श्री हस्ट (Hurst) न इस प्रकार मजदूरा के बसान को गोदाम म माल भरन के समान बताया है। बम्बई म ७०% स अधिक श्रमिक एक कमर वाले मकान म रहत है, जबकि लन्दन के केवल ६% श्रमिक १ कमरे वाल मकान म निवास करते है। बम्बई क श्रमिका म मकानो को पुन किराय पर देन की प्रथा है, जिसस घनी आबादी की समस्या और भी बढ जाती है। किराय में बचत करन क विचार स ४ या ६ श्रमिक एक कोठरा किराय पर ल लते है। उसी क अन्दर चारो कोना म खाना पकाया जाता है। श्री शिवाराव न लिखा है कि जब बम्बई म मजदूरा की बस्ती म एक लडा डाक्टर मराज देखन गई तो उसन देखा कि एक कमरे म ४ गृहस्थियाँ रहती थीं जिनक सदस्या की सख्या २४ थी। चारा कोना में चूल्हे बन हुए थ सारा कमरा धुयें म काला हो रहा था। बम्बई क औद्योगिक श्रम जीवियो क रहन की दशा के सम्बन्ध म श्रीयुत हस्ट का निम्न वर्णन बडा हृदय स्पर्शी है—"रहन की दशायें यहाँ सबसे खराब ह। एक सकरी गली म, जिसमें कि दो व्यक्ति एक साथ नहा जा सकते, (लेखक के) घुसन क पश्चात् इतना अन्धेरा था कि हाथ से टटोलन पर कमरे का दरवाजा मिला। उस कमर म सूय का लेशमात्र भी प्रकाश न था। एसी दशा दिन क १२ बजे थी। एक दियासलाई जलान क पश्चात् ज्ञात हुआ कि एस कमरे में भी अनेक श्रमिक रहत है। श्रम क शाही कमीशन न तो बम्बई की चालो क सम्बन्ध म यहा तक लिखा है कि इनका पूर्णतया तोडन क अतिरिक्त इनमे सुधार क लिए लेशमात्र भी गुजायश नही है।

अहमदाबाद क श्रम निवास स्थान भी अधिक सतोषजनक नही कहे जा सकत। यहा की नगरपालिका न हरिजना तथा अन्य श्रमिका क लिए कुछ मकाना का निर्माण किया है। इसक अतिरिक्त अहमदाबाद मिल्स हाउसिंग कम्पनी एव सूती वस्त्र मिल श्रम-सघ की ओर स भी अच्छा व्यवस्था की गइ है। श्रम सघ द्वारा निर्मित कालोनी में रहन वाले श्रमजीवियो स १०) मासिक किराया लिया जाता है और २० वर्ष क उप रान्त जिस मकान म व रहत ह वह उनका हो जाता है। प्रत्यक मकान म दो कमरे,

एक रसोईघर तथा एक बरामदा है । अहमदाबाद में श्रमिकों की गृहनिर्माण सहकारी समितियाँ भी हैं ।

कलकत्ते की दशा भी बम्बई से अच्छी नहीं है । यहाँ बम्बई की अपेक्षा कम दाम पर भूमि मिल जाती है । यहाँ मजदूरों के घर झोपडियों की कतारें हैं, जिन्हें 'बस्ती' कहा जाता है । ये झोपडे मिल मालिकों द्वारा नहीं बनाए गए हैं वरन् सरदार (Sirdar) एवं कुछ मकान मालिकों ने बनवाए हैं । कलकत्ता नगर निगम की रिपोर्ट में यह स्पष्ट है कि इन झोपडियों का निर्माण बिना किसी योजना के हुआ है । प्रायः सभी निवास स्थान कच्चे हैं और श्री केसे (Casey) के शब्दों में "कोई भी मानव वहाँ रहना पसन्द न करेगा ।" चारों ओर गन्दगी का साम्राज्य है । मलेरिया और तपेदिक का कोप जारी रहता है । घरों में न नल हैं न सण्डास । पूरे मुहल्ले के लिए एक या दो नल तथा एक सण्डास होगा, जिस पर बिचारे श्रमजीवी लाइन लगाकर खडे रहते हैं । छोटी छोटी बातों पर जैसे—पानी के लिए, नित्य झगडे फसाद होते रहते हैं । सडकें और गलियाँ खराब, गन्दी, पतली तथा प्रकाशहीन हैं, जिन पर रात्रि में चलना खतरनाक है । गत कुछ वर्षों में सवश्री बिडला जी के सद्प्रयत्नों के परिणामस्वरूप जूट मिल कर्मचारियों के लिये अच्छे घरों की व्यवस्था की गई है, जिनमें लगभग ५०% जूट मिल श्रमिक रहते हैं किन्तु शेष बस्तियों में ही निवास करते हैं, जिनकी दशा अत्यन्त दयनीय है ।

कानपुर उत्तरी भारत का 'मैनचेस्टर' कहलाता है अतएव यहाँ श्रमिकों के निवास के लिए समुचित व्यवस्था होना नितान्त आवश्यक है । यद्यपि कानपुर में नगर पालिका, इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट एवं कुछ सेवायोजकों ने श्रमिकों के निवास के लिए आदर्श व्यवस्था की है, किन्तु फिर भी आज यहाँ 'अहाते' तथा 'बस्तियाँ' दृष्टिगोचर होती हैं, जिनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है । उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से गृह समस्या के निवारणार्थ यहाँ कुछ भी नहीं किया है । हाँ, सन् १९४३-४४ में राज्य सरकार ने २,४०० परिवारों के लिए क्वाटर बनवाने के हेतु इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट को ३०३ लाख रुपये का ऋण दिया । तब से प्रति वर्ष यह संस्था कुछ न कुछ मकान बनवाती रही है, जिनका किराया ४) प्रति माह है । सन् १९३८ की कानपुर श्रम जाँच समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि यहाँ सेवायोजकों की ओर से केवल ३,००० मकान बनाए गए, जिनमें १०,००० श्रमिक रहते हैं । सन् १९३८ से सन् १९४३ तक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है । सन् १९४३ में यहाँ श्रमिकों की संख्या १,०३,००० थी । इसमें से केवल १०% श्रमजीवियों के रहने के लिये ही सेवायोजकों ने व्यवस्था की । यहाँ के सेवायोजकों में से ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने मैक राबर्टगन्ज तथा अलेनगन्ज में १,६६० श्रम क्वाटर्स बनवाए । इन क्वाटरों में जल, प्रकाश, स्वच्छ वायु आदि की तो सुव्यवस्था है ही, इसके अतिरिक्त प्रत्येक

कॉलोनी के लिये एक शिक्षण सस्था एव डिस्पेन्सरी भी है। सर्व श्री वॅग सूदरलॅण्ड एण्ड कम्पनी लि० के प्रबन्ध के अन्तर्गत एलगिन मिल्स ने भी अपने श्रमजीवियो के लिये सुन्दर मकानो का निर्माण करवाया है। एलगिन मिल्स के क्वाटरो म अन्य सुविधाओ के साथ साथ बिजली की रोशनी का भी प्रबन्ध है। इसी प्रकार सर्वश्री जुग्गीमल-कमलापति की ओर से भी उनके श्रमिको के निवास के लिए एक पृथक कॉलोनी का निर्माण किया गया है, जिसम प्राय सभी सुविधाये उपलब्ध है। कानपुर की नगर पालिका ने भी निम्न कोटि के श्रमिको के लिये (जैसे भगी एव पाक तथा सावजनिक उद्यानो मे काम करने वाले कर्मचारी) निवास की अच्छी व्यवस्था की है।

इतना होते हुए भी कानपुर की श्रम बस्तियो एव अहातो मे सहस्रो श्रमिक रहते ह। श्रम के शाही कमीशन न अहातो का वर्णन इस प्रकार किया है—"प्राय: प्रत्येक मकान एक एक कमरे का है, जिनकी लम्बाई-चौडाई ८ फीट × १० फीट है। किसी भी कमरे के आगे बरामदा नही है और प्रत्येक कमरे में ३-४ परिवार रहते है। फर्श कच्चा है तथा नमी रहती है। कही भी स्वच्छ वायु, प्रकाश आदि का प्रबन्ध नही है।" पण्डित नेहरू ने तो इन अहातो को 'नरक कुण्ड' की सज्ञा दी है।

टाटानगर यहाँ सवश्री टाटा की ओर से लोहे एव स्पात उद्योगो में काम करने वाले श्रम जीवियो के लिये लगभग ८,५०० मकान बनवाये गये है। प्रत्येक मकान में दो कमरे, एक रसोईघर तथा एक बरामदा है। इसके अतिरिक्त स्नानागार एव फ्लश-सन्डास भी है। सभी मकान पक्के हैं तथा कुछ में बिजली के पखे भी हैं। यह सब व्यवस्था दक्ष कारीगरो के लिये है, अकुशल श्रमजीवियो के निवास स्थान बडे गन्दे एव असन्तोषजनक हैं।

मद्रास में भी श्रमिको के निवास स्थान बडे असन्तोषजनक है। कुछ मिल मालिको ने श्रमिको के लिये क्वार्टर बनवाये हैं, परन्तु उनमें अनेक श्रमिक रहना पसन्द नही करते, क्योकि उनके विरुद्ध खुफिया जाँच होती रहती है और यदि वे कभी हडताल में भाग लेंगे तो वे क्वाटर से निकाल दिये जायेंगे। ऐसे वातावरण में वे रहना पसन्द नही करते।

शोलापुर में श्रमिको की गृह व्यवस्था सन्तोषजनक है। इसी प्रकार मदुरा में भी श्रमिको क लिये सुन्दर मकान बने हैं, जिनमे प्राय. सभी वर्तमान सुविधायें उपलब्ध है। नागपुर की एम्प्रेस मिल तथा बगलौर की सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र मिल के श्रमजीवियो के लिए बडी सुन्दर गृह व्यवस्था है। रानीगज तथा भरिया की कोयले की खानो में काम करन वाले श्रमिको के लिए जो मकान बनवाये गये है वे Mines Board of Health क आदेशानुसार बनवाये गये है, अत. सन्तोपजनक कहे जा सकते है। आसाम क चाय क बगीचो म काम करने वाले श्रमिको की गृह दशा अत्यन्त शोचनीय है। वहा कही भी स्वच्छता नहीं तथा मलेरिया का बडा बोलबाला है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किंचित क्षेत्रों को छोड़कर शेष सभी नगरों में औद्योगिक श्रमिकों की गृह समस्या अत्यन्त जटिल है। श्रमिकों के निवास स्थानों को देखकर कभी कभी मसानी (Masani) के शब्द स्मरण हो आते हैं—"विश्व की रचना ईश्वर ने की है, नगरों की मानव ने और श्रम बस्तियों की शैतान ने।"

बुरी गृह व्यवस्था के दुष्परिणाम—

अच्छे घरों का अर्थ है गृह जीवन की सम्भावना, सुख और स्वास्थ्य तथा बुरे घरों का अर्थ है, गन्दगी, शराबखोरी, बीमारी, आचारहीनता, व्यभिचार और अपराध। इनके लिए अस्पताल, जेल और पागलखानों की आवश्यकता होती है, जहां समाज के भ्रष्ट एवं पतित लोगों को छिपाया जाता है, जो स्वयं समाज की लापरवाही के ही परिणाम हैं। अनुपयुक्त एवं सुविधाहीन घरों के कारण श्रमिकों का घरेलू जीवन नीरस एवं आनन्दरहित हो जाता है। गन्दगी के कारण मलेरिया और तपेदिक जैसी भयानक बीमारियों का जोर रहता है, श्रमिकों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, उनके मस्तिष्क संकुचित हो जाते हैं तथा मानसिक विकास का कोई अवसर नहीं रहता। अपूर्ण और गन्दे मकान औद्योगिक अशान्ति के भी कारण हैं। एक सबसे बड़ी बुराई अधिक संख्या में शिशु मृत्यु है, जो बम्बई की गन्दी बस्तियों में पाई जाती है। मृत्यु संख्या निवास के कमरों के विपरीत अनुपात में है। उदाहरण के लिए सन् १९३६ में एक कमरे वाले निवासस्थानों में मृत्यु संख्या ७८·३% थी। सबसे गन्दे स्थानों में मृत्यु दर २९८ प्रति हजार थी, जबकि साधारण दर २०० से २५० प्रति हजार ही थी। अन्त में चॉल के जीवन की भयङ्कर दशायें तथा गोपनीयता के अभाव के कारण लोग अपने कुटुम्ब को नहीं ला पाते, जिससे श्रम की स्थिरता तथा कार्यक्षमता पर कुप्रभाव पड़ता है। एकाकी जीवन व्यतीत होने के कारण उनमें वेश्यागमन जैसी बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं। जो श्रमिक परिवार सहित रहते हैं वे भी एक कमरे ही के कारण गोपनीयता नहीं रख सकते। एक ही कमरे में पुरुष-स्त्री के साथ रहने के कारण संयम से जीवन व्यतीत नहीं हो पाता। ऐसी परिस्थितियों में महिला श्रमिकों के नैतिक पतन की बड़ी आशंका रहती है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में, "भारतीय औद्योगिक केन्द्रों की श्रम बस्तियों की दशा इतनी भयंकर है कि वहाँ मानवता का विध्वंस होता है, महिलाओं के सतीत्व का नाश होता है एवं देश के भावी आधार-स्तम्भ—शिशुओं का गला घुट जाता है।" अन. श्रम जाँच समिति ने सिफारिश की है कि शिक्षा और औषधि सम्बन्धी सहायता की भांति सरकार को औद्योगिक आवास का भी उत्तरदायित्व संभालना चाहिये।

गृह समस्या को हल करने के लिए किए गए प्रयत्न—

यद्यपि भारत में 'घर' सम्बन्धी सुविधायें न्यून हैं और इस सम्बन्ध में दशा बड़ी शोचनीय है, किन्तु ऐसी भी संस्थायें तथा सेवायोजक हैं, जिन्होंने बड़ी सुन्दर व्य-

बम्बई का है। बम्बई में गृह समस्या के निवारणार्थ सुधार प्रन्यास (Improvement Trust) की स्थापना हुई। इसका काम नई गलियों का निर्माण घने क्षेत्रों का विस्तार समुद्र में भूमि को निकालना जिससे प्रसार कार्य में सुविधा हो तथा गरीबों के लिये स्वच्छ मकानों का निर्माण करना था किन्तु ट्रस्ट की सीमित शक्ति नगर निगम से सहयोग की कमी तथा भूमिपतियों के विरोध के कारण इसे कुछ विशेष सफलता नहीं मिली। फिर भी ट्रस्ट ने कुछ सीमा तक प्रशंसनीय कार्य किया। सन् १९२० तक नगरपालिका ने भी अपने कर्मचारियों के लिए ४,६०० मकान बनवाये तथा २,२०० के लिए स्वीकृति दी। पोर्ट ट्रस्ट ने ५,००० व्यक्तियों के लिए मकान बनवाये। इधर नगर की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही थी किन्तु सेवायोजकों ने अपने श्रमजीवियों के रहने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। सन् १९१४-१८ के युद्ध के उपरान्त बम्बई सरकार द्वारा इस समस्या को सुलझाने के लिए सुविस्तृत योजना तैयार की गई। इसके लिए ६ करोड़ रुपये के विकास ऋण तथा बम्बई आने वाली सभी कपास पर १) प्रति गांठ की दर से नगर कर लगाकर आवश्यक धन एकत्रित किया गया किन्तु इस प्रकार निर्मित चाल (मुख्यतः वोरली की चाल) दस वर्ष तक खाली पड़ा रहा। इनमें रहने के लिये श्रमिकों के आकर्षित न होने के निम्न कारण थे —वहां तक पहुँचने की कठिनाई बाजार सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव उनका सीमेन्ट से बना होना—जिसके कारण वे गर्मी में अधिक गर्म तथा जाड़े में अत्यन्त सर्द रहता है किराये की ऊंची दर तथा प्रकाश सम्बन्धी व्यवस्था और पुलिस सुरक्षा का अभाव। इन दोषों को दूर करने के लिए कुछ प्रयास किये गये हैं। नगर निगम तथा पोर्ट ट्रस्ट भी अपनी विकास योजनाएं कार्यान्वित करने में प्रयत्नशील हैं। मई सन् १९४७ में बम्बई सरकार ने वोरली पर भवन निर्माण योजना प्रारम्भ की जिसमें काम करने वाले एक व्यक्ति तथा परिवार दोनों के रहने के लिए मकान बनवाये गये हैं। अब बम्बई में एक कमरे वाले मकान न रहेंगे।

जहाँ तक मिल मालिकों का प्रश्न है, कुछ मिलों ने जैसे—डकन शासन मिल ने अपने श्रमजीवियों के लिये मकान देने की व्यवस्था की है। उचित दर पर कारखाना के समीप स्थान मिलने की कठिनाई इस बात की सुरक्षा का अभाव कि मकान मिलने पर श्रमिक मकान देने वाली मिल में ही काम करेंगे तथा स्वयं कर्मचारियों का उन मकानों में रहने की अनिच्छा—इन सब कारणों से काम के प्रसार में काफी शिथिलता आ गई है। कर्मचारी डरते हैं कि उनकी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ेगी तथा हड़ताल के समय वे निकाल दिये जायेंगे। वे स्वच्छता और अनुशासन के नियमों को भी पसन्द नहीं करते क्योंकि वे उनका महत्व ही नहीं समझते। कानपुर नागपुर ग्वालियर अहमदाबाद मद्रास आदि नगरों में मिल मालिकों ने श्रमजीवियों के हितों पर अधिक ध्यान दिया है। इस सम्बन्ध में एम्प्रेस मिल्स नागपुर जावाजीराव काटन मिल्स

१,०३ ६६० मकानों के लिए स्वीकृति दी गई। अगस्त सन् १६५८ के अन्त तक लगभग ७७,००० मकान बनाए जा चुके थे

सन् १६५४ मे कम आय वालों के लिए सरकारी आर्थिक व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था के अन्तर्गत लोगो को एक लम्बी अवधि के लिए बहुत कम व्याज पर ऋण देन का प्रब ध किया गया । प्रथम योजनावधि में सावजनिक और निजी क्षेत्र मे गृह निर्माण की दिशा में जो प्रगति हुई, उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

विवरण	मकानों की सख्या
(I) सार्वजनिक क्षेत्र मे	
(i) औद्योगिक आवास ·······	७७,०००
(ii) कम आय वालो के लिए आवास	४०,०००
(iii) पुनर्वास आवास···	३,२३,०००
(iv) केन्द्रीय व राज्य सरकारो द्वारा आवास	३,००,०००
(II) निजी क्षेत्रमे···	७,४०,०००
	७,५०,०००
कुल योग	१४,६०,०००

श्रमिकों के हेतु निर्मित प्रत्येक मकान में १२′ × १०′ का एक रहने का कमरा एक बरामदा, ७२ वर्ग फीट का एक रसोईघर, १६ वर्ग फीट का एक स्नानगृह तथा १२ वर्ग फीट का एक फ्लश शौचालय है। गृहस्थी का सामान रखने के लिए अलमारियों व टाँडों की भी अच्छी व्यवस्था है। दो कमरे वाले मकानो मे पहला कमरा १२० वर्ग फीट का, दूसरा कमरा ६६ वर्ग फीट का, रसोईघर तथा बरामदा १०० वर्ग फीट का, स्नानगृह १६ वर्ग फीट का, शौचालय १२ वर्ग फीट का तथा १० वर्ग फीट का एक भन्डारगृह है।

द्वितीय पञ्च-वर्षीय योजना में गृह समस्या का एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है और उसमें १२० करोड रुपये की स्थाई व्यवस्था की गई है। ऐसा अनुमान है कि सन् १६६१ तक नागरिक क्षेत्रो मे लगभग ५३ लाख मकानो की कमी होगी। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग ५४० लाख मकानों की मरम्मत व पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। दूसरी योजना मे १२ लाख मकान सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा और १० लाख मकान प्राइवेट व्यक्तियो द्वारा बनाये जाने की आशा है। इसके अतिरिक्त कम आय वाले और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए आवास, बागान और खानो तथा दरिद्र बस्तियो

को हटाने और भागियों के लिये आवास पर भी विचार करके निश्चित कायक्रम बनाये गये है।

बागान मजदूर आवास योजना—सन् १९५१ के बागान मजदूर अधिनियम के अनुसार प्रत्येक बागान मालिक के लिए यह अनिवाय कर दिया गया है कि वह अपने सभी मजदूरों के लिये आवास की व्यवस्था करे। द्वितीय योजना म ११ ००० मकानो के निर्माण के लिये २ करोड रुपय की व्यवस्था का गई है। सन् १९५६ ५७ म बागान मालिको को देन क लिये केरल सरकार न १ ५० लाख रुपये लिये और इसी काय के लिये मद्रास सरकार भी ८३ ५०० रुपय ले चुकी है।

श्रम बस्तियों मे मकानो के निर्माणार्थ योजना टोली सन् १९५८ के सुझाव—

गन्दी बस्तियो म सुधार कर मकान बनान क विषय म राष्ट्रीय विकास परिषद् की योजना समिति न जो योजना टाली बनाई था उसके सुझाव निम्न है—

(१) गन्दी बस्तियो की सफाई के लिये सबसे अच्छा तरीका यही है कि इस काम के लिए कानून द्वारा निगम मडल बनाये जाय जो स्वायत्त हो और जिनके ऊपर कायक्रमो को चलान का उत्तरदायित्व हो। वे अपन क्षेत्रो म योजनाओ के लिए नीति निर्धारित कर।

(२) आयोजन मे मकान बनान के लिय जो राशि रखी गई है वह केन्द्रीय मकान निगम का दे दी जाय जिससे वह उस राज्यो के मकान निगमो को बाट सक। केन्द्रीय निगम, राष्ट्रीय भवन निमाण सगठन और केन्द्रीय भवन निर्माण अनुसधान शाला के साथ भी निकट सम्पक रख।

(३) गन्दी बस्तियो की बाढ का रोकन के लिय गाव से नगरो की ओर जान की प्रवृत्ति को रोका जाय तथा केन्द्रीय सरकार नगर म नये उद्योग खोलन या किसी उद्योग को बढान की अनुमति तभी दे जब स्थानीय सस्थायें भी इसे स्वीकार कर ल।

(४) जहा आबादी बहुत घनी है वहाँ अधिक रोजगार न दिये जाय। प्रत्येक नगर म गन्दी बस्तियो की सफाई क लिए वृहत योजना बनाई जाय।

(५) मकानो के लिए न्यूनतम स्तर स्थापित किया जाय और गन्दी बस्तियो म सभी मकानो की जाच की जाय।

(६) मकानो के निर्माण का व्यय कम होना चाहिए।

यद्यपि गृह समस्या पर अब उचित ध्यान दिया जा रहा है तथापि जो कुछ हो रहा है उससे समस्या कम भले हा हो जाय किन्तु पूर्णत नही सुलझ सकती। ग्रामीण आवास और मध्यम आय वाले लोगो के लिए आवास के हेतु बहुत कम अथ व्यवस्था की गई है। औद्योगिक गृहो के किराये भी इतन अधिक है कि साधारण श्रमिक उनको वहन नही कर सकता अत कायक्रम में उपयुक्त सुधार करन आवश्यक है।

STANDARD QUSETIONS

1. Briefly trace the origin of labour problens in India.
2. Summarise carefully the principal characteristics of Indian Industrial labour.
3. Write a full note on the Migratory character of Indian Industrial labour
4. Indian Industrial labour is proverbially inefficient Comment and suggest measures to improve the efficiency of Indian labourers
5. Write an eassy on Industrial Housing in India.
6. Discuss the housing problem of industrial workers in India with special reference to the industrial towns of the country What are the consequences of bad housing ?

अध्याय २३

हमारी कुछ प्रमुख श्रम-समस्यायें II

(Labour Problems II)

श्रम-कल्याण-कार्य

(Labour Welfare)

श्रम कल्याण कार्य की परिभाषा एव क्षेत्र—

श्रम कल्याण काय का अथ बडा लचीला है। देश और समय की परिस्थितिया तथा आवश्यकताओ के अनुसार ही इसके अथ तथा विस्तार म परिवतन किया जा सकता है। प्रारम्भ म कल्याण काय से आशय सवायोजका द्वारा स्वत दी हुई ऐसी सुविधाओ से था, जिससे कि श्रमजीविया की सामाजिक एव मानसिक उन्नति हो। ये सुविधायें श्रमिका की मजदूरी के अतिरिक्त उनके आराम के लिये होती ह। वतमान समय मे, कल्याण कार्य की परिभाषा काफी विस्तृत है। आज इससे हमारा आशय यह है कि कारखानो के भीतर और बाहर दोनो ही दशाओ मे श्रमिको के आराम और सुविधा का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। श्रमिक-कल्याण काय के क्षेत्र की व्यवस्था करते हुए श्रम जाँच समिति न अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि श्रम कल्याण कार्यो के अन्तगत श्रमिको के बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक एव आर्थिक विकास के कार्यो का समावेश होना चाहिए। ये काय चाहे नियोक्ता, सरकार या अन्य सस्थाओ द्वारा किये जायें तथा साधारण अनुबन्धात्मक सम्बन्ध अथवा विधान के अन्तगत श्रमिकों को जो मिलना चाहिए उसके अलावा किये गये हो। इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तगत हम आवास अवस्था, चिकित्सा एव शिक्षा सुविधायें, अच्छा भोजन (केन्टीन के आयोजन सहित), आराम एव मनोरजन की सुविधायें, सहकारी समितियाँ, धाय घर एव शिशु गृह, शौचालय की व्यवस्था, सवेतन छुट्टियाँ, सामाजिक बीमा, प्रावीडेण्ट फण्ड, सेवा निवृत्ति वेतन आदि सुविधाओ का समावेश कर सकते है।

कल्याण कार्यों का प्रधान उद्देश्य श्रमिक को वेतन व काम के घण्टो की सुविधाओ के अतिरिक्त उसे अन्य सास्कृतिक व सामाजिक लाभ पहुँचाना होता है। वास्तव में एक सन्तुष्ट, जागरूक, कर्त्तव्यपरायण व आत्म गौरवपूर्ण श्रमिक ही राष्ट्र की आर्थिक

प्रगति मे सहायता कर सकता है। रायल श्रम-कमीशन ने श्रमिकों के लिये किये गये कल्याण कार्यों को 'विवेकपूर्ण लागत' कहा है, जिसका प्रतिफल श्रमिकों की बढ़ी हुई कार्यक्षमता के रूप में मिलता है। श्रम कल्याण कार्यों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है —(१) वैधानिक (२) स्वेच्छापूर्ण एवं (३) पारस्परिक। वैधानिक कल्याण कार्यों से तात्पर्य उन सभी कामों से है जो श्रमिकों के हित के लिये सरकार की ओर से विभिन्न कानूनों के रूप में किये जाते हैं। द्वितीय श्रेणी के कार्यों में उद्योगपतियों द्वारा किये हुए प्रयत्न तथा तीसरी श्रेणी में श्रमिक संघों द्वारा किये हुए कार्य सम्मिलित किये जा सकते हैं।

भारत मे श्रम कल्याण-कार्य की आवश्यकता—

भारतवर्ष में श्रमिकों के हेतु कल्याण कार्य की बहुत आवश्यकता है। यहां का श्रमिक अकुशल है और अन्य देशों की तुलना में उसकी कार्यक्षमता न्यून है। श्रमिकों को सन्तुष्ट और सुखी करने के लिए उनकी परिस्थिति में सुधार करना चाहिए। हमारी दृष्टि से श्रमिकों की केवल नकद मजदूरी बढ़ाने ही से कोई विशेष लाभ न होगा, क्योंकि इससे उनकी कार्य-निपुणता पर कोई गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ता। सम्भव है कि नकद राशि को वे जुए और नशे में उड़ा दें। इसके विपरीत यदि कल्याण कार्य के द्वारा उनको लाभ पहुँचाया जायगा तो हमें विश्वास है कि उनकी कार्यक्षमता अवश्य बढ़ेगी। दूसरे, जितनी अधिक श्रम-कल्याण की सुविधायें श्रमिकों को मिलेंगी उतना ही आकर्षण कारखानों के प्रति अधिक होकर कारखाना जीवन की नीरसता कम होगी, अर्थात् श्रमिकों का नैतिक स्तर भी ऊंचा होगा। तीसरे, श्रमिकों में नागरिक उत्तर-दायित्व की भावना जागृत होकर वे देश के आदर्श नागरिक बन सकते हैं। इन लाभों से ही प्रेरित होकर टैक्सटाइल लेबर इन्क्वायरी कमेटी ने कहा था—"कार्यक्षमता का उन्नत स्तर केवल वहीं हो सकता है, जहाँ श्रमिक शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि से सन्तुष्ट हों। इसका तात्पर्य यह है कि केवल वहीं श्रमिक कुशल हो सकते हैं जिनके लिये शिक्षा, आवास, भोजन तथा वस्त्रादि का उचित प्रबन्ध हो।" इसी दृष्टि से हमारे देश में बम्बई विश्वविद्यालय ने श्रम समस्याओं एवं कल्याण कार्य के अध्ययन तथा शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया। श्री टाटा ने भी बॉम्बे स्कूल आफ इकॉनोमिक्स एवं सोशल साइन्सेज की स्थापना इसी उद्देश्य से ही की है।

भारत मे श्रम-कल्याण कार्यों का विकास—

कल्याण कार्य की भावना वास्तव में एक नवीन स्फूर्ति है, जिसने प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से अधिक जोर पकड़ा। प्रथम महायुद्ध युग में जब निर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ी, आवश्यक वस्तुओं के दाम चढ़ गये। नगरों में गृह समस्या जटिल हो गई, श्रमिकों की कार्य क्षमता में कमी आ गई तो ऐसी परिस्थितियों में उद्योगपतियों का

ध्यान श्रम-कल्याण की ओर आकर्षित हुआ। सन् १९२२ में बम्बई में एक अखिल भारतीय श्रम-कल्याण सम्मेलन आयोजित किया गया था, किन्तु प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त इसने कोई भी रचनात्मक कार्य नहीं किया। सचमुच में द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त ही सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सर्व प्रथम उन कारखानों में श्रम-कल्याण कार्य आरम्भ किये गये जिनमें युद्ध सम्बन्धी सामग्री का निर्माण किया जाता था। सन् १९४२ में, केन्द्रीय सरकार ने एक श्रम-कल्याण सलाहकार (Labour Welfare Adviser) नियुक्त किया और उसकी सहायता के लिये कुछ अन्य अधिकारियों की नियुक्ति भी की गई। सन् १९४४ में कोयले की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के कल्याणार्थ सनियम बनाये गये। इस कार्य के लिये एक कल्याण कोष (Labour Welfare Fund) भी स्थापित किया गया। इन श्रमिकों के लिये टी० बी० अस्पताल में ६ स्थान सुरक्षित कर दिये गये। सन् १९४३ में एक अन्य अधिनियम अभ्रक की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये पास किया गया। सन् १९४७ में उनके ही लाभार्थ एक कल्याण कोष स्थापित किया गया। अन्य अधिनियमों द्वारा सरकार ने काम के घण्टे कम कराये एवं शिशुगृह, मकान, जल इत्यादि का प्रबन्ध कराया। उन कारखानों में जहाँ ५०० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं, श्रम-कल्याण अधिकारी (Labour Welfare Officer) की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई है।

सन् १९४८-४९ में सरकार ने एक श्रम-कल्याण कोष स्थापित किया, जिसमें उसकी ओर से १ लाख रुपये का अनुदान दिया गया। इस कोष से उन संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी, जो श्रम-कल्याण कार्य करती थी।

कारखाना अधिनियम सन् १९४८ के अनुसार ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहाँ २५० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं, कैंटीन का होना अनिवार्य है।

सन् १९५२-५३ में मध्यप्रदेश के चांदा नगर में १० स्त्रियों के लिए एक प्रसूतालय बनाया गया। कोयले की खानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए ७ बहु-उद्देशीय कल्याण केन्द्र और विंध्यप्रदेश में ३ बहु उद्देशीय कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गई। सन् १९५२-५३ में ही प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना चलाई गई, जो पहले बिजली, लोहा व स्पात, इंजीनियरिंग, कागज, कपड़ा, सीमेंट तथा सिगरेट उद्योगों पर लागू की गई। ३१ जुलाई सन् १९५६ को यह योजना १३ अन्य उद्योगों पर लागू की गई और सितम्बर सन् १९५६ को ७ अतिरिक्त उद्योगों पर लागू की गई, जिनमें दियासलाई, चीनी, चाय, प्रेस, सीसा, भारी रसायन तथा तेल सम्मिलित हैं। ३१ दिसम्बर सन् १९५६ को समाचार पत्रों पर तथा १३ जनवरी सन् १९५७ से खनिज तेलों पर भी यह योजना लागू कर दी गई है। अब यह योजना उन सभी उद्योगों पर लागू होती है जिनमें ५० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं और जिन्हें स्थापित हुए ३ वर्ष हो चुके हैं।

सन् १६५३ में केन्द्रीय सरकार ने एक केन्द्रीय कल्याण मण्डल (Central Welfare Board) स्थापित किया, जो सारे देश में कल्याण कार्यों का समन्वय करता है। सन् १६५३ ५४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने श्रम-अधिकारियों के प्रशिक्षण के हेतु एक नया विभाग स्थापित किया।

भारत मे आयोजित श्रम-कल्याण कार्य—

भारतवर्ष में अभी तक जितना भी श्रम कल्याण कार्य किया गया है उसका श्रेय मुख्यत तीन सस्थाओं को है—(१) सरकार, (२) उद्योगपति और (३) श्रमिक सघ। अब हम इन सस्थाओं द्वारा किये गये काय का विशद विवेचन करेंगे।

केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित कल्याण कार्य—

युद्धोपरान्त (सन् १६३६ ४५) केन्द्रीय सरकार ने श्रमिकों की ओर ध्यान दिया। उसके पूर्व सन् १६२२ में बम्बई में एक अखिल भारतीय श्रम हितकारी सम्मेलन के बुलाने के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण प्रयत्न उसने नहीं किया था, लेकिन अब उसने कुछ ठोस कदम उठाये हे। सन् १६४२ में एक श्रम हितकारी सलाहकार और उसकी सहायता के अन्य श्रम हितकारी नियुक्त किए। सन् १६४४ म कोयला खानों के श्रमिकों के लिए एक हितकारी कोष खोला, जिसके द्वारा श्रमिकों के मनोरजन, चिकित्सा और शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। सन् १६४६ में अभ्रक खान श्रमिक हितकारी कोष अधिनियम पास कर दिया गया। साथ ही, सरकार ने अन्य कानूनों का निर्माण किया जिनके आधार पर कारखानों के श्रमिकों के लिए मकानों की व्यवस्था, कान ने धन्धे, रोशनदान, मशीनों को ढँक कर रखना, चिकित्सा, उपहार गृह और शिशु-गृहों की व्यवस्था की गई। देखभाल के लिए निरीक्षक रखे गये। ५०० या इससे अधिक श्रमिक वाले कारखानों मे श्रमिक हितकारी अफसर की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई। सरकार अपने कारखानों में श्रम हितकारी कोष स्थापित करने के साथ साथ व्यक्तिगत औद्योगिक कारखानों म कोष स्थापित कराने के प्रयत्न कर रही है। यह कोष श्रमिकों के लिए हितकारी सेवाए जुटाने में व्यय किया जाता है। सन् १६५४ में स्थायी श्रम समिति ने भी श्रम हितकारी कोष की स्थापना पर बल दिया। यह कोष केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित करना चाहिए। इसके अन्तगत कारखाने, ट्रामवे तथा मोटर बस सेवायें, आन्तरिक स्टीम जलयान, कोयला व अभ्रक की खानों के अतिरिक्त सब खानें, तेल कूप, उद्यान, जन काय, सिंचाई तथा विद्युत सम्मिलित किये गय हे। वाचनालय, रेलवे कमचारियों तथा बन्दरगाहों पर काम करने वाले श्रमिकों के लिए भी विभिन्न प्रकार की हितकारी सुविधायें कर दी गई हैं।

योजना कमीशन ने भी श्रम कल्याण कार्यों के महत्त्व को भलीभाँति समझा है, अत उन्होंने पच वर्षीय योजना म इन कार्यों के लिए ७ करोड़ रुपया व्यय करने

का निश्चय किया था। द्वितीय आयोजन में केवल श्रमिकों के कल्याणार्थ २६ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। प्रथम पच-वर्षीय योजनाकाल में देश में १३ लाख घर बनवाये गये। युद्धोत्तर काल में सरकार ने श्रमिकों के लिए सहायता प्राप्त औद्योगिक गृह निर्माण योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारों, सहकारी गृह निर्माण समितियों, उद्योगपतियों तथा गृह निर्माण बोर्डों को आर्थिक सहायता देकर गृह बनवाये। प्रथम आयोजन काल में कुल ३८५ करोड रुपया गृह निर्माण पर व्यय किया गया और द्वितीय आयोजन में १२० करोड की व्यवस्था की गई है। उद्यानों तथा अभ्रक व कोयले की खानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिये घर बनवाये जा रहे हैं। ये घर श्रम मन्त्रालय के अन्तर्गत बन रहे हैं। इसी प्रकार अन्य केन्द्रीय तथा राज्य मन्त्रालय अपने अपने विभागों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए घर बनवाने की योजनायें चला रहे हैं। द्वितीय आयोजन काल में देश में कुल १६ लाख घर बनवाये जायेंगे।

राज्य सरकारों द्वारा किये गये श्रम-कल्याण कार्य—

केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकारों ने भी श्रमिकों के कल्याण के लिए बहुत कुछ किया है। इस दिशा में कार्य का श्रीगणेश तो प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही हो गया था और सन् १६३७ में भी कांग्रेसी सरकारों ने इन कार्यों के प्रति बडी रुचि दिखाई थी, किन्तु कोई सराहनीय कार्य नहीं हो सका। हाँ, युद्धोत्तर काल में अवश्य प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस ओर गया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो राज्य सरकारों ने इस दिशा में बडा प्रशसनीय कार्य किया है। अब हम भारत के कुछ औद्योगिक राज्यों में होने वाले श्रम कल्याण कार्यों पर प्रकाश डालेंगे।

बम्बई राज्य—बम्बई राज्य में श्रम कल्याण के लिये सबसे पहले सन् १६३६-४० के बजट में १,२०,००० रु० का आयोजन किया गया था, जिससे कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये। सन् १६४६-५० के बजट में इसी कार्य के लिये १० ६८,०८३ रु० स्वीकार किये गये। सन् १६५१-५२ में इस राज्य में ५४ कल्याण केन्द्र थे—५ 'क' श्रेणी के, ११ 'ख' श्रेणी के, ३६ 'ग' श्रेणी के और २ 'घ' श्रेणी के। ये चार श्रेणियाँ सुविधाओं के आधार पर बनाई गई हैं। 'क' श्रेणी के कल्याण केन्द्रों में निम्न सुविधायें प्रदान की जाती हैं—पुरुषों के लिए मैदानी तथा भीतरी खेल, स्त्रियों की सिलाई तथा कढाई, बच्चों के लिए नर्सरी स्कूल, स्त्री-पुरुषों के लिए अलग अलग स्नानागार, औषधालय, पुस्तकालय, वाचनालय, तथा आदि, म. १ मार्र फिल्म, दिखाने का प्रबन्ध। अन्य श्रेणी के केन्द्रों में सुविधायें कम होती हैं। बम्बई नगर में १८ केन्द्र हैं, शोलापुर और अहमदाबाद में ६-६ केन्द्र हैं। सन् १६५३-५४ में बम्बई राज्य ने श्रम कल्याण कार्य अधिनियम पास कर दिया। श्रम कल्याण के कार्य सचालन के लिए

१४ सदस्यों की एक सभा बनाई गई। सन् १९५७ के बजट में ३८·७८ लाख रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया गया, जिसमें से २७·६७ लाख रुपये औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए दिए गए। एक सराहनीय कार्य बम्बई राज्य ने यह किया है कि श्रमिकों में से ही नेताओं का निर्माण किया जाय और इसके लिए उन्हें बम्बई, अहमदाबाद तथा शोलापुर में शिक्षा दी जाती है। इसी वर्ष में राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत ५,२७,६१८ श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य बीमा इत्यादि की सुविधा प्रदान की गई। श्रम-कल्याण कार्यों द्वारा इस प्रदेश के श्रमिकों को काफी लाभ पहुँचा है और उनकी क्षमता में यथेष्ट वृद्धि हुई है।

उत्तरप्रदेश—इस प्रदेश में सन् १९३७ में प्रथम बार कांग्रेस मन्त्रिमंडल की स्थापना हुई तथा कानपुर में ४ कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये। सन् १९४७ के बाद इस दिशा में सराहनीय प्रगति हुई है। सन् १९५५ में इस राज्य में श्रम-कल्याण केन्द्रों की संख्या ४४ थी। सुविधाओं के विचार से उनकी ३ श्रेणियाँ की गई हैं—अ, ब और स। प्रथम श्रेणी के केन्द्रों में एक एलोपैथी का चिकित्सालय, पुस्तकालय व वाचनालय, स्त्रियों के लिए सिलाई व कढ़ाई की कक्षायें, भीतरी और बाहरी खेल, संगीत, रेडियो, प्रसूति गृह इत्यादि की व्यवस्था होती है। द्वितीय श्रेणी के केन्द्रों में भी लगभग यही सुविधायें होती हैं। यहाँ होम्योपैथी का चिकित्सालय होता है। तृतीय श्रेणी के केन्द्रों में पुस्तकालय व वाचनालय, खेल-कूद तथा रेडियो इत्यादि होते हैं। श्रम हितकारी केन्द्रों पर मुफ्त में सिनेमा भी दिखाये जाते हैं। कभी कभी श्रमिकों का कार्यक्रम अखिल भारतीय रेडियो लखनऊ व इलाहाबाद पर भी होता है। टूर्नामेन्ट व दंगल आयोजित किये जाते हैं, जिनमें विजेता श्रमिकों को पुरस्कार व प्रमाण-पत्र देकर प्रोत्साहित किया जाता है। चर्खा कक्षायें, प्रौढ़ शिक्षा कक्षायें तथा स्त्रियों के लिये व्यावसायिक शिक्षा की कक्षायें भी इन केन्द्रों द्वारा चलाई जाती हैं।

सन् १९५४ में कानपुर में श्रमिकों के हितार्थ एक टी० बी० का अस्पताल खोला गया है। इसके अतिरिक्त चिकित्सकों के एक सचल दल का भी निर्माण किया गया है। जुलाई सन् १९५४ में केन्द्रीय सामाजिक हितकारी बोर्ड के आधार पर U. P. Social Welfare State Advisory Board की भी स्थापना कर दी गई है। यही नहीं, श्रमिकों के रहने के लिए हजारों घरों का भी निर्माण किया गया है। गृह-निर्माण कार्य को उत्तरप्रदेश में तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। प्रथम श्रेणी में श्रमिकों के लिए कानपुर तथा लखनऊ में क्रमशः ७,२१६ व ५६० घर सन् १९५५-५६ में बने, जो श्रमिकों को भी दिए गए हैं। द्वितीय श्रेणी में कानपुर में ३,७५० गृहों का निर्माण किया गया है। तृतीय श्रेणी में कानपुर, आगरा, फिरोजाबाद, इलाहाबाद, मिर्जापुर, सहारनपुर तथा बनारस में ७,४०० मकान बनाने की योजना है, जिनमें से पाँच हजार घरों का निर्माण हो चुका है। श्रमिक राज्य बीमा योजना, जो सन् १९५०

में कानपुर में लागू की गई थी, अब उस नगर के लाखो श्रमिको को लाभ पहुँचा रही है। सन् १६५५ ५६ में आगरा, लखनऊ तथा सहारनपुर में २० हजार श्रमिको को भी इसके अन्तगत ले लिया गया है। स्त्रियो की देखभाल के लिये एक महिला अधिकारी (Woman Labour Welfare Superintendent) की नियुक्ति की गई है। उत्तर प्रदेश की द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्तगत २५३'१ करोड रुपये की निर्धारित धन राशि में मे श्रम कल्याण पर १४२'५ करोड रुपये व्यय किये जायेंगे।

पश्चिमी बगाल—सन् १६४० में बगाल राज्य में १० श्रम कल्याण केन्द्र खोले गये, जिनकी सख्या बढने बढने सन् १६४५ में ४१ हो गई। विभाजन के बाद इनकी सख्या ३० रह गई। इन केन्द्रो पर भी चिकित्सा, मनोरजन, खेल कूद, शिक्षा और सिलाई इत्यादि की सुविधायें उपलब्ध हैं। लगभग ४५ हजार व्यक्ति प्रतिदिन इन केन्द्रो पर जाते हैं तथा लगभग १६,६६४ बच्चे और ६,४४८ प्रौढ प्रातः तथा सन्ध्या कालीन कक्षाओ में शिक्षा पाते है। कलकत्ता, हावडा तथा सीरामपुर मे श्रमिको के लिये क्वाटर बनवाये जा रहे हे। राज्य में इस समय १५ चिकित्सालय श्रमिको के लिये कार्य कर रहे ह। चाय के बगीचा में काम करने वाले श्रमिको के लिये केन्द्रीय चाय बोर्ड ने सन् १६५५ ५६ में एक लाख रुपया कल्याण कार्यों के लिये दिया था। इससे मुख्यत. स्त्रियो तथा बच्चो का कल्याण होगा। सन् १६५७ में पुखरियाबाग तथा बागडोगरा में दो कल्याण केन्द्र खोले गए है। जूट मिलो के श्रमिको की आर्थिक तथा सामाजिक दशा म काफी सुधार हो गया है और उनकी कायक्षमता में भी वृद्धि हुई है।

अन्य राज्य—भारत के अन्य राज्यों में भी श्रम कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। पजाब के नगरो (अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला, बटाला, जालन्धर तथा अब्दुल्लापुर) में इनकी स्थापना हुई है। मध्य प्रदेश में हिंगनघाट, जबलपुर, ग्वालियर, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम में—मद्रास म नीलगिरि, कोयम्बटूर तथा करियार रोड (उडीसा) राजस्थान के गगानगर, जोधपुर और कृष्णगढ में भी केन्द्र स्थापित किये गये हे।

इसमे कोई सन्देह नही कि श्रम कल्याण कार्यों की ओर केन्द्रीय व राज्य सरकारो का ध्यान बढता ही जा रहा है। भारत का प्रत्येक राज्य अपने को 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) कहता है, किन्तु समस्या की गुरुता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है।

उद्योगपतियो द्वारा कल्याण-कार्य—

लम्बे अरसे की उदासीनता के बाद उद्योगपतियां ने श्रमिको के प्रति कुछ विशेष जागरूकता दिखलाई है, लेकिन उनके श्रम कल्याणकारी प्रयत्न अधिकांश में श्रमिको के हित के प्रति दया भावना पर आधारित हे। जहा तक उद्योगपतियां के दृष्टि कोण का प्रश्न है, वे अब तक व याण काय को श्रमजीवियां को फँसाने के लिये एक

'मृग मरीचिका व जाल' के रूप में उपयोग करते रहे है। इन कार्यों को करते हुए वे एक प्रकार स श्रमिकों के ऊपर मानों अहसान-सा करते है। यद्यपि अधिकाश में उद्योगपति आज भी बड अनुदार है और वे कल्याण-कार्यों में होने वाले व्यय को आर्थिक लागत नहीं मानते, किन्तु कुछ उद्योगपति उदार व प्रगतिशील भी है, जो इस व्यय को विनियोग समझ कर करते है, जो भविष्य में उनकी बढ़ी हुई उत्पादन क्षमता के रूप में उन्हें पुनः मिल जाता है। अब हम ऐसे ही उद्योगपतियों द्वारा किए हुए कल्याण कार्य की झाँकी करेंगे।

सूती-वस्त्र-मिल-उद्योग—

बम्बई में सूती मिलो मे चिकित्सालय, जलपानगृह स्थापित किये गये है। कुछ मिलो में आधुनिकतम अस्पताल भी है। इनके अतिरिक्त बाहरी भीतरी खेलो की सुविधा, सहकारी समितियाँ, बाल एव प्रौढ शिक्षालय, प्रॉवीडेन्ट फन्ड की योजना आदि सुविधाओं की व्यवस्था भी देश के लगभग सभी मिलो में की गई है। इस दृष्टि से नागपुर का एम्प्रेस मिल, दिल्ली का देहली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स व बिडला कॉटन मिल्स, ग्वालियर का जीवाजीराव कॉटन मिल्स, मद्रास के बकिंघम एण्ड कर्नाटक मिल्स, बगलौर का बगलौर वुलियन कॉटन एण्ड सिल्क मिल्स तथा मदुरा मिल्स कम्पनी ने अत्यन्त सराहनीय कार्य किये है।

जूट-उद्योग—

जूट-उद्योग में श्रम हितकारी कार्यों को करने वाली एक मात्र सस्था भारतीय जूट मिल सघ है, जिसने हजारीबाग, कनकी नाडा, सीरामपुर टीटागढ और भद्रेश्वर में श्रम हितकारी केन्द्रों की स्थापना की है। इन कन्द्रो पर बाहरी भीतरी खेल कूदो की व्यवस्था की जाती है। सघ की ओर स पाँच प्राथमिक पाठ्शालायें भी चल रही है। जूट मिलो ने व्यक्तिगत रूप से भी हितकारी कार्यों में योग दिया है। सभी जूट मिलो मे एक चिकित्सालय है। सात मिलो मे प्रसूताओं के लिये क्लिनिक है। ५१ मिलो में शिशुगृह एव ४५ जूट मिलो में जलपान गृह खोले गये है।

ऊनी मिलो में बडे कारखानो में सभी उत्तम व्यवस्थायें उपलब्ध है और छोटी मिलों में न्यूनतम कानूनी सुविधाओं का प्रबन्ध है।

इजीनियरिंग उद्योग में १,००० या इसके अधिक श्रमिक वाले सभी कारखानो में चिकित्सालय है। जहाँ जहाँ स्त्री श्रमिक है वहाँ शिशु गृह भी बने है। जलपान-गृह तो सभी कारखानो में मिलेंगे। १०० से ऊपर श्रमिक वाले कारखानो मे प्रॉवीडेन्ट फन्ड योजना लागू है। टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी जमशेदपुर विशेष उल्लेखनीय है। इसमें ४०० पलङ्ग वाला अस्पताल, प्रसूता-गृह एव ६ प्रसूति क्लिनिक है। कपनी की ओर से ३ हाईस्कूल, १० मिडिल स्कूल और २५ प्राथमिक स्कूल खोले गये है।

२ बड़े जलपान गृह हैं। विशाल क्रीडा स्थल, मुफ्त सिनेमा, सहकारी उपभोक्ता भण्डार व डाकखाने आदि की आदर्श व्यवस्था है। अन्य कारखानों में भी इसी प्रकार व्यवस्था करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

कोयला तथा अभ्रक की खानो में श्रमिक हितकारी कोष कानून द्वारा बनाये जा चुके है, जिनके अन्तर्गत अनेक श्रम-हितकारी कार्य किये जा रहे है। कोलार की सोना खानो में भी श्रम हितकारी कार्य हो रहे है।

आसाम तथा पश्चिमी बगाल के अधिकांश बडे चाय उद्योगों में बडे बडे अस्पताल बने है। इनमें अभी जो व्यवस्थाए की गई है वे अत्यन्त अपर्याप्त हैं।

इसी प्रकार की न्यूनाधिक व्यवस्थाएं अन्य उद्योगो में भी की गई है, परन्तु श्रमिकों की आवश्यकताओं को देखते हुये ये प्रयत्न अपर्याप्त है।

श्रमिक सघो द्वारा हित-कार्य—

श्रम-सघ धन की कमी के कारण अधिक कार्य नही कर सके है। तथापि कुछ सघो ने सराहनीय कार्य किया है जिसमें अहमदाबाद टैक्सटायल श्रम-सघ, मजदूर सभा कानपुर एव मिल मजदूर सङ्घ इन्दौर प्रमुख है। इन्होने पुस्तकालय, चिकित्सालय, शिक्षालयो (प्रौढ एव बाल), क्लबो आदि की व्यवस्था की है।

सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा भारत मे कल्याण कार्य—

कल्याण-कार्य के क्षेत्र में सयुक्त राष्ट्र सङ्घ द्वारा की हुई सेवाओ का उल्लेख करना अनावश्यक न होगा। इस सस्था ने भारतीय बालकों के कल्याण काय के लिए मार्च सन् १९५४ तक लगभग ६० लाख डालर तक व्यय कर दिया है। भारत सरकार की प्रथम पञ्च वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण कार्यों का सयुक्त-राष्ट्र सघ के मातृ तथा बाल कल्याण कार्यों से सम्बन्धित योजना से समन्वय कर दिया गया है। इस योजना के अन्तगत आगामी दो वर्षो में स्वास्थ्य निरीक्षकों तथा दाइयो के प्रशिक्षण एव उन्हे चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त सज्जा से सुसज्जित करने में बीस लाख डालर व्यय किये जायेंगे। 'सयुक्त राष्ट्र सघीय अन्तर्राष्ट्रीय बाल सकट कोष' (United Nations International Children and Emergency Fund--U. N. I. C. E. F.) भारत में माताओ तथा बच्चो को दूध वितरित करने तथा प्रसूति गृहो और बाल कल्याणकारी केन्द्रो की स्थापना के उद्देश्य से आरम्भ किया गया था। इनमें से १० लाख डालर मलेरिया नियन्त्रण, दूध वितरण और दुर्भिक्ष निवारण में खर्च किया जा चुका है। इस धन का अधिकांश भाग भारतीय गाँव तथा श्रमिक बस्तियो में व्यय होता है।

उपसहार—

उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत में श्रमिको की कार्यक्षमता में वृद्धि

करन तथा उनके लिए कल्याण कार्यों की व्यवस्था के बहुत कुछ प्रयत्न किये जा रहे है, किन्तु समस्या की गम्भीरता एव गुरुता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस दिशा म अभी तक जो कुछ भी किया गया वह बहुत ही थोड़ा है। सच बात तो यह है कि विभिन्न श्रमिक सन्नियमो म दी गई कल्याण सुविधाओ का न्यूनतम भी आज श्रमिको को अधिकाश मे नही मिल पाता, अत सर्व प्रथम तो पूव स्थित सन्नियम को ही सच्चे अथ म कार्यान्वित करन की आवश्यकता है। दूसरे श्रमिको की समस्या को सुलझान के लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि एक मानवीय दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाय। तभी भारतीय श्रमिक विश्व के अन्य देशो के श्रमिको के समान निपुण व बलिष्ठ होकर देश का आर्थिक उत्थान कर सकेंगे।

सयुक्त राष्ट्र-सघ एव भारत मे श्रम-कल्याण कार्य—

सयुक्त राष्ट्र सघ विश्व के सभी देशो के श्रमिकों के कार्यों में रुचि रखता है। इस सस्था न भारत तथा अन्य दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशो के श्रमजीवियो के आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास के लिए सराहनीय काय किया है। सयुक्त राष्ट्र सघ न भारतीय बालको के कल्याणार्थ मार्च सन् १९५४ तक लगभग ६० लाख डालर व्यय किया। भारत की प्रथम पच वर्षीय योजना क अन्तगत कल्याण कार्यों का सयुक्त राष्ट्र सघ के मातृ तथा कल्याण कार्यो से सम्बन्धित एक योजना से समन्वय कर दिया गया था। इस योजना के अन्तर्गत सन् १९५५ ५६ म स्वास्थ्य निरीक्षको तथा दाइयो के प्रशिक्षण तथा उन्हे चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त सज्जा से सुसज्जित करन म २० लाख डालर व्यय किये गये।

सयुक्त राष्ट्र सघीय अन्तर्राष्ट्रीय बाल सङ्कट कोष (U N. I. C. E F. —United Nations International Children's Emergency Fund) भारत मे माताओ तथा बच्चो को दूध वितरित करन तथा प्रसूतिगृहो एव बाल कल्याण केन्द्रो की स्थापना क उद्देश्य स प्रारम्भ किया गया था। इसमें स १० लाख डालर दूध वितरण, मलेरिया नियत्रण एव दुर्भिक्ष निवारण पर व्यय किया जा चुका है। इस धन का अधिकाश भाग भारतीय गॉवो तथा श्रमिक बस्तियो म व्यय हो रहा है।

इस योजना के अन्तगत केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्य सरकारो को कोष राशि म स उनका भाग दती है। इसमें से पश्चिमी बगाल को १ २५ लाख डालर, केरल को १·१० लाख डालर बिहार को २ लाख डालर तथा उत्तर प्रदेश को भी २ लाख डालर दिये जा चुके है। ये राज्य सरकारें पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याणकारी कार्यो को अपनी योजनाओ पर इस धन का उपयाग माताओ तथा बच्चो क कल्याण कार्यों पर कर रही है। गावो क लिए दाइयो को प्रशिक्षित करक उन्हे सज्जा (Kit)

प्रदान करना, योजना का मूल उद्देश्य है। इस सज्जा में वे सभी वस्तुएँ सम्मिलित होगी, जिनकी कि प्रसव के समय आवश्यकता पड सकती है। उक्त सस्था ने ऐसी १४,००० सज्जायें विश्व के २७ राष्ट्रो को दने की योजना बनाई है, जिसमें अकेले भारत को ६,००० सज्जायें मिलेंगी। आशा ही नहीं, वरन् पूर्ण विश्वास है कि इन प्रयत्नो मे भारतीय श्रमिकों का बडा लाभ होगा। इस समय श्रमिक बस्तियों में मातृ-मृत्यु तथा बाल मृत्यु के ऊँचा होने के कारण अपार मानव सहार हो रहा है, अतएव इस योजना के परिणामस्वरूप सहार न होकर मानवीय कल्याण की वृद्धि होगी।

श्रम-सघों द्वारा किये हुए कल्याण-कार्य—

भारतीय श्रम सघो की शक्ति अभी तक अधिकांशत: अपने वेतन तथा काम करने की दशाओ के सम्बन्ध मे उद्योगपतियो से सघर्ष करने में ही लगी रही, अतएव कल्याण-कार्य की दिशा में रचनात्मक काय करने के लिए उन्हे कम सुअवसर मिला। यही नही, दयनीय आर्थिक परिस्थितियो के कारण भी वे इस दिशा में कुछ करने में असमर्थ रहे। जब श्रमिक स्वय अपना पेट नही भर सकता तो उसके सघ किस प्रकार सम्पन्न हो सकते हैं ? कल्याण-कार्य की व्यवस्था के लिए काफी धन की आवश्यकता पडती है। फिर कुछ श्रम-सघो ने इस दिशा में अनुकरणीय कार्य किये हैं, जिनमें से अहमदाबाद सूती वस्त्र मिल श्रम-सघ, मजदूर-सभा कानपुर एवं मिल मजदूर संघ इन्दौर के नाम उल्लेखनीय है।

अहमदाबाद टैक्सटाइल श्रम-सघ—

इस सघ की लगभग ७५% आय कल्याण-कार्यों पर ही व्यय होती है। इस संघ के तत्वावधान म २५ ऐसे केन्द्र स्थापित किये गये हैं, जहाँ श्रमिक एकत्रित होकर सास्कृतिक व सामाजिक कार्यों में भाग लेते हैं। प्रत्येक केन्द्र में एक पुस्तकालय तथा वाचनालय है। इसके अतिरिक्त यह ७५ सहायता अनुदान प्राप्त वाचनालयो एव सचल पुस्तकालयों का भी सचालन करता है। अहमदाबाद की प्रमुख श्रम बस्तियो में क्रीडास्थल भी सघ की ओर से स्थापित किये गये हैं। इसके अन्तर्गत श्रम-सदस्यो की चिकित्सा के लिये एक एलोपैथिक तथा एक होमियोपैथिक तथा एक आयुर्वेदिक औषधालय है। सघ द्वारा सगठित ६ शिक्षा सस्थायें भी नगर में चल रही हैं, जिनमें से ६ स्कूल, २ अध्ययन भवन (Study Homes) तथा एक बालिकाओ के लिए छात्रावास है। प्रति वर्ष श्रमिको के बच्चों की सहायता देकर उन्हें उच्च अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सघ द्वारा सगठित चार व्यवसायिक प्रशिक्षण-शालाएँ भी है। सन् १९५२ में इस सघ ने एक बैंक तथा एक सहकारी उपभोक्ता भण्डार भी खोला। इस विवरण से स्पष्ट है कि अहमदाबाद श्रम-सघ ने कल्याण-काय की दिशा में सराहनीय कार्य किया है।

कानपुर मजदूर-सभा ने भी मजदूरो के कल्याणार्थ पुस्तकालय, वाचनालय तथा चिकित्सालय की स्थापना की है। इन्दौर मिल मजदूर सघ ने श्रम कल्याण केन्द्र की स्थापना की है। इस केन्द्र की तीन शाखाएँ है—बाल मन्दिर, महिला मन्दिर तथा कन्या मन्दिर। बाल मन्दिर में श्रमिकों के बच्चो की शिक्षा, उनके लिए स्वास्थ्य, खेल कूद व क्रीडास्थल आदि तथा साँस्कृतिक विकास के लिए सङ्गीत, नृत्य तथा अभिनय इत्यादि की व्यवस्था की जाती है। कन्या-मन्दिर में श्रमिक बालिकाओं की प्रारम्भिक शिक्षा, खेल कूद व स्वास्थ्य, सिलाई कढाई तथा अन्य गृह विज्ञान सम्बन्धी बातो के पढाये जाने, आदि की व्यवस्था है। महिला मन्दिर में महिलाओं के हेतु प्रौढ शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुधार इत्यादि की व्यवस्था की गई है।

उपर्युक्त श्रम सघो के अतिरिक्त देश के रेल कर्मचारी सघ भी अपने सदस्यो के लिए कल्याण कार्य की व्यवस्था करते है—जैसे—क्लब खोलना, सहकारी समितियो की स्थापना करना, मुकद्दमो की पैरवी करना इत्यादि। उत्तर प्रदेश में भारतीय श्रम सघ (Indian Federation of Labour) ने अनेक श्रम कल्याण केन्द्रो की स्थापना की है। आसाम में चाय के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिको के लिए केन्द्रीय सरकार की सहायता से 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस' ने कुछ श्रम कल्याण कार्यों का आयोजन किया है। अन्त में हम यह कह सकते है कि अब श्रमिक वर्ग काफी जागरुक हो गया है और वह स्वय सघीय शक्ति से अपने पैरो खडा होने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु अभी तक श्रमिक सघो ने जो कुछ भी किया है, उसे सन्तोषजनक एव पर्याप्त नही कहा जा सकता।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे श्रम-कल्याण—

प्रथम पच-वर्षीय योजना में श्रम कल्याण के लिये १·३१ करोड रुपये आयोजित किये गये थे।। चाय बागानो के श्रमिको के हितार्थ केन्द्रीय चाय मण्डल (Central Tea Board) को ४ लाख रुपये दिये गये थे। ७६,६७६ क्वार्टर बनवाने की योजना स्वीकार की गई थी, जिनमे से १६,१६५ बम्बई में, २१,७०६ उत्तर प्रदेश में, ५,६२६ हैदराबाद में, ५,१८१ मध्य प्रदेश मे और ३,४४८ मध्य भारत व अन्य राज्यो में बनाये जाने थे। प्रथम योजना के अन्त तक ४०,००० मकान बन कर तैयार हो चुके थे।

मई सन् १६५४ में सरकार ने १२८ घरो के निर्माण के लिए १,६७,६५० रुपये का अनुदान दिया था। इसमें से १८,६०० रुपये बम्बई राज्य को दिये गये और इसके अतिरिक्त ३७,८०० रुपये ऋण के रूप में दिये गए थे। जुलाई सन् १६५४ में आध्र प्रदेश की चीनी मिल को १,०१,२५० रुपये का अनुदान और १,५८,३४२ रुपये का ऋण दिया गया। इसी योजना के अन्तर्गत अगस्त सन् १६५४

में केन्द्रीय सरकार ने १०,२२६ मकानो के निर्माण के लिए ३,१४,३५,२६७ रुपये की आर्थिक सहायता दी, जिसमें से उत्तर प्रदेश को लगभग २ करोड रुपये मिले थे। निम्न तालिका से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राज्य में इस योजना के अन्तर्गत कितने मकानो का निर्माण किया गया :—

नगर	मकानो की सख्या
कानपुर	३,४००
आगरा	१,२६६
फिरोजाबाद	१,०००
सहारनपुर	६०४
इलाहाबाद	५०४
बनारस	५००
मिर्जापुर	९६
योग	७,४००

बम्बई राज्य को श्रमिको के क्वार्टर बनवाने के हेतु १,०७,४६,००० रुपये दिये गये थे, जिनस २,३८८ क्वार्टर बनवाये गये हैं।

प्रथम पच वर्षीय योजना के अन्तगत ३५२ कल्याण-केन्द्रो की स्थापना की गई।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण कार्य—

द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रम कल्याण कार्यो के लिए २९ १६ करोड रुपये का आयोजन किया गया है, जिनमें से १८ करोड रुपये केन्द्रीय सरकार खर्च करेगी और शेष प्रदेशीय सरकारें व्यय करेंगी। श्रमिको के क्वाटर के निर्माणार्थ ५० करोड रुपये का अलग आयोजन किया गया है। इसके अतिरिक्त चाय के बगीचो में काम करने वाले श्रमिको के लिए ११,००० मकान बनवाने के हेतु २ करोड रुपये अलग से स्वीकार किये गये है। गृह-निर्माण पर खान श्रम कल्याण कोष (Coal Labour Welfare Fund) से ८ करोड रुपए व्यय किये जायेंगे।

श्रमिको के जीवन स्तर ऊँचा करने, एकता और सफाई की ओर उनकी रुचि बढाने के लिए एक नई शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है। जुआ खेलने, शराब, ताडी तथा अन्य मादक वस्तुओ की लत छुडान के लिए फिल्मो द्वारा शिक्षा देना अधिक हितकारी होगा और इस हेतु सन् १९६० ६१ तक १०० फिल्म (Audio Visual Films) तैयार किये जायेंगे। कारखानो के श्रम-कल्याण विभाग और राजकीय श्रम-कल्याण केन्द्र ऐसे फिल्मो को दिखाने का प्रबन्ध करते रहते हैं।

सन् १९५६ म औद्योगिक शिक्षा क लिए १०,२०० व्यक्तियो का सुविधायें प्राप्त था। द्वितीय पच वर्षीय योजना काल म १६,७०० व्यक्तियो के प्रशिक्षण क लिए और प्रबन्ध किया जायगा। प्रशिक्षण की अवधि भी बढा दी गई है। काम सीखन का एक नई योजना—Apprenticeship Scheme चलाई गई है जिसके अनुसार प्रथम वप म ४५० व्यक्ति भरती किय जायेंगे। उनका सख्या प्रति वप बढती जायगी और सन् १९६०-६१ तक यह सख्या ५,००० हो जायगी उद्योग की आवश्यकता नुसार २ वप स ५ वप तक की ट्रेनिंग रखी गई है। यह ट्रेनिंग प्राप्त व्यक्ति यदि किसी कारखान म काय करग तो स्वभावत उनकी दक्षता अधिक होन क कारण उत्पादन भी बढेगा।

द्वितीय पच वर्षीय योजना क अतगत १,३२० श्रम कल्याण केन्द्र खाल जायगे।

कारीगरों को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था—

कारीगरो को ट्रेनिंग देन की देश म इस समय जो सुविधाए उपलब्ध हैं वे आवश्यकता स बहुत कम है। आज देश न यथासभव अधिक से अधिक ग्राम निर्भर होन का उद्देश्य अपन सामन रखा है और उत्पादन क बडे बड लक्ष्य निर्धारित किय जा रहे है। इसलिए आज कुशल कारीगर अधिक से अधिक सख्या म सुलभ होन की जरूरत बढ गयी है। लोगो म बढिया चीज को खरीदन की आदत बढ जान स यह जरूरत और भी अधिक होती जा रही है। इसलिए आवश्यक योग्यता वाल कारीगर तयार करन की जरूरत न केवल अत्यधिक है बल्कि अत्यत उत्कृष्ट है।

कुशल कारीगरो को ट्रेनिंग दन का प्रश्न बडे महत्त्व का ही नहीं बन गया है बल्कि राष्ट्रीय महत्त्व की चीज बन गया है। तब तक कुशल कारीगर तयार नहीं किय जा सकते जब तक कि उपयुक्त साज सामान वाली ट्रेनिंग सस्थाए या वकशापें न हो और उनम ट्रेनिंग दन क लिय योग्यता वाल प्रशिक्षक न हो। दुर्भाग्य स पहली पच वर्षीय योजना म एस ट्रेनिंग केन्द्र आवश्यक सख्या म न बनाए जा सके जो कारीगरो को ट्रेनिंग दे सकते। कारीगरो का ट्रेनिंग दन के कायक्रम का आवश्यकता का अनुभव करके योजना आयोग न दूसरा पच वर्षीय योजना का अवधि म कारीगरो को ट्रेनिंग देन का सुविधाए जुटान क लिए धन दिया। पुनवास तथा नियोजन महानिदेशालय को कारीगरो का ट्रेनिंग दन की योजनाए शुरू करन का यह काम सौंपा गया।

पुनवास तथा नियोजन महानिदेशालय (डायरेक्टरेट जनरल आफ रिसेटलमेन्ट एण्ड एम्प्लायमण्ट न दूसरी पचवर्षीय योजना के दौरान म क्रियान्वित करन के लिए निम्न योजनाएँ बनाई —

(१) औद्योगिक ट्रेनिंग संस्थाओं में ट्रेनिंग की सुविधाओं का विस्तार और उनमें सुधार करना।

(२) राष्ट्रीय प्रशिक्षार्थी योजना चालू करना।

(३) औद्योगिक कर्मचारियों के लिए सायंकालीन कक्षाएँ चलाना।

(४) पढ़े लिखे बेकारों के लिए काम सिखाने तथा नये मार्ग दिखाने वाले केन्द्र खोलना।

(५) अलग अलग कामों की ट्रेनिंग देने की व्यवस्था का विस्तार करना।

अंतिम योजना को छोड़कर और सारी योजनाएं राज्य सरकारों के सहयोग से क्रियान्वित की जा रही है। प्रशिक्षकों को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार ने की है और इनके लिये केन्द्रीय प्रशिक्षण विद्यालयों का संचालन सरकार करती है।

कारीगरों को प्रशिक्षण—

पुनर्वास तथा नियोजन महानिदेशालय ने एक कार्यक्रम बनाया है जिसके अनुसार दूसरी योजना की अवधि में २० ००० कारीगरों को ट्रेनिंग देने की और व्यवस्था हो सकेगी। इस प्रकार द्वितीय योजना के अंत तक कुल २६ ४० हजार कारीगरों के प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी (इनमें से १०,५०० को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था इस समय है और २६,००० की व्यवस्था और होगी)। मूल कार्यक्रम के अनुसार प्रशिक्षण की सुविधाएँ तभी बढ़ायी जा सकती हैं जब वर्तमान सुविधाओं का पूरा-पूरा उपयोग हो और कुछ संस्थाओं में तो दो पालियां चलाकर प्रशिक्षण दिलाया जाए। दूसरी योजना से पहले ५६ प्रशिक्षण केन्द्र थे और उनकी संख्या में ८० की वृद्धि करने का प्रस्ताव है।

इंजीनियरी उद्योगों के लिए ट्रेनिंग की अवधि दो वर्ष होगी, जिसमें से ६ महीने कारखानों या वर्कशापों में काटने होंगे। इस योजना के अंतर्गत २६,००० कारीगरों को ट्रेनिंग दी जा चुकी है और योजना की अवधि समाप्त होने तक २५ ००० लोगों को ट्रेनिंग और दी जा सकेगी।

उम्मेदवार प्रशिक्षण योजना—

यह राष्ट्रीय योजना कारीगरों को प्रशिक्षण देने के लिए चलायी गई है। इसके अधीन उद्योगों में ७०५० प्रशिक्षार्थियों को काम सिखाना शुरू किया जायगा। लेकिन विभिन्न कठिनाइयों के कारण इस योजना पर अमल करने में विशेष प्रगति नहीं हो पायी है।

राज्य सरकारों ने भारत सरकार से प्रार्थना की है कि वह एक ऐसा कानून बनवाये जिसके अधीन सरकारी एवं गैर सरकारी कारखानों के लिए यह जरूरी कर

दिया जाए कि वे ट्रेनिंग के पाने के उम्मेदवारों को अपने यहाँ काम सीखने दें। इस पर केन्द्रीय सरकार विचार कर रही है।

सायंकालीन कक्षाएँ—

उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियों को अपने काम का सैद्धान्तिक ज्ञान भी हो जाए और वे अपने भविष्य को और उज्ज्वल कर सकें, इस उद्देश्य से औद्योगिक नगरों तथा कस्बों में सायंकालीन कक्षाएँ चालू की गयी हैं। चुने हुए कर्मचारी अपने काम के समय के बाद इन कक्षाओं में जाते हैं। पाठ्यक्रम पूरा हो जाने पर प्रशिक्षार्थियों की परीक्षा ली जाती है और उत्तीर्ण होने पर उन्हें एक प्रशिक्षण पत्र दिया जाता है। इस कार्यक्रम के अधीन ३,०५० व्यक्तियों के प्रशिक्षण की योजना बनायी गयी है। इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए कर्मचारियों में काफी उत्साह है।

पढ़े-लिखे बेकारों के लिए योजना—

इस योजना का उद्देश्य पढ़े लिखे बेकार लोगों को सफेदपोश बाबूगीरी के अलावा अन्य कामों के लिए तैयार करना है। पढ़े लिखों को काम सिखाने तथा नये कामों की ओर प्रवृत्त करने के लिए दो केन्द्रों में जो कुछ सिखाया पढ़ाया जाता है, उससे लोगों को अपनी ही वर्कशाप खोलने या किन्हीं उद्योगों के चालू करने के अच्छे अवसर मिल सकते हैं।

इनकी ट्रेनिंग की अवधि दो साल होती है और जीवन में जम जाने के लिए इन्हें उद्योग संचालन तथा लघु उद्योग संस्थाएं सहायता देती हैं। दूसरी योजना में इस तरह की ट्रेनिंग ३,००० लोगों को देने का प्रस्ताव है।

प्रशिक्षकों को ट्रेनिंग—

कारीगरों को ट्रेनिंग देने के लिए आवश्यक प्रशिक्षकों का सामान्यतः अभाव ही है। इस कमी को पूरा करने के लिये केन्द्रीय प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये हैं। जहाँ इन प्रशिक्षकों को ट्रेनिंग दी जा सके।

प्रशिक्षकों को ट्रेनिंग देने का एक ही केन्द्र है जो कोनी बिलासपुर (मध्य प्रदेश) में चल रहा है और जिसमें १४० लोगों को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था है। अब इस संस्था में प्रशिक्षण की सुविधा २५८ व्यक्तियों के लिए कर दी गयी है। अस्थायी तौर पर एक और विद्यालय औंध पूना में चालू किया गया है, जिसमें १४४ व्यक्तियों को शिक्षा देने की व्यवस्था है। जैसे ही इमारतें बन कर तैयार होंगी, ये विद्यालय क्रमशः कलकत्ता और बम्बई को स्थानान्तरित कर दिये जायेंगे। इन विद्यालयों में प्रशिक्षण देने की अवधि ५॥ महीने है।

अनुमान किया जाता है कि पुनर्वास तथा नियोजन महानिदेशालय ने जो ट्रेनिंग योजनायें चलाई हैं, उनके लिए ४,००० से अधिक प्रशिक्षकों की आवश्यकता होगी।

अन्य सस्थाओ तथा उद्योगो को अपने प्रशिक्षण कार्यों के लिए जितने प्रशिक्षकों की आवश्यकता होगी, उनकी सख्या इनके अलावा होगी। इसलिए प्रशिक्षण की सुविधाएँ बढाने की आवश्यकता पडेगी। तीसरी पच-वर्षीय योजना में प्रशिक्षको को ट्रेनिंग देने के लिए और अधिक केन्द्रीय ट्रेनिंग विद्यालय खोलने का प्रस्ताव है।

STANDARD QUESTIONS

1. Define the scope of 'labour welfare work' and discuss its importance.
2. State briefly how welfare work has developed in India. Describe briefly the welfare activities undertaken by the various agencies in India for the labouring classes.
3. How far has the United Nations, Organisation promoted labour welfare in India ?
4. Briefly summarize the welfare work done by the trade union organisations in India.

अध्याय २४

प्रथम पंचवर्षीय योजना

(First Five Year Plan)

प्रस्तावना—

२६ जनवरी सन् १६५० को भारतीय संविधान लागू होने के बाद ही भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य भारत के आर्थिक विकास तथा लोगो के रहन सहन के स्तर मे सुधार करने के लिए पंच-वर्षीय योजनायें तैयार करना था। पहली योजना १ अप्रैल सन् १६५१ से ३१ मार्च सन् १६५६ तक के लिए बनाई गई थी।

उद्देश्य तथा विशेषतायें—

योजना आयोग के शब्दो मे—' योजना का मुख्य उद्देश्य लोगो के रहन सहन के स्तर को ऊँचा करना तथा उन्हे एक सुखी और अधिक व्यापक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करना था।" इस योजना म देश के सब प्रकार के साधनो—भौतिक तथा मानवीय—को काम मे लाने के ऊपर दृष्टि रखी गई है, जिससे कि देश में वस्तुओ तथा सेवाओ की अधिक उत्पत्ति हो सके और धन वितरण की असमानता भी दूर हो सके। योजना का प्रमुख उद्देश्य एक सर्व मङ्गलकारी राज्य की स्थापना करना है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था—

इस योजना में मिश्रित अर्थ व्यवस्था की कल्पना की गई है, जिसम सरकार का एक महत्वपूर्ण एव क्रियाशील भाग है। राज्य का काम पूँजी का निर्माण करना, उत्पादन की पद्धति को चालू करने की सुविधा देना तथा समाज मे उत्पादन शक्ति तथा वर्ग सम्बन्धो को एक सूत्र में बाँधना है। जनता को भी काम करने का अवसर मिलना आवश्यक है, परन्तु उसको पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नही छोडा जा सकता। उदाहरणार्थ, यद्यपि कृषि व्यक्ति स्वय करते है, परन्तु सरकार का कर्त्तव्य है कि वह सिंचाई, शक्ति, यातायात आदि का प्रबन्ध करे। इसी प्रकार उद्योगो को यद्यपि निजी पूँजी द्वारा चलाया जा सकता है, फिर भी अनेक क्षेत्रो में सरकार की सहायता करनी पडेगी।

निम्न तालिका में प्रथम पंच-वर्षीय योजना का संक्षिप्त विवरण दिया गया है :—

व्यय का मद	करोड़ रुपयों में निर्धारित व्यय	कुल व्यय का प्रतिशत
कृषि एवं सामूहिक विकास	३६१	१७.५
सिंचाई	१६८	८.१
बहु उद्देशीय सिंचाई एवं शक्ति योजनायें	२६६	१२.६
शक्ति	१२७	६.१
यातायात व सन्देशवाहन	४६७	२४.०
उद्योग	१७३	८.४
सामाजिक सेवायें	३४०	१६.४
पुनर्वास	८५	४.१
अन्य	५२	२.५
योग	२,०६६	१००.०

देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी को देखते हुए योजना प्रस्तुत करने के बाद उसमें कुछ संशोधन करना आवश्यक हो गया, अतः योजना में इधर-उधर कुछ वृद्धि कर दी गई और अन्त में २,३७८ करोड़ रुपये की हो गई। निजी क्षेत्र में भी १,४०० करोड़ से बढ़ा कर १,७०० करोड़ रुपये के व्यय की व्यवस्था की गई।

योजना के लिए निर्धारित लक्ष्य—

प्रथम पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत अनेक बहुमुखी नदी घाटी योजनायें सम्मिलित की गई, जिनसे १६६ लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि की सिंचाई तथा १४६ लाख किलोवाट अतिरिक्त बिजली उत्पन्न होने का अनुमान था। देश में खाद्य उत्पादन में भी इस योजना के फलस्वरूप ७६ लाख टन की वृद्धि की कल्पना की गई। इसी प्रकार कपास, पटसन, गन्ना तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुओं के उत्पादन में भी काफी वृद्धि का अनुमान लगाया गया। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के अलावा सहकारी ग्राम प्रबन्ध, सामुदायिक ग्राम योजनायें तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों के माध्यम से ग्रामीण जीवन के सर्वमुखी विकास पर जोर दिया गया। योजना में उद्योग धन्धों के विकास पर १७३ करोड़ रुपया व्यय करने की व्यवस्था थी, जिसमें विशेष बल लोहा तथा स्पात उद्योग तथा भारी रासायनिक पदार्थों के विकास पर दिया गया। कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास को भी पर्याप्त स्थान मिला। अन्य उद्योगों की उत्पादन क्षमता को देखते हुए उत्पादन में वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित किये गये। निजी क्षेत्र द्वारा उद्योगों के विकास पर २३३ करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान था। राष्ट्रीय सड़कों के

विकास के लिए २६ करोड रुपये तथा राज्यो के अधीन सडको के विकास के लिए ७३'५४ करोड रुपये की व्यवस्था की गई। जहाजी कम्पनियो के विकास के लिये सहायतार्थ १५ करोड रुपया, कान्डला के नये बन्दरगाह के लिए १२'५ करोड रुपए की व्यवस्था की गई। समाज सेवाओ के लिए जो धन व्यय होना था उसमें से शिक्षा पर १५१ करोड रुपया, स्वास्थ्य पर ९९ करोड रुपया, मकानो के निर्माणो पर ४९ करोड रुपया, श्रम हितकारी कामो के लिए ७ करोड रुपया तथा पिछडी हुई जातियो के लिए २९ करोड रुपये भी व्यवस्था की गई। यह भी कल्पना की गई कि सन् १९५८ ५९ तक भारत की राष्ट्रीय आय १० हजार करोड रुपए हो जायगी। रोजगार के सम्बन्ध में यह अनुमान लगाया गया कि योजना काल में लगभग ५५ लाख व्यक्तियो को पूर्ण रोजगार तथा ३३ लाख व्यक्तियो को अर्द्ध रोजगार प्राप्त हो सकेगा।

योजना की वित्त-व्यवस्था—

योजना पर व्यय होने वाले २,०६९ करोड रुपयों में से विभिन्न साधनो द्वारा जो धन प्राप्त होने की सम्भावना थी, उसका अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :—

(करोड रुपए)

केन्द्रीय सरकार द्वारा बचत	१६०
रेलों की बचत	१७०
राज्य सरकारो द्वारा बचत	४०८
सार्वजनिक ऋण	११५
छोटी बचतें	१७०
डिपॉजिट एव प्रॉवीडेन्ट फण्ड	२३५
विदेशी सहायता	५२१
घाटे का राजस्वन	२९०
योग	२,०६९

प्रथम पच-वर्षीय योजना की सफलतायें—

प्रथम पच वर्षीय योजना ने प्रारम्भ के वर्षों में बहुत थोडी प्रगति की। वैसे तो सशोधित अनुमान के अनुसार योजना काल में विकास कार्यों पर कुल २,३५६ करोड रुपए व्यय होना था, किन्तु वास्तव में केवल १,९६० करोड रुपया व्यय किया जा सका, अर्थात् प्रथम पच वर्षीय योजना पर अनुमान से १७% कम व्यय किया जा सका।

आयोजना पर खर्च हुए १,९६० करोड रु० निम्न साधनो से प्राप्त हुए। ये आँकडे पाँचवें वर्ष में हुए वास्तविक खर्च के अनुमानो पर आधारित किये गये हैं:—

	रु० करोडो में	कुल प्रतिशत
कर और रेलो की बचत	७५२	३८
ऋण	२०५	१४
छोटी बचत और अन्य कोषो मे जमा हुआ धन	३०४	१६
अन्य पूँजीगत साधनो से प्राप्ति	९१	५
विदेशी सहायता	१८८	१०
घाटे की व्यवस्था से	४२०	२१
योग	१,९६०	१००

२२ जून सन् १९५७ को योजना आयोग के उपसभापति ने जो विज्ञप्ति प्रकाशित करने के लिए तैयार की, उसमें प्रथम पच वर्षीय योजना की प्रगति तथा सफलताओ की विवेचना की गई है। इसमे एक महत्त्वपूर्ण बात की ओर सकेत किया गया है, वह यह है कि यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र में अनुमान से लगभग ४२६ करोड रुपया कम खर्च हुआ, परन्तु निजी क्षेत्र ने इस दिशा में पूरी सफलता प्राप्त की, अर्थात् औद्योगिक विकास के लिए २३३ करोड रुपये व्यय होने का अनुमान था, जबकि वास्तव में २३१ करोड रुपया व्यय किया गया। प्रथम पच वर्षीय योजना का व्यापक प्रभाव इस बात से प्रकट होता है कि योजना काल मे वास्तविक राष्ट्रीय आय में लगभग १८% की वृद्धि हुई है। इस अवधि में प्रति व्यक्ति आय में ११% की वृद्धि और उपभोग व्यय में ९% की वृद्धि हुई है।

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रगति कृषि उत्पादन के क्षेत्र में हुई। खाद्यान्न का उत्पादन २०%, कपास का उत्पादन ४५% तथा मुख्य तिलहनो का उत्पादन ८% बढ गया। सिंचाई की छोटी और बडी योजनाओ के परिणामस्वरूप सिंचित भूमि में १,०६० एकड भूमि की वृद्धि हो गई है। बिजली का उत्पादन सन् १९५० में ७७ करोड ५० लाख किलोवाट घन्टे था। सन् १९५५ मे बढकर ११ अरब किलोवाट हो गया।

औद्योगिक उत्पादन का सूचक अङ्क सन् १९५० में १०५ था, जो सन् १९५५ में बढकर १६१ हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र मे योजना काल के अन्तर्गत जो नए-नए कारखाने खोले गये उनमें से मुख्य ये हैं:—(१) रासायनिक खाद का कारखाना, सिन्दरी, (२) रेल का इञ्जन बनाने का कारखाना, चित्तरजन; (३) हिन्दुस्तान केबिल्स, दुर्गापुर, (४) हिन्दुस्तान शिप यार्ड, विशाखापट्टम, (५) इटेग्रैल कोच फैक्टरी, मद्रास;

(६) हिंदुस्तान मशीन टूल, मैसूर, (७) नेशनल इन्सट्रूमेन्टल फैक्टरी, कलकत्ता, (८) टेलीफून फैक्टरी, बगलौर। पहली योजना की अवधि मे अर्थ व्यवस्था मे कुल विनियोग ३,१०० करोड रुपया आंका गया है। विनियोग की दर सन् १९५०-५१ मे लगभग ५% थी, जो सन् १९५५-५६ में बढकर ७ ३% हो गई। विनियोग में हुई इस वृद्धि के साथ देश में मुद्रा स्फीति में वृद्धि हुई। इस योजना क आरम्भ के काल की तुलना मे सामान्य मूल्य स्तर मे योजना समाप्त होन तक लगभग १३% की कमी हो गई। विदेशी भुगतान का सन्तुलन अनुकूल ही रहा है। वरन् उसमें कुछ थोडी सी बचत हुई।

उपसहार—

भारत के आर्थिक पुनरुत्थान के हेतु यह एक यथार्थ योजना है, जिसमें देश की प्रायः सभी समस्याओ पर विचार किया गया है। इस योजना मे कृषि, सिंचाई, शक्ति, यातायात आदि को प्राथमिकता देकर देश की वास्तविक समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया है। देश में बढती हुई बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए १७५ करोड की व्यवस्था की गई है और कुटीर उद्योगो के प्रोत्साहन पर विशेष बल दिया गया है। इस योजना को प्रजातन्त्रात्मक ढग मे चलाना इस बात का द्योतक है कि सरकार देश के सभी लोगो को इस योजना मे हाथ बँटाने देखना चाहती है। इतना होते हुए भी इसकी कुछ त्रुटियाँ है।

श्री गोरवाला ने लिखा है—"योजना कमीशन केवल ऐसी योजनाएँ बनाता है, जिनका सम्बन्ध केवल राजकीय क्षेत्र के व्यय से है, परन्तु ऊँचा नाम देने के लिए वह इसे प्रथम पच वर्षीय योजना बनाता है।" कुछ आलोचको के अनुसार इस योजना के निर्माताओ ने अपने उद्देश्यो का बढा चढा कर दिखाया है। दूसरे, योजना का आर्थिक आधार सुदृढ नही है, क्योकि इसमें आय की प्राप्ति के जो साधन अपनाये गये है, वे अवास्तविक है। करो द्वारा जो आय की आशा की गई है, वह जनता की कर-देय क्षमता से कही अधिक है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रतिनिधि मण्डल ने बताया है कि योजना में उल्लिखित विनियोग का लक्ष्य मुद्रा स्फीति के खतरे मे प्राप्त किया जा सकेगा, यदि पर्याप्त मात्रा म विदशी सहायता उपलब्ध न हो सकी। तीसरे, योजना में विदेशी सहायता पर बहुत आशा बाँधी गई है। चौथे, याजना मे कृषि को अधिक महत्त्व दिया गया है तथा औद्योगिक विकास को विशेष महत्त्व नही दिया गया, अत. योजना की पूर्ति के बाद भी हमारा देश एक कृषि प्रधान देश ही रहगा। पाँचवे, योजना की अधिकतम राशि का व्यय ग्रामीण क्षेत्र में होन क कारण राष्ट्रीय आय गाँवों मे रहेगी, जिसको पुन प्राप्त करने के लिए अथवा उनकी अतिरिक्त क्रय शक्ति को सोखने के लिए कोई आयोजन नही है। छठे, जन सख्या की वृद्धि को रोकने के लिए, 'कौटुम्बिक नियोजन की आवश्यकता' क अतिरिक्त योजना मे अ य कोइ भी प्रभाव

शाली उपाय नही बताया गया है। सातवें, हमारी योजना में दीर्घकालीन याजनाम्रो को महत्त्व दिया गया है। रूस ने भी ऐसा ही किया था, किन्तु भारत की आर्थिक स्थिति में दीर्घकालीन योजनाम्रो के साथ साथ अल्पकालीन योजनाम्रो को भी समान महत्त्व देना आवश्यक था, जिससे कि देश को शीघ्र लाभ पहुँचे। आठवें, आर्थिक विकास की किसी भी योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके सचालन के लिए विश्वस नीय शासन और समन्वय प्रणाली हो, किन्तु भारत का अब तक का अनुभव अधिक आशाजनक नही है। नदी घाटी योजनाम्रो का काय सचालन वडा असन्तोषजनक रहा। साथ ही, वतमान शासन केवल आय के साधनो का उपयोग करने में ही असफल नही रहा, वरन् वह विवेकपूर्ण व्यय करने में भी असफल रहा है, अतः आवश्यकता इस बात की है कि लोक सेवा आयोग की भाँति एक यूनियन आर्थिक सेवा आयोग की स्थापना की जाय, जो योजना की शासन प्रणाली के लिए आवश्यक प्रशासको की नियुक्ति करे। नवें, योजना में वितरण की असमानता को दूर करने के लिए भी कोई सक्रिय सुझाव नही दिये गये है। इन आलोचनाम्रो के होने हुए भी हमारे देश में पच-वर्षीय योजना का अभूतपूर्व स्वागत किया गया है, क्योंकि यह देश के सन्तुलित आर्थिक विकास का सच्चा प्रयत्न है। साराश में, इसमें वास्तविकता की गन्ध है तथा योजनाम्रो को उपलब्ध स्रोतो से सम्बन्धित किया गया है।

STANDARD QUESTION

1. Discuss the essential features of the First Five Year Plan. How far it has been successful in achieving its objectives ?

———

अध्याय २५

द्वितीय पचवर्षीय योजना

(Second Five Year Plan)

प्रस्तावना—

हमारे राष्ट्र के आर्थिक पुनरुत्थान की प्रथम पचवर्षीय योजना ३१ मार्च १९५६ को समाप्त हुई। इस योजना के फलस्वरूप समस्त देश में आशा का वायुमण्डल फैल गया और इसी से प्रेरित होकर हमने द्वितीय पचवर्षीय योजना का श्रीगणेश किया। राष्ट्रीय विकास परिषद् में भाषण करते हुए द्वितीय पचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था— हमने अपनी यात्रा का पहला चरण पूरा कर लिया है किन्तु हम तुरंत ही अपनी दूसरी यात्रा के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना के उद्देश्य—

द्वितीय पंच वर्षीय योजना निम्न उद्देश्यों को सामने रख कर बनाई गई है—

(१) राष्ट्रीय आय में वृद्धि—५ वर्ष की अवधि में राष्ट्रीय आय में २५% की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है जिससे कि प्रति व्यक्ति आय तथा प्रति व्यक्ति उपयोग में वृद्धि हो व हमारे रहन सहन का स्तर ऊँचा हो।

(२) आधारभूत उद्योगों का विकास—द्वितीय योजना में आधारभूत उद्योग जैसे—लोहे एवं स्पात उद्योग मशीन बनाने के उद्योग आदि पर विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि देश के भावी औद्योगीकरण के लिए उनकी उन्नति आवश्यक है।

(३) बेरोजगारी को दूर करना—द्वितीय पंच वर्षीय योजना में लगभग १ करोड़ व्यक्तियों को रोजगार दिलाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

(४) समाजवादी अर्थ-व्यवस्था—आर्थिक दृष्टि से समाजवादी व्यवस्था को हमने अपना ध्येय मान लिया है अतः अब हम लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् सामाजिक हित की दृष्टि से आगे बढ़ना है। आर्थिक विकास का अधिकाधिक लाभ उन लोगों को मिलना चाहिए जो अभी तक इससे वंचित रहे हैं। इस प्रकार धन तथा आर्थिक शक्ति भी किंचित लोगों के पास इकट्ठा नहीं होना चाहिए। अब ऐसी व्यवस्था की

आवश्यकता है जिसमें अभी तक का उपेक्षित व्यक्ति सगठित प्रयत्न से अपने को और अपने देश को धन धान्य से सम्पन्न बना सके ।

योजना की संक्षिप्त रूपरेखा—

इस योजना में कुल ७,२०० करोड रुपया खर्च होगा, जिसमें से ४,८०० करोड रु० सरकार तथा २,४०० करोड रुपया निजी उद्योगपति खर्च करेंगे । इस प्रकार जहां प्रथम योजना में सरकार व उद्योगपतियों का भाग ५० ५०% था, वहाँ दूसरी योजना में वह क्रमश. ६१ व ३९% है । सरकारी क्षेत्र के कुल ४,८०० करोड रुपए में से केन्द्रीय सरकार २,५५९ करोड रुपया और राज्य सरकार २,२४१ करोड रुपया खर्च करेंगी । जिन मदों पर रुपया व्यय किया जावेगा, उनका ब्यौरा इस प्रकार है—

	कुल व्यय (करोड रु०)	%
(१) कृषि तथा सामुदायिक विकास	५६८	११·८
(२) सिंचाई और बिजली	६१३	१९·०
(३) उद्योग और खनिज	८९०	१८ ५
(४) यातायात और सन्देशवाहन	१,३८५	२८·९
(५) समाज सेवायें	९४५	१९·७
(६) विविध	९९	२ १
योग	४,८००	१००·०

उपर्युक्त आंकडों से स्पष्ट है कि द्वितीय पंच-वर्षीय योजनावधि में उद्योगों, खनिज, यातायात तथा सन्देशवाहन के साधनों के विकास पर पर्याप्त जोर दिया गया है । योजना के कुल व्यय का लगभग आधा इनके विकास पर व्यय किया जाएगा, जबकि प्रथम योजना में कुल व्यय का ¼ भाग ही इन पर व्यय किया गया था । यदि बिजली को भी औद्योगिक विकास का अङ्ग मान लिया जाए, तो यह व्यय कुल व्यय का लगभग ५६% हो जाता है ।

सार्वजनिक क्षेत्र के अलावा निजी क्षेत्र के विकास कार्यों पर जो व्यय होगा, उसका ब्यौरा इस प्रकार है—

(१) सगठित उद्योग और खानें	५७५ करोड रुपए
(२) बागान, बिजली उद्योग और रेलो को छोडकर अन्य यातायात के साधन	१२५ ,, ,,
(३) निर्माणी उद्योग	१,००० ,, ,,
(४) कृषि तथा ग्राम और छोटे पैमाने के उद्योग	३०० ,, ,,
(५) स्टॉक	४०० ,, ,,
कुल योग	२,४०० ,, ,,

इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र में मिलाकर दूसरी पच-वर्षीय योजना पर केवल ७,२०० करोड रुपए व्यय होने का अनुमान है।

योजना का वित्तीय प्रबन्ध—

द्वितीय पच वर्षीय योजना के सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिये निम्न साधनो से धन प्राप्त किया जाएगा।

क्रम सख्या	विवरण	करोड रुपये	
१	घरेलू साधन		
	१—चालू राजस्व से बचत		८००
	(क) कर की वर्तमान दरो के अनुसार	३५०	
	(ख) आन्तरिक करो मे	४५०	
	२—जनता से ऋण के रूप मे		१,२००
	(क) बाजार से ऋण	७००	
	(ख) छोटी बचत	५००	
	३—बजट के अन्य साधनों से		४००
	(क) विकास काय में रैलो का भाग	१५०	
२	(ख) भविष्य निधि तथा जमा खाते	२५०	
	विदेशो से		८००
३	घाटे का बजट बनाकर		१,२००
४	कमी जो स्वदेश में नए साधनों द्वारा पूरी करनी होगी		४००
	कुल योग		४,८००

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पर जो व्यय होगा उसका लगभग

आधा भाग घरेलू साधनो से पूरा किया जायेगा। शेप का ५% भाग घाटे का बजट बनाकर तथा ३३% विदेशी सहायता से पूरा किया जायगा।

द्वितीय योजना के निर्धारित लक्ष्य—

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि उत्पादन में १८% वृद्धि का लक्ष्य है, अनाज की पैदावार १५ प्रतिशत अथवा एक करोड टन बढनी है, कपास की ३४ प्रतिशत, शक्कर की २६ प्रतिशत और तिलहन की २१ प्रतिशत। इस समय ८ करोड आदमी राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे आते है। दूसरी योजना मे ३२ करोड ५० लाख आ जायेंगे। पहली योजना में १ करोड ७० एकड भूमि में सिचाई हुई थी, दूसरी में २ करोड १० लाख एकड अधिक जमीन में सिंचाई की व्यवस्था हो जायगी। पहली योजना में शुरू में २३ लाख किलो-वाट बिजली पैदा होती थी। सन् १९६०-६१ तक ३४ लाख किलोवाट बिजली और पैदा होने लगेगी तथा कुल मिलाकर ६८ लाख किलोवाट हो जायगी। रेलो द्वारा यात्रियो के यातायात मे तथा माल की ढुलाई में ३४% वृद्धि होने का अनुमान है, यद्यपि आवश्यकता यह होगी कि इससे भी अधिक वृद्धि की जाय। सन् १९५८-५९ में १३ लाख टन होने लगेगा। इसी प्रकार कोयले का उत्पादन ३७० लाख टन से बढ कर ६०० लाख टन व सीमेन्ट का ४८ लाख टन से बढ कर १०० लाख टन हो जायगा। इस प्रकार उत्पादन सामग्री की तैयारी कुल १५०% बढने की आशा है। राष्ट्रीय आय मे भी २५% वृद्धि की आशा है, अर्थात् सन् १९५१-५६ में १०,८०० करोड रुपये से बढकर सन् १९६०-६१ मे यह १,३४,०८० करोड रुपये हो जायगी। प्रति व्यक्ति आय २८० रुपये से १८% बढकर ३३० रुपये हो जायगी।

द्वितीय योजना की प्रगति—

द्वितीय योजना के प्रथम वर्ष में जिस प्रकार कार्य चला उसके अध्ययन से यह प्रगट होता है कि यद्यपि इस अवधि मे सामान्य दशाये बहुत अनुकूल नही थी तथापि कुछ क्षेत्रो में बहुत प्रगति हुई।

कृषि कार्य-क्रम—

खाद्य उत्पादन कार्यक्रम के अनुसार, सन् १९५६-५७ में २·५ मि० टन की वृद्धि होने की आशा थी, जबकि वास्तविक वृद्धि केवल १·४ मि० टन हुई और सन् १९५६-५७ में कुल खाद्य उत्पादन ६६·२ मि० टन रहा, जबकि सन् १९५५-५६ मे वह ६४·८ मि० टन था। सन् १९५५-५६ की अपेक्षा चावल और गेहूँ का उत्पादन क्रमशः १·३ मि० एव ३ मि० टन अधिक हुआ। मोटे अनाजो का उत्पादन बिलकुल नही बढ सका है और दालो का उत्पादन तो ·२ मि० टन घट गया है। व्यापारिक फसलो के सम्बन्ध में स्थिति कुछ अच्छी रही। तिलहन का उत्पादन ५·८९ मि० टन रहा,

जबकि सन् १९५५ ५६ म वह ५ ६६ मि० टन था। कपास का उत्पादन ४८ लाख गाँठ हुआ, जोकि पिछले वष से ८ लाख गाँठ अधिक है। गन्ने का उत्पादन ६ ३ मि० टन हुआ, जाकि सन् १९५५ ५६ के स्तर से '४ मि० टन अधिक है और जूट का उत्पादन भी कुछ थोडा सा बढा है। पिछले वर्ष उत्पादन ४१ ९७ लाख गाँठें था, जबकि इस वष वह ४२ २१ लाख गाँठ हुआ।

सन् १९५६ ५७ म ४७५ बीज फार्मों की स्थापना के लिये स्वीकृति दी गई। सन् १९५६ के अन्त तक जापानी ढग से धान की खेती के अन्तर्गत १४ ५ लाख एकड भूमि लाई गई, जबकि सन् १९५६ ५७ के लिये लक्ष्य २० लाख एकड का रखा गया था। सन् १९५६ म ६'७५ लाख टन अमोनियम सलफेट और एक लाख टन फॉस्फेट प्रयोग किया गया, जबकि सन् १९५५ में यह प्रयोग क्रमश ५ लाख टन और ७८ ००० था। केन्द्रीय ट्रेक्टर सगठन द्वारा ८७,००० एकड कॉस और जगल भूमि पर भूमि सुधार का काय किया जायगा। द्वितीय पच वर्षीय योजना की अवधि म केन्द्रीय गोदाम निगम देश भर में १०० गोदाम खोलेगा, जिनमें ५ ००० टन से २०,००० टन तक माल जमा किया जा सकता है। इसी प्रकार १३ राज्य निगम मिलकर २०० गोदाम खोलेंगे, जिनमें २,००० टन स लेकर १०,००० टन तक माल रखा जा सकेगा।

सामुदायिक योजनायें एव राष्ट्रीय विस्तार सेवा—

सन् १९५६ ५७ में ४९५ राष्ट्रीय विस्तार सेवा खडा (जिनमें ४९,६०० गाव और ३२ ७ मि० जन सख्या का समावेश है) पर काय आरम्भ किया गया। इसके अतिरिक्त २५० सामुदायिक विकास खड राष्ट्रीय विस्तार सेवा खडा स बनाये गये, जिनके अन्तगत ३५,७५२ गाँव और १८'३ मि० जन सख्या प्रभावित हाती है। सन् १९५२ और सन् १९५३ म चालू किये गये क्रमश ५५ सामुदायिक याजनायें आर ५३ सामुदायिक विकास खड अक्टूबर सन् १९५६ में पूरा हो गय।

सिचाई एव शक्ति का उत्पादन—

मध्यम एव बडी सिचाई योजनाओ मे सन् १९५६ ५७ में १'५ मि० एकड अतिरिक्त भूमि पर सिचाई उपलब्ध हुई तथा छोटी सिचाई योजनाओ की पूर्ति मे १ ६ मि० एकड पर सिचाई और हुई। वर्ष के दौरान में लगभग ६० बडी और मध्यम योजनायें पूरी की गई। हीराकुड योजना का सन् १९५७ म उद्घाटन किया गया। २४,००० किलोवाट का प्रथम उत्पादन यत्र दिसम्बर सन् १९५६ म लगाया गया। मार्च सन् १९५७ तक हीराकुड नहर व्यवस्था द्वारा १,५७,००० एकड भूमि पर सिचाई की सुविधा विस्तृत की गई। सन् १९५६ ५७ के अन्त तक कुल विद्युत उत्पादन क्षमता ३ ६६ मि० किलोवाट हो गई थी।

औद्योगिक उत्पादन—

सन् १६५५ की अपेक्षा सन् १६५६ में उत्पादन अधिक हुआ। औद्योगिक उत्पादन के संशोधित सूची अंक ने १२२.१ से १३२.७ तक वृद्धि दिखाई। रेडियो रिसीवरों का उत्पादन ८६% अधिक रहा। साइकिल, ओटोमोबाइल, इलैक्ट्रिक मोटर, ट्रान्सफार्मर और शक्ति संचालित पम्पों के उत्पादन में ३३ से ६०% के मध्य में वृद्धि हुई। सीमेण्ट, चीनी और डीजल इंजिन आदि ८ अन्य उद्योगों के उत्पादन में लगभग १० से २५% वृद्धि हुई। सीमेन्ट का उत्पादन सन् १६५६-५७ में ४.६ मि० टन था, जबकि गत वर्ष वह ४.४५ मि० टन था। इसी प्रकार चीनी का उत्पादन इस वर्ष १.६५ मि० टन हुआ, जबकि गत वर्ष १.६१ मि० टन था। निर्मित स्टील का उत्पादन १.३१ मि० टन हुआ, जो ४% अधिक था और मिल के बने सूती कपड़े का उत्पादन ५,२८१ मि० गज था, जो गत वर्ष की अपेक्षा ४% अधिक हुआ। कमाई हुई खालों और जूता के उत्पादन में ५% वृद्धि हुई। चाय में वृद्धि नहीं के बराबर थी। हैन्डलूम उत्पादन सन् १६५५ में १,४७३ मि० गज से बढ़ कर सन् १६५६ में १,५४१ मि० गज तक पहुंच गया। सन् १६५६-५७ में ८७ मील लम्बी नई रेल्वे लाइनें ट्रैफिक के लिए खोली गई और ५२४ मील नई लाइनों का निर्माण प्रगति में है। ७०० मील दुहरे पथ का कार्य भी चल रहा है। सन् १६५६-५७ में ५५७ लोकोमोटिव, १,६३१ डिब्बों और २७,१८४ वैगनों के लिये आदेश दिये गए।

१५० मील लम्बे छूटे हुए टुकड़ों और ८ बड़े पुलों का निर्माण, ८०० मील विद्यमान टुकड़ों का सुधार और २०० मील सुधरे टुकड़ों का दोराहा आवागमन के लिए विस्तृत करने का लक्ष्य था जो काफी सीमा तक पूरा हो गया। नागरिक हवाई यातायात का कार्यक्रम निश्चयानुसार ही चला। सन् १६५६-५७ में, एयर इण्डिया इन्टरनेशनल कॉर्पोरेशन ने ३ सुपर कान्स्टेलेशन्स प्राप्त किये और ३ बोइंग जेट एयरक्राफ्ट के लिए आदेश दिया। इण्डिया एयर लाइन्स कॉर्पोरेशन ने सन् १६५६-५७ में ५ विक्स विस्काउंट्स के लिये महत्वपूर्ण मार्गों पर चलाने के हेतु आदेश दिया है। कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता पर अधिक ध्यान दिया गया।

यद्यपि कुछ लोगों के विचार से हमारी द्वितीय पंच वर्षीय योजना अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी है, परन्तु वास्तव में ऐसा कहना भूल है। देश के विशाल स्वरूप को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे निर्धारित लक्ष्य अधिक ऊँचे हैं। अभी तक हमें जो सफलता मिली है वह सन्तोषजनक है और साथ में प्रेरणात्मक भी। हमें आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि इस योजना अवधि के व्यतीत होने पर हम अपनी चहुँमुखी प्रगति का अनुभव करेंगे।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत विदेशी सहायता एवं घाटे की अर्थ व्यवस्था

द्वितीय योजना के अन्तगत केवल सावजनिक क्षेत्र में ४,८०० करोड रुपया व्यय होन का अनुमान है। इतनी बडी धनराशि प्राप्त करन के लिए जिन विभिन्न साधनों की शरण ली गई है, उनमें से विदेशी सहायता एव घाटे का राजस्वन भी है। विदेशी सहायता से ८०० करोड रुपया और घाटे के राजस्वन से १,८०० करोड रुपया प्राप्त करने की आशा की गई है, जानि कुल व्यय का ५२% है। प्रथम पच-वर्षीय योजना में विदेशी सहायता से १६७ करोड रुपया तथा घाटे के राजस्वन मे १४५ करोड रुपया प्राप्त किया गया था, अतः यह स्पष्ट है कि द्वितीय पच वर्षीय योजना में इन दोनों साधनो को अधिक महत्त्व का स्थान दिया गया है।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के पहले दो वर्षों में योजना पर १,४९६ करोड रुपया खर्च किया गया। चालू वर्ष के खर्च का योग ९६० करोड रुपया हो सकता है। इस प्रकार तीन वर्षों के खर्च का योग लगभग २,४५६ करोड रुपया होता है। प्रथम तीन वर्षों में होने वाले २,४५६ करोड रुपयों में से विदेशी सहायता एव घाटे की वित्त व्यवस्था स क्रमश. ४३८ और ६१७ करोड रुपया मिलने की आशा है। आयोजन के लिए उपलब्ध साधन अब तक आशा से कही कम रहे है। सन् १९५७-५८ में बजट में ४६४ करोड रु० का घाटा रहा था। सन् १९५८-५९ के बजट में ऋणो तथा छोटी बचत म काफी अधिक धन मिलने की आशा की गई है। सन् १९५७-५८ की अपेक्षा घाटे की वित्त व्यवस्था में २५० करोड रु० की कमी हो जायगी, परन्तु विदेशी सहायता जहा सन् १९५७-५८ में लगभग १०० करोड रु० की प्राप्ति हुई थी वहाँ चालू वर्ष मे वह बढकर ३०० करोड रु० हो जाने की आशा है। इन आँकडो से यह स्पष्ट है कि योजना की सफलता में विदेशी सहायता तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का बहुत अधिक महत्त्व है।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत विदेशी सहायता—

जिस समय द्वितीय पच वर्षीय योजना का निर्माण किया गया था, उसी समय राजनैतिक क्षेत्रों में इस विवाद का बोलबाला था कि भारत सरकार के लिए ८०० करोड रुपये की विदेशी सहायता प्राप्त करना कठिन समस्या है। योजना के प्रारम्भिक-दो वर्षों में ही कुछ ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसके कारण विदेशी भुगतान के सम्बन्ध मे एक सकट सा पैदा हो गया था। इस आर्थिक सकट का दूर करने के उद्देश्य से ही सितम्बर सन् १९५७ में हमारे वित्त मन्त्री श्री टी० टी० कृष्णामाचारी अमेरिका, कनाडा, इगलैंड तथा पश्चिमी जर्मनी के दौरे पर गये थे और उन देशो में उन्होंने इस बात की छान बीन की कि वहाँ से भारत को किस सीमा तक आर्थिक

सहायता मिल सकती है। अमेरिका में उन्हें लेशमात्र भी सफलता न मिली। उनकी असफलता के दो मुख्य कारण रहे। प्रथम तो, भारत की आर्थिक स्थिति, जो समाजवादी अर्थ-व्यवस्था पर आधारित है और जिसके अन्तर्गत शनैः शनैः उद्योग धन्धो का राष्ट्रीयकरण तथा सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार सम्मिलित है, के कारण अमेरिका के पूंजीपति तथा अधिकोष आदि भारत में अपनी पूंजी का विनियोग करने म हिचकते हैं। दूसरे, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की वैदेशिक नीति से अमेरिका सहमत नही है और इसके परिणामस्वरूप वह भारत को उस सीमा तक सहायता करने के लिए तैयार नही है, जिस सीमा तक भारत को उसकी सहायता की आवश्यकता है। भारत को केवल दीर्घकालीन ऋण के रूप म विदेशी सहायता की आवश्यकता है, जिसे वह ईमानदार राष्ट्र की भाँति कुछ समय के बाद चुका देगा। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत की साख आज काफी ऊँची है, किन्तु इतना होते हुए भी अमेरिका, कनाडा अथवा इङ्गलैंड में हमारे टी० टी० कृष्णमाचारी को विशेष सहायता नही मिली। हाँ, पश्चिमी जर्मनी, जापान तथा यूगोस्लाविया आदि देशो ने भारत को आर्थिक सहायता देने का वचन दिया है। यह सहायता किस मात्रा में और किस रूप में प्रदान की जायेगी, इस सम्बन्ध में सम्बन्धित देशो के बीच वार्ता शुरू हो गई है। विदेशी भुगतान के घाटे को कम करने के लिए भारत सरकार ने कुछ वस्तुओ, जिनमें चीनी, काली मिर्च, काजू तथा कपडा आदि सम्मिलित हैं, के निर्यात को बढाने की व्यवस्था की है। जापान से एक समझौता किया गया है, जिसके अनुसार भारत जापान को कच्चा लोहा निर्यात करेगा और बदले मे जापान हमारे देश को मशीने देगा। श्री कृष्णमाचारी के स्वदेश लौटने के बाद विभिन्न राज्य सरकारो को ये आदेश जारी किये गये है कि वे खनिज पदार्थों को अधिक मात्रा में निकालने के उद्देश्य से उन सभी व्यक्तियो को उदारतापूर्वक लाइसेन्स प्रदान करें, जिनके आवेदन पत्र राज्य सरकारो के विचाराधीन है। १ नवम्बर सन् १६५७ को भारत सरकार ने एक आदेश द्वारा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट मे कुछ आवश्यक सशोधन किये हैं, जिनके अनुसार रिजर्व बैंक के पास विदेशी प्रतिभूतियाँ तथा सोने की न्यूनतम मात्रा ३०० करोड रुपये से घटाकर २०० करोड कर दी गई है। इस प्रकार यह १०० करोड रुपया योजना की विदेशी मुद्रा सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने में प्रयोग हो सकेगा।

घाटे की वित्त व्यवस्था—

साधनो की कमी के कारण आयोजना के शुरू के वर्षों म घाटे की वित्त व्यवस्था का अत्यधिक आश्रय लेना पडा है। एक समय इस पाँच वर्षों में अधिक से अधिक ६०० करोड रु० तक रखने का था, परन्तु अब यह निश्चित लगता है कि यह राशि १,२०० करोड रु० तक हो जायगी, जैसा कि पहले अनुमान किया गया था। सच तो यह है कि यदि (क) साधनो में और अधिक वृद्धि करने तथा (ख) आयोजना

व खर्चों को सीमित रखने के प्रयत्न न किये गये तो घाटे की राशि और भी अधिक बढ़ सकती है।

यदि देश के पास विदेशी विनिमय का बहुत अधिक भण्डार सुरक्षित हो तो कार्यक्रम तैयार करने में कुछ ढिलाई की जा सकती है, परन्तु वर्तमान स्थिति में तो ऐसा करना सम्भव नहीं है। अप्रैल सन् १९६० और मार्च सन् १९५८ के बीच रिजर्व बैंक का विदेशी विनिमय पावना घट कर ४७९ करोड रु० रह गया। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के नाम म जमा ६५ करोड रु० की राशि का भी उपयोग कर लिया गया है। द्वितीय आयोजन आरम्भ होने से अब तक जितनी विदेशी सहायता स्वीकृत हो चुकी है उसका योग ६७६ करोड रु० है। आयोजन की शेष अवधि म विदेशी विनिमय की जो आवश्यकता होगी उसे पूरा करने के लिये ५०० करोड रु० की विदेशी सहायता और भी मिलनी चाहिए। आयोजना की अत्यावश्यक सरकारी प्रायोजनाओं के लिये भी २९६ करोड रु० की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध म प्रोफेसर शिनोय ने इस बात पर जोर दिया था कि घाटे के राजस्वन से देश में मुद्रा स्फीति का भय है। इसके परिणामस्वरूप मूल्यों में जो वृद्धि होगी उसका योजना पर बुरा प्रभाव पड सकता है। सम्भव है कि सरकार ऐसी स्थिति का सामना न कर सके। श्री शिनोय की राय के विपरीत अन्य अर्थशास्त्रियों ने घाटे के राजस्वन का समर्थन किया और यह सुझाव दिया था कि प्रारम्भ से ही सरकार को सचेत रहना चाहिए और मुद्रा स्फीति की रोकथाम के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए। इसी दृष्टि से सन् १९५६ में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट में संशोधन किया गया, जिससे बैंक को अधिक नोट छापने की स्वतन्त्रता मिल गई। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक को साख नियन्त्रण के लिए अधिक व्यापक अधिकार प्रदान कर दिये गये।

द्वितीय योजना के पहले वर्ष मे ही मुद्रा प्रसार के लक्षण नजर आने लगे। फलत सरकार को अपनी नीति म कुछ परिवर्तन करना पडा। श्री कृष्णमाचारी ने घाटे की अर्थव्यवस्था के स्थान पर अतिरिक्त कर लगाना अधिक उपयुक्त बताया। इस नीति के अनुसार सन् १९५७ ५८ के बजट में कई नये करों की व्यवस्था की गई। इतना होने पर भी योजना के अन्तिम वर्षों में सरकार को अधिक मात्रा में घाटे के बजट का सहारा लेना पडेगा, क्योंकि आन्तरिक ऋण एव बचत से भी आशानुकूल धन प्राप्त नहीं हो सकता।

जब से आयोजना आरम्भ हुई है, करों मे काफी वृद्धि हो गई है। अब तक केन्द्र ने जो कर लगाये है उनमे पाँच वर्षों मे लगभग ७२५ करोड रु० की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार इन पाँच वर्षों में राज्यों को करो से १७३ करोड रु० की प्राप्ति होगी। इस

प्रकार आयोजना की अवधि म करा से कुल प्राप्ति ६०० करोड रु० के लगभग होगी। करा म होन वाली इस प्राप्ति का बहुत बडा भाग अन्य मदा पर खच हागा जिनम प्रति रक्षा का खच प्रमुख है। करा से इतनी अधिक प्राप्ति करन का प्रयत्न किये जान पर भी केन्द्रीय याजनाओ के खच क लिय केवल ४५ करोड रु० हा अधिक प्राप्त हो सकेंगे। इसका यह अथ हुआ कि बहुत कम राशि उपलब्ध हो सकेगा। राज्या म अतिरिक्त करा से आयोजना अवधि म १७३ करोड रु० प्राप्त हागे। वित्त आयोग क निश्चयानुसार राज्यो को १६० करोड रु० के अतिरिक्त केन्द्रीय करा म स भी काफी अधिक हिस्सा मिलना था। इतन पर भी आयोजना पर खच करन के लिय राज्या क पास आशा म कही कम धन उपलब्ध हा सका है। यदि यह मान ल कि राज्य करो से २२५ करोड रु० प्राप्त कर सकते ता वे अपन राजस्व म से आयाजना पर सम्भवत ३५० करोड रु० खच कर सकगे जबकि आशा ३७० करोड रु० खच करन की थी। पहले तान वर्षो म केन्द्र तथा राज्यो क बजटो म आयोजना क लिए जो धन रखा जायगा उसका योग ११०० करोड रु० होगा जबकि पाच वर्षो का अनुदान २४०० करोड रु० था इस प्रकार ४०० करोड रु० की कमा रह जाता है।

उपसहार —

अत यह स्पष्ट है कि ४८०० करोड रुपए की इस योजना की सफलता के लिए धात्र की अथ व्यवस्था का एक महत्वपूण स्थान है। इसीलिए यदि पर्याप्त मात्रा म विदेशी सहायता न मिली तो योजना म कमी की जायगी और एसा अनुमान है कि निकट भविष्य म हमारे पास विदेशी मुद्रा कोप कुछ भी नहा रह जायगा। द्वितीय पच वर्षीय याजना की रिपोट म बताया गया है कि अप्रल सन् १९५६ म सितम्बर सन् १९५७ की अवधि म ५६१ करोड रुपए हम शोधनाशेष म अधिक देन पड। अक्टूबर सन् १९५७ स माच सन् १९५८ तक यह कमी २३० करोड रुपए की हुई। यदि विश्व मुद्रा कोप के ६५ करोड रुपए को भी इसम सम्मिलित कर लिया जाय तो पिछले दो वर्षो म लगभग ६ अरब रुपए का ह्रास विदेशी मुद्रा म हुआ है। सन १९५८ ५९ के आर्थिक वष के पहले दो महीना म भी हमारे विदेशी मुद्रा कोप म ह्रास शुरू हुआ है। इन दो महीना अप्रैल और मई म हम अपन विदेशी मुद्रा कोष म स ४२ करोड रुपया निकाल चुक हे। ३० मई सन् १९५८ को हमारा विदेशी मुद्रा कोप २४२ ४२ करोड रुपया रह गया था।

STANDARD QUESTIONS

1 Summarise carefully the principal objectives of the Second

Five Year Plan In what respects is the second plan different from the First Five Year Plan ?

2 Bring out clearly the essential features of the Second Five Year Plan

3 The Second Five Year Plan is ambitious Comment

4 Write an essay on deficit financing and the problem of foreign exchange with special reference to the Second Five Year Plan

5 Describe briefly the principal achievement of Second Five Year Plan

अध्याय २६

तृतीय पंच-वर्षीय योजना

(Third Five Year Plan)

प्रारम्भिक—

गत् दस वर्षों में पहली और दूसरी पंच वर्षीय योजनाओं के द्वारा देश के प्राकृतिक प्रसाधनों और जनता की शक्ति को राष्ट्र के विकास में लगाने की कोशिश की गई है। प्रारम्भ में इस बात का प्रयत्न किया गया कि योजना का उद्देश्य केवल उत्पादन को बढ़ाना और देश की आर्थिक दशा सुधारना ही नहीं है, वरन् स्वतन्त्रता *और लोकतन्त्र पर आधारित ऐसी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था की रचना करना है,* जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे। देश को दूसरे महायुद्ध और बँटवारे से जो हानि पहुँची थी, पहली योजना में उसे पूरा करने की और आर्थिक व्यवस्था की नींव मजबूत करने की कोशिश की गई और संविधान में दिए हुए निर्देशक तत्वों के अनुरूप सामाजिक और और आर्थिक नीतियाँ भी ग्रहण की गयीं। सामुदायिक विकास योजना का आरम्भ और भूमि सुधार इस योजना की उल्लेखनीय बातें हैं। दूसरी योजना में पहली योजना *की ही नीतियों को जारी रखते हुए पैदावार बढ़ाने, विकास में अधिक रुपया लगाने* और लोगों को अधिक काम देने की कोशिश की गई। इसमें आर्थिक उन्नति की गति को तेज करने पर, बुनियादी उद्योगों की स्थापना पर, रोजगार के साधनों को बढ़ाने पर, आय और धन की विषमताओं को कम करने पर और आर्थिक शक्ति को थोड़े से लोगों के हाथों में जाने से रोकने पर, जोर दिया गया। पहली योजना में राष्ट्रीय आय में प्रति वर्ष ३॥ प्रतिशत और दूसरी योजना में प्रति वर्ष ४ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

तृतीय पंच-वर्षीय योजना की विशेषतायें

योजना आयोग वास्तव में बधाई का पात्र है जिसने ११·२५० करोड़ रु० की तृतीय पंच-वर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार करके भारत की जनता की समृद्धि के द्वार खोल दिए हैं। हमारी तीसरी पंच-वर्षीय योजना, देश की पंच-वर्षीय योजनाओं *की कड़ी में मध्य की योजना है। यह योजना बहुत वृहदाकार योजना है।* इस

योजना का लक्ष्य प्रथम और द्वितीय योजनाओं के सम्मिलित लक्ष्यों से भी बहुत ऊंचा है। पहली दो योजनायें क्रमश ४३ और २८ अरब रुपये की थी। तृतीय योजना १०२ अरब रुपये की है। इसका कार्यकाल १ अप्रैल सन् १९६१ से ३१ मार्च १९६६ तक रखा गया है। इसका मुख्य लक्ष्य है, सन् १९६५ तक अन्न के मामले म देश को स्वावलम्बी बनाना। इस योजना के पूर्ण होने पर हम विदेशो से अनाज का आयात नहीं करना पडेगा। निम्न पंक्तियाँ तृतीय पच वर्षीय योजना के प्रमुख पाँच लक्ष्यो को बतलाती हे —

तृतीय योजना के लक्ष्य

(१) राष्ट्रीय आय पाँच प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब मे पाँच वर्षों मे २५ प्रतिशत बढायी जाये।

(२) खाद्यान्न के सम्बन्ध म स्वावलम्बी बना जाय।

(३) फौलाद, इधन और बिजली जैसे आधारभूत उद्योगो का बढाया जाय जिसस देश का औद्योगीकरण आन्तरिक स्रोतो से ही किया जा सके।

(४) रोजगारी की सम्भावनायें बढा कर जनता के हाथो का पूरा पूरा उपयोग किया जाय।

(५) आय और सपत्ति का फर्क कम किया जाय और आर्थिक शक्ति का समुचित वितरण हो।

प्रस्तुत योजना, जो योजना आयोग द्वारा २६५ पृष्ठ की पुस्तक मे विस्तार-पूर्वक समझाई गयी है, पिछली योजनाओं की अपेक्षा काफी विस्तृत है। भारत-चीन के तनावपूर्ण सम्बन्धो के कारण रक्षा व्यय अधिक बढ गया है जिससे अब प्लान पर कुल विनियोग १०,२०० करोड रु० व चालू खर्चा १,०५० करोड रुपये—कुल मिलाकर ११,२५० करोड रुपया खर्च किया जायगा। इसमें निजी क्षेत्र द्वारा किया जाने वाला ४,००० करोड रुपये का विनियोग भी सम्मिलित है। निम्नलिखित तालिकायें द्वितीय व तृतीय पच वर्षीय योजनाओं में सरकारी व निजी क्षेत्र में किए जाने वाले व्यय के विभाजन पर प्रकाश डालती हैं —

तालिका I

दूसरी और तीसरी योजना मे सरकारी क्षेत्र मे व्यय का विभाजन

(करोड रु० में)

	व्यय		प्रतिशत	
	दूसरी योजना	तीसरी याजना	दूसरी याजना	तीसरी योजना
१ कृषि और छोटी सिंचाई-योजनाएँ	३२०	६२५	६ ९	८ ६
२. सामुदायिक विकास और सहकार	२१०	४००	४·६	५ ५
३ बडी और मध्यम सिंचाई योजनाए	४५०	६५०	९·८	९ ०
४. जोड १, २ ३	९८०	१६७५	२१ ३	३२ १
५. *बिजली*	४१०	९२५	८·९	१२ ८
६ ग्राम और लघु उद्योग	१८०	२५०	३ ९	३ ४
७. उद्योग और खनिज	८८०	१५००	१९ १	२०·७
८ परिवहन और सचार	१२९०	१४५०	२८·१	२०·०
९. जोड ५ स ८	२७६०	४१२५	६० ०	५६ ९
१० सामाजिक सेवाएँ	८६०	१२५०	१८ ७	१७ २
११ उत्पादन में रुकावट न आना	——	२००	——	२ ८
१२ कुल जोड	४६००	७२५०	१००	१००

तालिका II

दूसरी और तीसरी योजना मे निजी क्षेत्र मे व्यय का विभाजन

करोड रु० में

	दूसरी योजना	तीसरी याजना
१. कृषि (सिंचाई सहित)	६३५	८५०
२ बिजली	४०	५०
३. परिवहन	१३५	२००
४. ग्राम और लघु उद्याग	२ ५	३२५

५ बड और मध्यम उद्योग और खनिज	७००	१०५०
६ आवास और अन्य निर्माण काय	१०००	११२५
७ उत्पादन म रुकावट न आने देने के लिए कच्चा या अद्ध तैयार माल	५२५	६००
जोड	३३००	४२००

इसम सरकारी क्षेत्र से दिए गए २०० करोड रु० भी शामिल है।

उपयु त तालिका के विश्लेषण स पच वर्षीय योजना की विशेषतायें स्पष्ट है जो निम्नलिखित है —

समाजवादी कलेवर—

तृतीय योजना का प्रमुख उद्द श्य धन और आय की विषमता को कम करने का उपाय निकालना है जिससे समाज का ढाचा समाजवादी ढग (Socialistic Pattern of Society) हो सके जिसम सब लोगो को पूण प्रगति करने का अवसर मिल सके। समाजवादी ढाचे का अथ यह है कि हमारी नीति एसी होनी चाहिए जिससे समस्त समाज का कल्याण हो केवल मुट्ठी भर व्यक्तियो का नही।

कृषि को प्राथमिकता—

योजना म कृषि को प्रथम स्थान दिया गया है। अनाज में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और उद्योगो तथा निर्यात के लिए कच्चे माल की पैदावार बढाना तीसरी योजना का मुख्य उद्देश्य है।

तीसरी योजना मे कृषि उत्पादन का लक्ष्य

		वार्षिक	उत्पादन
		१९६० ६१ (अनुमानित)	१९६५ ६६ लक्ष्य
अनाज	(लाख टनो में)	७५०	१,०००–१०५०
तलहन	( )	७२	९२– ९५
गन्ना (गुड क रूप म)	( )	७२	९०– ९३
कपास	(,)	५४	७२
पटसन	(लाख गाठो म)	५५	६५

इसके अतिरिक्त फल शाक दूध मछली, मास, अण्डा, नारियल, सुपारी काजू कालीमिच तम्बाकू, चमडा और लकडी आदि की भी पैदावार बढान का पूरी कोशिश की जायगी।

कृषि की अधिक से अधिक उन्नति होनी चाहिए, जिससे गाँव के लोग देश के अन्य लोगों की अपेक्षा पीछे न पड जाएं। योजना में कृषि और सामुदायिक विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में १,०२५ करोड सिंचाई की बडी और और मध्यम योजनाओ के लिए ६५० करोड रु० रखे गए हैं। इसके अलावा अनुमान है कि लोग निजी और से भी इन कामो में ८०० करोड रु० लगायेंगे। यदि आगे चलकर यह प्रतीत हुआ कि गांवो में और तेजी से उन्नति करने और जनशक्ति का पूरा उपयोग करने के लिए और रुपये लगाने की जरूरत है तो इसका भी बन्दोबस्त किया जाएगा। खेती की पैदावार म ३० से ३३ प्रतिशत की वृद्धि की जाएगी।

इसके अलावा फल, शाक, दूध, मछली, मास, अण्डा, नारियल, सुपारी, काजू, कालीमिर्च, तम्बाकू, चपडा और लकडी आदि की भी पैदावार बढाने की पूरी कोशिश की जाएगी।

अनाज की पैदावार बढाने का लक्ष्य इस हिसाब से रखा गया है कि प्रति व्यक्ति प्रति दिन औसत १५ अप्रैल औंस अनाज और ३ औंस दाल खाने को मिल सके तथा सकट के समय के लिए भी कुछ अनाज बच जाए कपास की पैदावार का जो लक्ष्य है उसस प्रति व्यक्ति प्रति वप औसत १७॥ गज के हिसाब से कपडा मिल सकेगा और निर्यात के लिए भी कुछ बचेगा।

तृतीय योजना क अन्त तक सिंचाई का क्षत्रफल ९ करोड एकड हो जाएगा, जबकि दूसरी योजना के अन्त में यह ७ कराड एकड होगा। करीब ४ करोड एकड में बरानी खेती की जाएगी। १ कराड ३० लाख एकड और जमीन का कटाव आदि से बचाने का काम किया जाएगा। सन् १९६० ६१ तक करीब ३ लाख ६० हजार टन नेत्रजनयुक्त खाद का प्रयोग होन का अनुमान है, १९६५ ६६ में १० लाख टन हो जाएगा। ७॥ करोड एकड जमीन में पौधो को बचाने की व्यवस्था की जाएगी। अक्टूब, १९६३ तक देश के सब गांवों में सामुदायिक विकास का काम चल पडेगा। सहकारी सगठन बढाया जाएगा और खेती के लिए सहकारी समितियो द्वारा अधिक ऋण दिलवाये जाएँगे। पशुओ की नस्ल सुधार के क्षेत्र में कृत्रिम गर्भाधान के ३७१ केन्द्र कायम किए जा चुकेंगे।

कच्चा पटसन ६५ लाख गाँठ, चाय ८५,००,००,००० पौंड, कपास ७२ लाख गाँठ, कहवा ८०,००० टन, तेल व तिलहन ९२ लाख से ९५ लाख टन, तम्बाकू ३,२५,००० टन, कालीमिर्च ३० हजार टन और लाख ६२,००० टन उत्पादित करने का लक्ष्य रखा गया है। तीसरी योजना में १ लाख से अधिक की आबादी के शहरो के लिए ७५ दूध सप्लाई योजनाएँ चालू की जाएँगी। ३० ग्रामीण क्रामरियां और

८ दुग्धजन्य पदार्थों के कारखाने स्थापित किए जाएँगे। मछली का उत्पादन दूसरी योजना में १४ लाख टन से बढाकर १८ लाख टन किया जाएगा।

'बड़े पैमाने के उद्योग—

तृतीय पचवर्षीय योजना में उद्योग, बिजली और यातायात के विकास को भी ऊँचा स्थान दिया गया है। सरकारी क्षेत्र में बडे उद्योगो और खानो के विकास में १,५०० करोड़ रु० लगाये जाएँगे। निजी उद्योगो में १ हजार करोड रु० (सहकारी सहायता को छोडकर) लगाये जाने का अनुमान है।

लोहा और स्पात उद्योग की क्षमता इतनी बढाई जायगी कि बिक्री के लिए एक करोड २ लाख टन इस्पात के ढोंके और १५ लाख टन लोहा मिल सके। इन उद्योगो में प्राय पूरा विस्तार सार्वजनिक क्षेत्र में होगा। भिलाई, रूरकेला और दुर्गापुर के कारखानो को इतना बढाया जायगा कि वे ५५ लाख टन इस्पात के ढोंके बना सकें। बुकारा में चौथा इस्पात कारखाना भी खडा किया जायगा।

खास-खास उद्योगो के उत्पादन के लक्ष्य

	वार्षिक	उत्पादन
	१९६०-६१	१९६५-६६
अलमुनियम (हजार टनो में)	१६·०	७५·०
सीमेंट (लाख टनो में)	८८	१३०
कागज (हजार टनो में)	३२०·०	७००
गधक तेजाब (हजार टनो में)	४००·०	१२५०
कास्टिक सोडा (हजार टनो में)	१२५·०	३४०
शक्कर (लाख टनो में)	२५	३०
कपडा (मिल का कपडा) (लाख टनो में)	५०,०००	५८,०००
साइकिल (कारखानो में) (हजार अदद)	१,०५०	२,०००
सिलाई की मशीन (हजार अदद)	३००	४५०
मोटरगाडी (अदद)	५३,५००	१,००,०००

मशीन बनाने के कारखाने—

तृतीय पचवर्षीय योजना में भारी मशीनें बनाने वाले, फाउन्ड्री फोज (गढाई और ढलाई), कोयला खोदने की मशीन बनाने वाले और भारी मशीनी औजार बनाने वाले कारखानो का कायम करने की व्यवस्था की गई है। बगलौर के हिन्दुस्तान मशीन टूल्स कारखाने का उत्पादन दुगुना करने, भोपाल के भारी बिजली के सामान

के कारखाने को बढाने, दो और भारी बिजली के सामान के कारखाने लगाने और ऊँचे दबाव के बायलर और सूक्ष्म यन्त्रों के कारखानो को भी लगाने की योजना है। मशीन बनाने के निजी कारखानो में भी काफी काम होने की आशा है। आशा है कि कागज, सीमेन्ट, चीनी और कपडा प्रायः सब मशीन देश में तैयार होने लगेंगी।

तेल के कारखाने—

अभी तक जो पता लगा है उस हिसाब से नहरकटिया में प्रति वर्ष २७ लाख ५० हजार टन अशोधित तेल जमीन से निकाला जाएगा। इस तेल को साफ करने के लिए नूनमाटी और बरौनी में सफाई के कारखाने बनाए जाएँगे। खभात में या और जगह ज्हाँ पर तेल मिलने की आशा होगी, तेल की खोज की जायगी।

विद्युत शक्ति का उत्पादन—

दूसरी योजना में बिजली का उत्पादन क्षमता ५८ लाख कि० वा० है। तीसरी योजना के अन्त तक यह बढा कर १ करोड १८ लाख कि० वा० कर दी जाएगी। अणु-शक्ति से भी ३ लाख कि० वा० बिजली बनाई जायगी। आशा है कि तीसरी योजना म १५ हजार गाँवो और छोटे कस्बो में बिजली लगाई जाएगी, जिससे इनकी कुल सख्या ३४ हजार हो जाएगी। दूसरी योजना के अन्त तक १६ हजार शहरो तथा गांव में बिजली पहुँच जाएगी। तीसरी योजना में यह सख्या ३४ हजार कर देने का लक्ष्य है। ५ हजार से २० हजार की आबादी के सब कस्बो में बिजली आ जायगी।

रेल, जहाज और मोटर यातायात—

आशा है कि सन् १९६५-६६ में रेलगाडियाँ २३ करोड ५० लाख टन माल ढोएँगी। यह लक्ष्य दूसरी योजना से ४५% अधिक है।

१२०० मील लम्बी नई रेल लाइन बिछाई जाएँगी। १९६०-६१ में पक्की सडको की लम्बाई १ लाख ४४ हजार मील होगी। १९६५-६६ म यह बढ कर १ लाख ६४ हजार मील हो जायगी। मोटर यातायात का विकास अधिकांश निजी क्षेत्र में होगा। अनुमान है कि किराये पर चलने वाली मोटर गाडियो और टलो आदि की सख्या २ लाख से बढकर ३ लाख हो जाएगी। दूसरी योजना के अन्त तक हमारे पास ९ लाख टन के जहाज होगे। तीसरी योजना में २ लाख टन के जहाज और लिए जाएँगे।

सडक परिवहन के लिए सन् १९६१ से ८१ तक की एक २० वर्षीय विकास योजना बनाई गई है, जिसका लक्ष्य यह है कि कोई भी गाँव पक्की सडक से ५ मील से अधिक और कच्ची सडक से १॥ मील से अधिक दूर न हो। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए तीसरी योजना में २५० करोड रु० की राशि निर्धारित की गई है। राष्ट्रीयकृत परिवहन के लिए ५,००० और बसें खरीदी जाएँगी।

जहाजरानी का लक्ष्य १४'२ लाख टन का रखा गया है, जबकि दूसरी योजना के अन्त तक देश के पास ६ लाख टन के व्यापारिक जहाज होंगे।

संचार साधन—

तीसरी योजना में २०,००० अतिरिक्त डाकघर २,००० तारघर और २ लाख टेलीफोन कनेक्शन प्रदान किए जायेंगे। तीसरी योजना में बम्बई में एक टेलीविजन सर्विस कायम की जायेगी।

छोटे और ग्रामोद्योग—

छोटे और ग्रामोद्योगो की उन्नति पर भी बहुत जोर दिया गया है। इनके लिए कारीगरों को सिखाने, कच्चा माल और ऋण की व्यवस्था करने का भी अधिक प्रबन्ध किया जाएगा। हथकरघा और घरेलू उद्योग के जरिये सन् १६६५-६६ में ३५० करोड गज कपडा बनाया जाएगा। जबकि सन् १६६० ६१ में इनसे २६० करोड गज तैयार होने का अनुमान है। दूसरी योजना मे ६० उद्योग पुरियाँ बनाई गई है। तीसरी में ३६० बनाई जाएँगी। गाँवों और शहरों दोनों में छोटे उद्योग चलाने और उनको बडे उद्योगों से जोडने का प्रयत्न किया जायगा, जिससे वे बडे उद्योगों के लिए छोटे पुरजे आदि तैयार करें।

२,८०,००,००,००० गज कपडा हाथकरघे व शक्ति करघे से बनाने तथा ७०,००,००,००० गज कपडा खादी के क्षेत्र में बनाने का लक्ष्य रखा गया है। ग्रामोद्योग तथा छोटे उद्योगों से ५८ लाख आदमियों को रोजगार मिलने की उम्मीद है।

वन सम्पदा—

२० लाख एकड भूमि में जल्दी उगने वाले पेड लगा कर ग्राम-वन स्थापित किए जाएँगे। २॥ लाख एकड भूमि पर इमारती लकडी के वृक्ष तथा ४॥ लाख एकड भूमि पर अन्य वृक्ष बोए जाएँगे। १५,००० मील लम्बे वनमार्ग बनाए जाएँगे। तीसरी योजना मे ६ लाख एकड भूमि पर भू क्षय रोकने का काम किया जाएगा। रेगिस्तान का फैलाव रोकने के लिए २ लाख एकड भूमि में वन उगाये जाएँगे।

शिक्षा—

तीसरी योजना मे ६ से ११ वर्ष की आयु के सब बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए ४ लाख अतिरिक्त अध्यापकों की आवश्यकता होगी। सब प्राथमिक स्कूल बेसिक स्कूलों में बदल दिये जायेंगे।

सैकण्डरी स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या १५ प्रतिशत तक पहुँचा दी जायेगी जो फिलहाल १०-११ प्रतिशत है। तीसरी योजना के अन्त में सैकण्डरी स्कूलों की संख्या १८००० पहुँच जायेगी, हायर सैकण्डरी स्कूलों की संख्या ६००० हो जाने की उम्मीद की जाती है।

तीसरी योजना में हायर सैकण्डरी और विश्वविद्यालयो में विज्ञान की शिक्षा पर अधिक बल दिया जायेगा । तीसरी योजना के अन्त तक ११५०० स्नातक इंजीनियरिंग कालेजों से और १८९०० स्नातक पालो टैकनीक कालेजो से निकलने लगेंगे, जिनसे भारत को इंजीनियरो और प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता पूरी हो जावेगी ।

स्वास्थ्य—

दूसरी योजना की समाप्ति तक १२६०० अस्पताल व दवाखाने बन चुके होंगे जिनमें १,६०,००० पलगो की व्यवस्था होगी । तीसरी योजना में इनकी तादाद बढा कर क्रमशः १४६०० और १,९०,००० कर दी जायेगी । २२ करोड व्यक्तियो को बी० सी० जी० के टीके लगाये जा चुकेंगे । तपेदिक के मरीजो के लिये ३० हजार पलगो की व्यवस्था कर दी जाएगी ।

तीसरी योजना-काल में कुल १४,००० डाक्टर तैयार हो सकेंगे । तीसरी योजना में १९,००० डाक्टर तैयार किए जाएँगे । सन् १९६६ में कुल डाक्टर ८१००० होगे । फिर भी ६,००० व्यक्तियो पर एक डाक्टर का अनुपात कायम रहेगा ।

रोजगार—

रोजगार के विषय में योजना आयोग ने कहा है कि वेकारी अल्पविकसित देश का चिह्न है और भारत में जनसख्या की वृद्धि की तीव्र गति से यह समस्या अ र गभीर बनी हुई है । अनुमान लगाया गया है कि जिन लोगो को केवल आशिक काम मिला हुआ है उनकी सख्या १॥ करोड है । तीसरी योजना लगभग ९० लाख व्यक्तियो की वेकारी के साथ प्रारभ की जा रही है और इसमें १३५ लाख व्यक्तियो को काम दिये जाने की सभावना के बाद भी बेकारो की सख्या में १५ लाख की वृद्धि और हो जाने की आशका है ।

कृषि की उन्नति से आशिक रोजगारो की समस्या हल होगी, बेरोजगारी की नही । वाणिज्य में विकास से भी आशिक रोजगार की ही समस्या हल होगी । बेरोजगारी की समस्या केवल उद्योगो से ही दूर की जा सकती है, लेकिन वह भी अभी पूर्णत. नहीं । इसलिए वर्षों तक कृषि व उद्योगो के निरन्तर विस्तार तथा उन्नति से ही बेरोजगारी की समस्या हल हो सकती है ।

बेरोजगारी कम करने के लिये आयोग ने निम्न नीतियां निर्धारित की हैं—(१) बडे-बडे उद्योगो के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण किया जाए, (२) गांवो में प्रोसेसिंग उद्योग खोले जायें, (३) मानव श्रम के स्थान पर मशीनो का उपयोग वहीं किया जाये, जहाँ उससे लागत कम आती हो अथवा समय बचता हो, (४) जिला स्तर पर बनाये गये विकास कार्यक्रमो में रोजगार की आवश्यकताओ के अनुरूप हेरफेर किये जायें

और (५) विशेष निर्माण कार्यक्रम आरंभ किये जायें। इनमें छोटी सिंचाई, भूमि की सफाई, भूक्षरण की रोक-थाम, वृक्षों की बुवाई, गांवों में सड़कों का निर्माण व मरम्मत आदि कार्य शामिल है।

सामाजिक सेवा—

६ वर्ष से ११ वर्ष तक के उम्र के बच्चों को अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जायगा। इस उम्र के स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या ६० स ८० प्रतिशत बढ़ जायगी। अनुमान है कि स्कूलों के छात्रों की संख्या सन् १९६०-६१ में ४ करोड़ १० लाख से बढ़ कर १९६५ ६६ में ६ करोड़ हो जायगी।

विज्ञान और शिल्प की शिक्षा का भी विस्तार किया जाएगा। इंजीनियरी और शिल्प विद्यालयों में तीसरी योजना के अन्त तक ५३,५०० छात्र भर्ती हो सकेंगे, जब कि दूसरी योजना में ३७,८०० होते है।

रजिस्टर्ड डाक्टरों की संख्या भी ८४ हजार से बढ कर १ लाख ३ हजार हो जाएगी। अस्पतालों और दवाखानों की संख्या १२,६०० से १४,६०० और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या संख्या २८०० से बढ कर ५,००० हो जाएगी। संतति निरोध केन्द्रों की संख्या भी १,८०० से बढ कर ८२०० हो जाएगी।

कम आय वालों के लिए मकान—

कम आय वाले लोगों और औद्योगिक कर्मचारियों के लिए मकान बनाने, गन्दी बस्तियों की सफाई और उनमें सुधार करने और मकानों के लिए जमीन लेने तथा उनका सुधार करने के कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा। मकान बनाने के लिए धन आवास वित्त निगमों द्वारा दिया जायगा।

स्थानीय विकास कार्य —

देहाती क्षेत्रों में कुछ न्यूनतम सुविधाएँ उपलब्ध हों, इसके लिए तीसरी योजना में स्थानीय विकास का एक कार्यक्रम शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत जिन सुविधाओं की व्यवस्था की जाएगी वे ये है: (क) पीने के पानी की सप्लाई, (ख) प्रत्येक गांव को सबसे पास की मुख्य सड़क या रेलवे स्टेशन से मिलाने के लिए सड़कों का निर्माण और (ग) गांवों के स्कूल के भवन का निर्माण, जो सामुदायिक केन्द्र और पुस्तकालय का काम भी देगा।

निजी उद्योगों के लिए अवसर—

तृतीय योजना में निजी क्षेत्र के लिए पर्याप्त अवसर है। योजना की रूप-रेखा में यह स्पष्ट कहा गया है कि निजी उद्योगों के क्षेत्र में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि अधिक से अधिक उद्योगपति उद्योगीकरण के इन अव

सरो का लाभ उठाएँ जिससे आर्थिक शक्ति को मुट्ठी भर लोगो के हाथ में केन्द्रित होने से रोका जा सके। इसके लिए छोटे उद्योगपतियों को विविध रूपो में प्रोत्साहन और सहायता प्रदान करने की सिफारिश की गई है।

आय तथा सपत्ति में असमानताएँ कम करने के लिए टैक्स सम्बन्धी कदमो के महत्व पर भी बल दिया गया है।

श्रमिक नीति—

उद्योग में शान्ति कायम रखने और उत्पादन में रुकावट न आने दने के लिए पिछले १० वर्षों में सरकार ने हस्तक्षेप का अधिकार अपने पास रखा है, लेकिन अब उद्योगपतिया व श्रमिको दोनो में यह भावना बढ रही है कि उनके झगडों का निबटारा आपस में ही हो जाना चाहिए, जिसस न कवल उद्योग मे शान्ति रहेगी, बल्कि मजदूरो की कायकुशलता बढेगी तथा जीवन स्तर उन्नत होगा। इस दृष्टि से सन् १६५८ में एक अनुशासन सहिता अपनाई गई, जिसस हडताल और तालाबन्दी आदि की घटनाओ में कमी हुई है। लेकिन पच फैसलो तथा समझौतो का परिपालन न किए जाने की शिकायतें जारी हं। यदि ये जारी रहती हे तो अनुशासन सहिता बेकार है। इसलिए समझौतो पर अमल कराने के लिए अलग तत्र कायम किया गया है। मजदूरो को शिक्षित करने तथा प्रबन्ध में उनकी हिस्सेदारी के कार्यक्रम मे भी प्रगति की गई है।

तीसरी योजना में इन्ही से मिलती-जुलती नीतियां अपनाई जाएँगी। न्यायाधिकरणो तथा अदालतो के द्वार खटखटाने का रिवाज कम किया जाएगा, ऐच्छिक पच फैसले को बढावा दिया जाएगा, वर्क्स कमेटियो को मजबूत किया जाएगा और औद्योगिक सस्थानो मे शिकायतें दूर करने के लिए एक उपयुक्त प्रणाली कायम की जाएगी। ट्रेड यूनियन प्रतिद्वन्द्विताओ को कम करने के लिए और कदम उठाए जाएँगे। श्रमिको की शिक्षा के कार्यक्रम मे पर्याप्त विस्तार किया जाएगा और प्रबन्ध में मजदूरो की हिस्सेदारी की योजना भी काफी बढाई जाएगी। परिस्थितियो के अनुसार विभिन्न उद्योगो में वेतन निर्धारित करन के लिए वेतन बोड कायम किए जाएगे।

विदेशी व्यापार—

विकास कार्यो की बदौलत हाल के वर्षों में भारत का आयात बहुत बढ गया है। दूसरी योजना के पहले चार वर्षों में औसतन १०५० कराड रुपये का आयात रहा है जबकि निर्यात सिर्फ ६१० करोड रु० रहा है। दोनो में इतने बडे अन्तर को दूर करने के लिए आयात यथासम्भव कम करने तथा निर्यात अधिक से अधिक बढाने के लिए कहा गया है और १० वर्षों के अन्दर-अन्दर विदेशी व्यापार में पूर्ण सतुलन कायम कर देने का लक्ष्य रखा गया है।

निर्यात बढाने के लिये आयोग ने सुझाव दिया है कि जिन चीजो का भारत काफी बडा निर्यातक है उनका निर्यात अभी और बढाया जा सकता है क्योंकि विदेशो मे उनकी सारी माँग को भारत पूरा नही कर पाता है। इसलिए इन चीजो का उत्पादन इतना अधिक बढाने का लक्ष्य रखा गया है कि वे देश की बढती हुई आवश्यकता की भी पूर्ति कर सकें और निर्यात के लिए भी उनकी अधिक मात्रा बच रहे।

आयोग ने कहा है कि अगर कभी प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण किसी चीज का उत्पादन घट भी जाए तो भी पेट पर पट्टी बाँध कर उसका निर्यात बढाने की कोशिश की जानी चाहिये।

परम्परागत निर्यात को बढाने के साथ साथ इजीनियरिंग, रासायनिक तथा चिकित्सा सम्बन्धी चीजो का निर्यात बढाने के लिए भी कहा गया है। तीसरी योजना मे इन चीजो का निर्यात ५–६ गुना बढ जाने की आशा व्यक्त की गई है।

निर्यात वृद्धि के लिये उत्पादन बढाना ही काफी नही है, उत्पादित माल की लागत भी कम होनी चाहिये। इसके लिए सुझाव दिया गया है कि कर और मुद्रा सबन्धी नीतियो मे हेरफेर करके उत्पादित माल का मूल्य प्रतियोगितात्मक रखा जाना चाहिये। इस प्रसग में सकेत किया गया है कि आन्तरिक खपत के लिए बनाई गई चीजो पर उत्पादन शुल्क बढाकर इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है।

आयोग ने निर्यात का क्षेत्र बढाने के लिए भी कहा है। उसने कहा है कि हमे केवल राष्ट्रमण्डलीय देशो के साथ ही व्यापार बढाने की कोशिश नही करनी चाहिये बल्कि पूर्व पश्चिम के सभी देशो के साथ व्यापार बढाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रसग मे आयोग ने कुछ देशो के साथ राजकीय आधार पर होने वाले व्यापार को बहुत लाभदायक बताया है।

मूल्य नीति—

१०,२०० करोड रुपये के भारी पूँजी विनियोग से मँहगाई बढ जाने की आशका के बारे मे आयोजना आयोग ने कहा है कि वस्तुओं के मूल्य अनेक परिस्थितियो पर निर्भर करते है। इसलिये चीजो के दाम अपेक्षाकृत स्थिर रखने के लिये चहुँमुखी कदम उठाने होगे। आवश्यकता और परिस्थितियो के अनुसार टैक्स सम्बन्धी, मुद्रा सम्बन्धी और नियन्त्रण सबधी कदम उठाये जा सकते है।

अनाज, कपडा व चीनी के मूल्य न बढने देने पर विशेष बल दिया गया है और इस प्रसग मे अमरीका द्वारा दी गई १६० लाख टन अनाज की मदद पर सतोष व्यक्त किया गया है। उपयुक्त सरकारी कार्रवाई, राजकीय व्यापार तथा सहकारिताओ द्वारा वितरण से भी मूल्यो की रोकथाम का सुझाव दिया गया है। अनाज के दाम भी अन्य औद्योगिक और उपभोक्ता सामग्री के मूल्यो का ध्यान रख कर तय किए जाने की

सिफारिश की गई है। मसविदे में कहा गया है कि मूल्यो का अवाछनीय उतार-चढ़ाव हर हालत में रोका जाना चाहिए। मूल्यो का नियमन एक जटिल प्रश्न है, जिसमें अनेक विरोधी चीजों का समन्वय करना पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि मूल्यो का नियमन करने वाले उपायों को प्रभावशाली ढग से और तालमेल के साथ काम में लाया जाए।

अन्त मे आशा व्यक्त की गई है कि तीसरी पचवर्षीय योजना देश की अर्थ व्यवस्था को स्वयस्फूर्ति विकास की ओर काफी दूर तक ले जा सकेगी और चौथी योजना में अधिक तेजी से विकास के लिए आधार तैयार हो जाएगा।

योजना के लिए साधन—

दूसरी योजना में लगी कुल ६७५० करोड रु० की पूंजी की तुलना मे तीसरी योजना में १०,२०० करोड रु० की पूंजी लगाने के लिए घरेलू साधन जुटाने का जी जान से प्रयत्न करना पडेगा। तीसरी योजना में राष्ट्रीय आय ५ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढने की आशा है। अधिक पूंजी लगाने के लिए इसी साधन से धन जुटाना होगा।

योजना का उद्देश्य यह है कि तीसरी योजना के अन्त मे राष्ट्रीय आय का १४ प्रतिशत हमारी अर्थ-व्यवस्था मे लगे। दूसरी योजना के अन्त में राष्ट्रीय आय का ११ प्रतिशत अर्थ-व्यवस्था में लगा होगा। इस समय राष्ट्रीय आय की बचत की दर लगभग ८ प्रतिशत है। इस बचत को दर को भी तीसरी योजना के अन्त तक बढा कर ११ प्रतिशत करना होगा।

पहली दो योजनाओं की भांति तीसरी योजना के आरम्भ के समय भी विदेशी मुद्रा कम रहेगी। *विदेशी मुद्रा कोष से धन लेने को आगे गुंजाइश नहीं है।* इसके अलावा दूसरी योजना के आरम्भ में वस्तुओं का जो मूल्य था उससे अब उनका मूल्य २० *प्रतिशत अधिक है। इन दोनों बातो को ध्यान में रखते हुए इस बात की* जरूरत है कि ऐसे खर्च न किये जाएँ जिनसे मुद्रा स्फीति हो।

इसके विपरीत, अब जैसी स्थिति है वह पिछली योजनाओं के आरम्भ की स्थिति से कई प्रकार से अच्छी है। पिछले दस वर्षों में उद्योग आदि में अधिक पूंजी लगायी गयी है। सिंचाई, बिजली और परिवहन में भी काफी प्रगति हुई है। दूसरी योजना मे, सरकारी क्षेत्र में, अनेक कार्यक्रम अभी पूरे ही किये जाने थे, जबकि तीसरी योजना में वे पूरे हो चुकेंगे और उनसे लाभ होने लगेगा। इस लाभ को आगे पूंजी के रूप में लगाने के लिये लेना होगा। शिक्षा और प्रशिक्षण की जो सुविधाएं अब तक दी गयी है, वे तीसरी योजना में और भी बढेगी और इनसे भविष्य में अधिक लाभ होगा। नए-नए उद्योग धन्धे शुरू करने की क्षमता रखने वाले और प्रबन्ध का अनुभव रखने वाले लोगों की संख्या भी बढ रही है और वे अब अधिक संख्या में उपलब्ध है।

इस बात पर जोर दिया गया है कि योजना के लिये साधन जुटाने की समस्या को ऐसा नहीं मानना चाहिये, जैसे वह किसी स्थिर और निश्चित कोष से धन लेने की बात हो। एक हद तक अर्थ-व्यवस्था के साथ साथ साधन भी बढ़ते हैं। पिछले कुछ वर्षों में जो कठिनाइयाँ रही हैं, उनके बावजूद इतनी प्रगति हुई है कि भविष्य में पहले से अधिक प्रयत्न करना सम्भव हो गया है। गरीबी और कम बचत के विषावत चक्र को तभी तोड़ा जा सकता है जब पूरे साधन जुटाये जायें और जो लाभ होता रहे वह निरन्तर उत्पादन के लिये लगाया जाता रहे।

सरकारी क्षेत्र में तीसरी योजना में जो खर्च होगा उसके लिये धन जुटाने की योजना निम्नलिखित सारिणी में दी गयी है :—

	(करोड़ रु० में)	
	दूसरी योजना	तीसरी योजना
१. वर्तमान करों के आधार पर राजस्व से बचने वाला धन	१००	३५०
२. वर्तमान आधार पर रेलों से मिलने वाला धन	१५०*	१५०
३. वर्तमान आधार पर सरकारी उद्योगों से मिलने वाला धन	—†	४४०
४. सार्वजनिक ऋण	८००	८५०
५. अल्प बचत	३८०	५५०
६. भविष्य निधि आदि से मिलने वाला धन	२१३	५१०
७ अतिरिक्त कर और सरकारी उद्योगों से लाभ में बढ़ती से मिलने वाला धन	१०००	१६५०
८ विदेशी सहायता जिसकी बजट में व्यवस्था की गई है	९८२	२२००
९ घाटे की अर्थ-व्यवस्था	११७५	५५०
जोड़—	४६००	७२५०

अतिरिक्त कर—

पांच वर्ष की अवधि में १,६५० करोड़ रु० के अतिरिक्त कर लगाने का जो लक्ष्य है, उसकी पूर्ति योजना की सफलता के लिए बहुत आवश्यक है। भारत में इस समय करों से राष्ट्रीय आय का लगभग ८·५ प्रतिशत भाग मिलता है। कर-उपलब्धि में सामान्य रूप से जो बढ़ती होगी और तीसरी योजना में जो अतिरिक्त कर लगाए

* यात्रियों के किराए और माल भाड़े में हुई बढ़ती को मिलाकर
† ऊपर (१) में सम्मिलित

जाएँगे, उनसे यह संख्या बढ़कर ११ प्रतिशत हो जायगी। विकास कार्यों की तेज गति को देखते हुए इसको बहुत अधिक भार नहीं माना जा सकता। फिर भी १६५० रु० के अतिरिक्त कर लगाने का लक्ष्य पूरा करने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों को बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा। इस कर राशि में से एक तिहाई के कर राज्य लगाएँगे।

तीसरी योजना के कारण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों प्रकार के कर बढ़ाने और सरकारी उद्योगों का लाभ बढ़ाने की जरूरत होगी। जहाँ तक आय कर और निगम-कर का प्रश्न है, कर प्रशासन को कड़ा करके उनकी वसूली बढ़ानी होगी, कम्पनियों के खर्च के ब्यौरे पर नजर रखनी होगी और एस कदम उठाने होंगे, जिनसे वे कर से बच न सकें। अप्रत्यक्ष करों और वस्तुओं के मूल्य में बढ़ती होने में निश्चय ही लागत और मूल्य दोनों बढ़ेंगे, पर यह ऐसा त्याग है जो करना ही पड़ेगा।

घाटे की अर्थ व्यवस्था—

अप्रत्यक्ष करों और घाटे की अर्थव्यवस्था से मूल्य पर जो असर पड़ता है, उसमें भेद करने की आवश्यकता है। अप्रत्यक्ष करों द्वारा मूल्य बढ़ जाने से मुद्रा-स्फीति की सम्भावना कम रहती है जबकि घाटे की अर्थ-व्यवस्था से यह सम्भावना और बढ़ती है। अतः यह विचार है कि तीसरी योजना में केवल ५५० करोड़ रु० की घाटे की अर्थ व्यवस्था की जाए जबकि दूसरी योजना में १,१७५ करोड़ रुपये की घाटे की अर्थ-व्यवस्था की गई थी।

विदेशी मुद्रा—

तीसरी योजना में बड़ी तेज गति से उद्योगों की स्थापना के कारण विदेशी मुद्रा की काफी मात्रा में आवश्यकता पड़ेगी। यह अनुमान है कि योजना में १,६०० करोड़ रु० विदेशी मुद्रा के रूप में व्यय होंगे। इसके अलावा लगभग २०० करोड़ रु० के पुर्जे आदि भी आयात करने की जरूरत पड़ेगी जिससे देश में मशीनी सामान का उत्पादन बढ़ाया जा सके। इस प्रकार योजना के लिए २,१०० करोड़ रु० की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी।

योजना में नए कामों के लिए जितनी विदेशी मुद्रा की जरूरत होगी उसे छोड़ भी दिया जाए तो भी तीसरी योजना की अवधि में पिछले ऋणों और ब्याज की अदायगी के कारण ५०० करोड़ रु० की जरूरत रहेगी। इस प्रकार तीसरी योजना में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता बढ़कर २,६०० करोड़ रु० हो जायगी। इस जोड़ में वह ६०० करोड़ रु० भी शामिल किए जा सकते हैं जो पी० एल-४८० के अन्तर्गत अमरीका से मिलेंगे। इस प्रकार तीसरी योजना की कुल जरूरत ३२०० करोड़ रु० हो जाती है।

विदेशों से सहायता के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। योजना का रूप ऐसा रखना होगा कि उसमें घटबढ की जा सके। सरकारी और गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों में कार्यक्रम इसी आधार पर शुरू किए जा सकते है कि बाहर से निश्चित रूप से क्या सहायता मिल सकती है। इसके लिए कार्यक्रम पहले से तैयार करके रखने होंगे, जिससे आवश्यक विदेशी मुद्रा मिलते ही उन्हे पूरा किया जा सके। विदेशी मुद्रा के उपयोग मे देर करने से तीसरी योजना मे उत्पादन बढाने का कार्यक्रम गडबड मे पड जायगा।

भुगतान के विषय मे देश को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है वे कोई स्थायी या आकस्मिक नहीं हैं बल्कि हमारी विकास की क्रिया का ही एक अग हैं कुछ समय तक अत्यधिक आयात की जरूरत बाहरी सहायता से पूरी की जा सकती है। परन्तु यह याद रखना जरूरी है कि यह असन्तुलन धीरे-धीरे कम होता जाय और कुछ समय बाद समाप्त हो जाय। इसका यह अर्थ नही है कि एक खास अवधि के बाद विदेशों से धन का आना रोक दिया जाएगा। व्यापार में लगी पूंजी आती ही रहेगी और आती ही रहनी चाहिए, परन्तु विशेष सहायता कार्यक्रमो पर निर्भरता धीरे धीरे कम हो जानी चाहिए और कुछ समय बाद समाप्त हो जानी चाहिये।

निजी क्षेत्र मे पूंजी केवल सगठित उद्योगो, खान, बिजली और परिवहन में ही नही लगी हुई है, बल्कि कृषि, ग्राम और लघु उद्योगो, देहात और शहरो म मकान बनाने मे भी लगी हुई है।

तीसरी योजना में निजी पूंजी मुख्यत: बडे और मध्यम उद्योगों में बढाई जाएगी। दूसरी योजना में बडे और मध्यम उद्योगो मे ७०० करोड रु० की पूंजी लगाई गयी जबकि तीसरी योजना मे १,०५० करोड रु० की पूंजी लगाने का विचार है। अन्य क्षेत्रों में अधिक पूंजी लगायी जाएगी, परन्तु अनुपात से वह कम होगी।

योजना के अन्तर्गत निजी क्षेत्र का उद्योगो मे फैलने का काफी अवसर है। इसका मुख्य कारण यह है कि अब तक की पचवर्षीय योजनाओ के परिणामस्वरूप उद्योगो के बढने के अवसर ज्यादा हो गये है। इस विषय में जो नीति है उसका मुख्य लक्ष्य यह है कि इन अवसरो से छोटे और मध्यम द र्जे के उद्योगपति लाभ उठाएँ और आर्थिक शक्ति थोडे से लोगो के हाथ में केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पर शुरू में ही अकुश लग जाए।

जनता को लाभ

तृतीय पचवर्षीय योजना से जनता को प्रत्यक्ष लाभ इस भांति मिल सकेगा—

(१) एक करोड ३५ लाख बेकारो को रोजगार मिलेगा।

(२) छः से ग्यारह वर्ष के प्रत्येक बच्चे को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा।

(३) अनाज का उत्पादन बढ़ने से प्रति व्यक्ति को प्रति दिन १५ औंस गेहूँ, चावल और तीन औंस दाल मिल सकेगी।

(४) प्रति व्यक्ति को प्रति वर्ष १७·५ गज सूती कपड़ा सप्लाई किया जा सकेगा।

(५) दो हजार नये अस्पताल खुलने से इलाज कराने में अधिक आसानी होगी।

(६) ग्रामों की जनता को पानी और सफाई की व्यवस्था तथा पास के स्टेशन या कस्बे तक सड़क।

(७) १५ हजार अन्य ग्रामों तथा कस्बों को बिजली मिलेगी।

(८) प्रत्येक गाँव में स्कूल और पुस्तकालय बनेगा।

तृतीय योजना—एक दृष्टि—

तीसरी योजना के कुछ मोटे लक्ष्य यह निर्धारित किए गए हैं कि खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ा कर दस साढ़े दस करोड़ टन वार्षिक कर दिया जाये, इस्पात उत्पादन की क्षमता १ करोड़ टन हो जाये, विद्युत् उत्पादन की क्षमता ५८ लाख किलोवाट से बढ़कर १ करोड़ १८ लाख किलोवाट हो जाये, १ करोड़ ३५ लाख और व्यक्तियों के लिये रोजगार का प्रबंध किया जाये, देश के तमाम गाँवों को सामुदायिक विकास योजनाओं और सहकारी समितियों के अन्तर्गत ले आया जाय, ६ से ११ वर्ष तक की उम्र के तमाम बच्चों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाये और तमाम देहाती क्षेत्रों में पीने का शुद्ध पानी और दूसरी न्यूनतम सुविधायें सुलभ की जायें। तीसरी योजना के प्रारूप में कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई है। राजकीय और निजी दोनों क्षेत्रों में २,४५० करोड़ रुपये की राशि रखी गई है जो दूसरी योजना की राशि से काफी अधिक है। दूसरी योजना के काल में खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ा है, किन्तु वह देश की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये अभी काफी नहीं है और देश को अभी भी विदेशों से अन्न का आयात करना पड़ रहा है। कृषि उत्पादन पर विशेष ध्यान देकर देश को इस लज्जाजनक स्थिति का जल्दी से जल्दी अन्त करना ही चाहिये।

तीसरी योजना के प्रारूप में उद्योग और खनिज विकास और सामाजिक सेवाओं के लिये बढ़ी हुई धनराशि की व्यवस्था की गई है। उद्योग और खनिज विकास के लिये तीसरी योजना में राजकीय क्षेत्र के लिये १,५०० करोड़ और निजी क्षेत्र के लिये १,००० करोड़ की राशि रखी गई है। सामाजिक सेवाओं की राशि को ८६० करोड़ से बढ़ाकर १,२५० करोड़ कर दिया गया है। विकास की रफ्तार को तेज करने के लिये तीसरी योजना का आकार स्वभावतः दूसरी की अपेक्षा बड़ा होगा और विभिन्न मदों के लिये बढ़ी हुई धनराशि की व्यवस्था करनी होगी।

तीसरी योजना के साधन जुटाने के लिए १,६५० करोड़ रुपया अतिरिक्त करो द्वारा सग्रह करने की कल्पना की गई है। इसमे राजकीय उद्योगों की आय भी शामिल होगी। जनता पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करो का भार काफी बढ़ा हुआ है। अतः अतिरिक्त करो की बात जनता के लिए विशेष रूप से चिन्तनीय होगी। यह आज नही कहा जा सकता कि इस साधन से इतनी बडी राशि का सग्रह कहाँ तक व्यावहारिक होगा और उसकी लोकमानस पर क्या प्रतिक्रिया होगी। तीसरी योजना में घाटे की राशि को १,१७५ करोड से घटा कर ५५० करोड कर दिया गया है। यह एक बुद्धिमानी का निर्णय है। कारण घाटे की अर्थ-व्यवस्था कीमतो को बढाने में सहायक होती है। दूसरी योजना के काल में कीमतो में चिन्ताजनक वृद्धि हुई है और इस कारण देश को अनेक विकट समस्याओं का सामना करना पड रहा है। इस बारे में देश को भविष्य मे अधिक सतर्क रहना होगा। तीसरी योजना विदेशी सहायता की उपलब्धि पर भी काफी हद तक निर्भर करेगी। विदेशी सहायता की राशि २,६०० करोड रुपया अनुमान की गई है। देश को तीसरी योजना के काल में बेरोजगारी की समस्या का भी सामना करना पडेगा, जो काफी विकट बनी हुई है। दूसरी योजना के अन्त मे ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार रहेंगे। राष्ट्रीय आय और व्यक्ति की औसत आय में जो भी वृद्धि हुई हो, किन्तु बेरोजगारी का व्यापक रूप में रहना देश के लिए चिन्ता का ही विषय होगा।

कुछ सुझाव—

भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि को प्रथम स्थान दिया गया था। दूसरी योजना में इसका स्थान द्वितीय था, किन्तु यह नही कहा जा सकता कि उससे सम्बद्ध विभिन्न मदो के लिये कुछ कम धन राशि रखी गयी थी। तृतीय पचवर्षीय योजना मे उद्योग और कृषि के सन्तुलित विकास की बात कही गयी है। इससे स्पष्ट है कि कृषि पर योजना के पाँच वर्षों में विपुल व्यय किया जायगा। जो देश मुख्यतः कृषि पर ही निर्भर हो उसे यह व्यय करना भी चाहिये, परन्तु इसके साथ यह देखना भी आवश्यक है कि वह तरीके से किया जा रहा है और फलदायी सिद्ध हो रहा है अथवा नही।

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था तथा ग्राम जीवन और कृषि से सम्बद्ध विभिन्न साधन स्रोतो के सगठन का बहुत निकट का सम्बन्ध है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगा कि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था वस्तुतः उक्त सगठन पर ही निर्भर करती है। आज ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मे जो दोष दृष्टिगोचर होता है और किसान सुखी एव समृद्ध प्रतीत नही होता उसका एकमात्र कारण उक्त सगठन की शिथिलता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि उसे मजबूत बनाया जाय।

ग्राम और कृषि जीवन के जिन विविध अंगों का ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था से सम्बन्ध है उनमें पशु-पालन, ग्रामोद्योग, सिचाई की व्यवस्था, ऋण प्रबंध, बीज तथा खाद वितरण और माल की बिक्री आदि सभी आते हैं। पिछली दो पंचवर्षीय योजनाओं में इन सभी मदों के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था की गयी थी और इस बार तृतीय योजना में उन मदों को बहुत महत्व दिया गया है। पर अनुभव से यह स्पष्ट है कि केवल महत्व देने और धन की व्यवस्था कर देने से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था उन्नत नहीं हो सकती। उसके लिये यह देखना होगा कि जो रुपया खर्च किया जा रहा है वह कहीं अपव्ययित तो नहीं हो रहा अथवा इस प्रकार तो नहीं लग रहा है कि उससे कुछ फल की प्राप्ति न हो सके। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि आदमियों सहित सब साधन स्रोतों का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके।

सरकार कृषि क्षेत्र में जितना रुपया लगा रही है उस अनुपात से वह फलदायी नहीं हो रहा, यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। इसलिये और रुपया लगाने से पूर्व यह विचार किया जाना चाहिये कि इसका क्या कारण हो सकता है। कारण का पता स्थिति के अध्ययन से ही लग सकता है। इसलिये श्री एस० के० पाटिल ने दिल्ली में कृषि विषयक आर्थिक अनुसंधान केन्द्र का उद्घाटन करते हुए उक्त अध्ययन पर जो बल दिया है वह सर्वथा उचित है। इस अध्ययन से जहाँ वर्तमान ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के दोष दृष्टिगोचर हो सकेंगे वहाँ उसे उन्नत करने के लिये नयी नयी प्रेरणाएँ और सुझाव भी प्राप्त हो सकेंगे।

तृतीय योजना की सफलता के लिये प्रशासनिक कुशलता पर बल

तीसरी योजना के मसविदे में नीति संबंधी वक्तव्य में यह भी कहा गया है कि सरकारी उद्योगों का संचालन खर्च कम से कम और आय अधिक से अधिक करने की दृष्टि से होना चाहिए तथा सब स्तरों पर प्रशासन में ईमानदारी और काम को शीघ्र निबटाने की भावना होनी चाहिए। प्रशासन में कुशलता लाने के लिए आयोग ने सुझाव दिया है कि मंत्री, सचिव तथा विभागीय अध्यक्ष सब स्तरों पर लोगों के लिए काम निश्चित कर दिया जाना चाहिए और उन्हें बता दिया जाना चाहिए कि उन्हें अमुक समय में वह काम पूरा करना है। एक बार नीति निर्धारित कर दिए जाने के बाद उस पर अमल का काम उसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों पर पूर्णतः छोड़ दिया जाना चाहिए। प्रशासनिक व्यक्तियों का उचित ढंग से प्रशिक्षण किया जाना चाहिए, दैनिक काम को जल्दी निबटाया जाना चाहिए, जिसके लिए प्रक्रियाओं को आसान करना जरूरी है। जिन कर्मचारियों का आम जनता से वास्ता पड़ता है, उनमें ईमानदारी तथा सौजन्य की अत्यन्त आवश्यकता है।

अनुत्पादक निर्माण कार्यों में अधिकतम किफायत की सिफारिश करते हुए आयोग ने कहा है कि ठेकेदारों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं किया जाना चाहिए। जहां

सम्भव हो वहाँ विभागीय आधार पर काम कराया जाना चाहिए और विभागीय श्रमिकों को उनके काम के हिसाब से मेहनताना दिया जाना चाहिए। श्रमिकों की सहकारी संस्थाओं तथा ऐच्छिक संगठनों को निर्माण कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

जनता का सहयोग

आयोग के प्रस्तावों में जनसहयोग के क्षेत्र में ऐच्छिक संगठनों के महत्व को स्वीकार किया गया है। इनके लिए तीसरी योजना में १० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में पहली दोनों योजनाओं की अपेक्षा कृषि उत्पादन में वृद्धि की रफ्तार दुगुनी रखी गई है। इसके लिए सिंचाई, उपजाऊ मिट्टी को बहने से रोकने, खाद आदि के निर्माण में ग्रामीणों के अथक सहयोग की जरूरत होगी। इसलिए गावों में काम करने की इच्छा रखने वाले हर व्यक्ति को काम दिया जाना चाहिए और उत्पादन बढ़ाने में उपलब्ध मनुष्य शक्ति का अधिकतम प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके लिए सुझाव दिया गया है कि देहाती क्षेत्रों के हर विकास खंड में किए जाने वाले कार्यों का क्रम बनाया जाना चाहिए, फिर उस गाव-कार्यक्रम में विभक्त किया जाना चाहिए और इस प्रकार सब परिवारों को उसकी जानकारी दी जानी चाहिए।

योजना के कार्यक्रमों को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में और अधिक योजना मंच कायम करने तथा केन्द्रीय व राज्य सरकारों के प्रचार कार्यक्रम को बढ़ाने का सुझाव दिया गया है।

STANDARD QUESTIONS

1. Explain clearly the principal Objectives of the Third Five Year plan. How our country is likely to be benefitted by them ?
2. Bring out clearly the salient features of the Third Five Year Plan.
3. Write an essay on "Priorities under the Third Five Year Plan."
4. Attempt a critical note on the essential features of the Draft outline of the Third Five Year Plan Have you any suggestions to offer ?

UNIVERSITY OF SAUGAR

B Com Preliminary Exam 1960

Economic Problems of India

GROUP II PAPER II

Time—3 hrs *Max Marks —100*

Answer any five *questions All questions are of equal value*

1 Mention the causes and economic effects of endless sub division and fragmentation of land in India Discuss remedial measures

2 How did the problem of Rural indebtedness become severe in India ? What has been its effect on India s agricultural economy ?

3 Examine the role of co operative movement in Agricultural Credit in India

4 The Indian moneylender holds its own in Agricultural Finance Discuss

5 ' The Community projects and Rural Extension Services are expected to revitalise the Indian villages and give a new life to the rural population" Discuss

6 Discuss the development of Iron and Steel or Sugar industry in India

7 Discuss the main problems facing the Indian Cotton or Jute industry

8 How far the establishment of the Industrial Finance Corporation has been helpful in solving the problem of long term finance for industries in India ? Discuss

9 Discuss the problem of landless labourers in India and suggest measures for solving the problem

10 Discuss the population problem in India

VIKRAM UNIVERSITY

B Com (Part II) Three Year Degree Course Exam 1960

First Paper—Economic Problems of India

(1) What is an economic holding ? How would you judge whether a holding is an economic or uneconomic one ?

(2) 'The Indian agriculturist is born in debt, lives in debt and dies in debt ? Comment

(3) How far is it true to say that credit is only a part of co-operative economic development ?

(4) Review the present and future prospects of sugar industry

(5) What are the objectives of the Industrial Finance Corporation ? Estimate its contribution to the provision of Industrial Finance

(6) What do you understand by Co operative Farming ? Does it increase the efficiency of agriculture ?

(7) Trace the history of Labour Movement in India

(8) What are the defects of rural banking in India ? In What directions have they been remedied ?

(9) Describe the essential features of Decimal Coinage ? what are the general effects of the introduction of Nava Paisa

VIKRAM UNIVERSITY

B Com (Part II) Three Year Degree Course

Supplementary Examination, 1960

APPLIED ECONOMICS AND PLANNING

First Paper -Economic problems of India

Attempt any five questions All questions carry equal marks

1 Account for the low agricultural productivity in India

2 Examine the measure for the consolidation of holdings What is the progress in this direction in your State ?

3 Analyse the causes of rural indebtedness in India To what extent has this problem been solved successfully ?

4 The establishment of credit societies in the villages is a sine qua non of the organisation of credit in the context of planned investment in the development schemes ? Explain

5 Review the present position and the future prospects of the iron and steel Industry

6 What are the agencies providing industrial finance ? Describe the working of any one principal agency

7 What are community development projects and what are their economic consequences ?